श्री अजितनाथ चरित्र

लेखक
मुनिश्री जयानंद विजयजी

श्री सुमतिनाथाय नमः

प्रभु श्री राजेन्द्र सूरीश्वराय नमः

श्री अजितनाथ चरित्र

लेखक

मुनि श्री जयानंदविजयजी

पुस्तक का नाम : श्री अजितनाथ चरित्र
लेखक : मुनि श्री जयानंदविजयजी
प्रकाशक : गुरु श्री रामचंद्र प्रकाशन समिति, भीनमाल – ३४३ ०२९
सं. सुमेरमल केवलजी नाहर, भीनमाल
सं. मीलियन ग्रुप, सूराणा
सं. श्रीमति सकुदेवी सांकलचंदजी नेतीजी हुकमाणी पांथेडी

प्राप्ति स्थान :

(१) शा देवीचंद छगनलाल
सदर बाजार, भीनमाल - ३४३ ०२९
(२) शा नागालाल वजाजी खींवसरा
शांतिविला अपार्टमेन्ट, काजी का मैदान,
गोपीपुरा, तीनबत्ती, सूरत
(३) कोनेक्स इंडस्ट्रीज
८/१०२ नेहरुगली, विश्वासनगर,
शाहादरा, दिल्ली - ११० ०३२

पोस्ट से मंगवाने वाले को ५-०० रू. के स्टेम्प भीनमाल के पत्ते पर भेजना।

नये युग का आश्चर्य

दुनिया के कई देशों में जुड़े हुए जुड़वां बच्चे हुए हैं। सबसे मशहूर जुड़े हुए जुड़वां (चांग और इंग) स्याम (अब थाईलैण्ड) में १८११ में पैदा हुए थे। वे जिंदगी भर जुड़े रहे और ६३ साल जिये।

उन्होंने अपनी जैसी जुड़वां बहनों से शादी की। चांग के १० बच्चे हुए थे और इंग के नौ। दोनों का देहांत १८७४ में हुआ थां। दोनों की मौत में आधे घंटे का फर्क था।

चिकित्सा के इतिहास में अब तक ६०० जुड़े हुए जुड़वां मिलते हैं। लेकिन दोनों को सफलतापूर्वक अलग करने के ऑपरेशन कम ही हुए हैं।

द्रव्य सहायक

राष्ट्रसंत श्री जयंतसेन सूरीश्वरजी की आज्ञानुवर्तिनी
विदुषी सा. श्री दमयंतिश्रीजी की सुशिष्याएँ
वि.सा. श्री सूर्योदयाश्रीजी, सा. श्री कैलाशश्रीजी,
सा. श्री विपुलदर्शिताश्रीजी की प्रेरणा से
मातुश्री ढेलीबाई गेबाजी की स्मृति में
खुशालचंद, अमीचंद, बाबुलाल, कांतिलाल,
रूपचंद, जुगराज, प्रवीण श्रीश्रीश्रीमाल
नेणगोता(डामराणी) मेंगलवा निवासी
हस्ते कांतिलाल महीपाल, सूमितकुमार
बेटा पोता गेबाजी धर्माजी
श्रीश्रीश्रीमाल नेणगोता मेंगलवा।

कोनेक्स इंडस्ट्रीज
८/१०२ नेहरु गली, विश्वासनगर,
शहादरा, दिल्ली – ११० ०३२

दो शब्द

'कथा' थकान मिटाने का अनूपम साधन।

इस भव की क्या भवोंभव की थकान मिटाने की शक्ति कथा साहित्य में नीहित है।

अनंत ज्ञानियों ने धर्म कथानुयोग को आबाल गोपाल सभी प्रकार के आराधकों के लिए अत्यावश्यक आदरणीय माना है।

आराधक भाव की उत्पत्ति में प्रथम स्थान धर्मकथानुयोग का है।

आराधना से प्रमादवश गिरने से बचाव के लिए कथानुयोग उत्कृष्ट आलंबन है।

द्वादशांगी में छट्ठा अंग 'ज्ञाता धर्म कथा' अनेक प्रकार की कथाओं का भंडार है।

जिनशासन में तीर्थंकरों के, चक्रवर्तीयों के, महापुरुषों के अनेक चरित्र उपलब्ध हैं।

इस पुस्तक में श्री अजितनाथ भगवंत का चरित्र और उनके उपदेश रूप में चक्रवर्तीयों के चरित्र और अन्य भी कथाएँ दी गयी हैं। पाठक गण हंस दृष्टि अपनाकर लाभान्वित बनें।

जिनाज्ञा विरुद्ध लिखा गया हो तो मिच्छा मि दुक्कडं।

२०५७, माहा सुद १४ *जयानंद*

मोधरा

श्री अजितनाथ चरित्र

जयन्त्यजितनाथस्य जितशोणि मणिश्रियः
नम्रेन्द्रवदनादर्शाः पादपद्मद्वयीनखाः।।

लालमणियों की शोभा के जीतने और नमस्कार करते हुए इन्द्रों के मुख के लिए दर्पण समान श्री अजितनाथ के चरण कमल के नखों की सदा जय होती है।

जंबूद्वीप के मध्यभाग के महाविदेह के वत्स देश में सुसीमा नामकी नगरी अपने आप में रमणीय थी। उस नगर में नय, न्याय एवं नीतिप्रिय विमलबुद्धिवान 'विमलवाहन' नामक राजा राज्य करता था। उसका कवचहर नामका कुमार था। राजा वैराग्य भाव को बार-बार पुष्ट करता था। उसका चित्त संसार भाव से विरक्त हो रहा था। उसे भौतिक पदार्थों की असारता, चंचलता स्पष्ट रूप से समझ में आ गयी थी।

एक बार वह उद्यान में गया। वहाँ उसने अरिदम नामक आचार्य भगवंत को अपने धर्म परिवार के साथ आत्म कल्याण में निमग्न देखे। उनके पास जाकर विधिवत् वंदन कर देशना श्रवणार्थ सामने बैठा। आचार्य भगवंत ने मधुरीवाणी से संसार की निःसारता दर्शायी। मोह मायाजाल का दिग्दर्शन करवाया। कर्म की कुटिलता के कटु विपाक की कथा सुनायी। तब विमलवाहन राजा ने पूछा, 'गुरुदेव! आपकों वैराग्य कैसे हुआ? कृपया इस सेवक पर कृपा करके कहिए।' तब आचार्य भगवंत ने अपनी बात सुनानी प्रारंभ की।

मैं राजा था, और एक छत्री राजा बनने की मेरी अदम्य इच्छा थी। मेरे सामने कोई आँख उठाकर न देख सके, ऐसा मेरा प्रताप चारों ओर विस्तारित हो, इस इच्छा को पूर्ण करने हेतु मैंने सदल-बल दिग्विजय के लिए प्रस्थान किया। एक-एक राजा पर विजय प्राप्त करता हुआ आगे बढ़ रहा था। मार्ग में एक उद्यान अतीव रमणीय पुष्प और फलों से भरा हुआ देखा। उसे देखकर अत्यन्त आनंदित हुआ। वहाँ थोडी देर विश्राम का आनंद लेकर आगे बढ़ा। उस दिशा के सभी शासकों को अपने सेवक बनाकर वापिस लौटते समय उस उद्यान की स्मृति हुई और उद्यान का मार्ग लिया। उद्यान के पास आते ही मैं आश्चर्य चकित हो गया। एक बार तो विचार आया कि कहीं मार्ग भूल तो नहीं गये। एक व्यक्ति से पूछा तो उसने कहा उद्यान यही है। तब मैंने सोचा क्या इतने अल्प समय में ही यह उद्यान शुष्क हो गया! इस संसार की क्षणभंगुरता ऐसी ही है। इस पर चिंतन करते करते मेरे चारित्रावरणीय कर्म शिथिल होने लगे और मैंने चारित्र लेने का निर्णय किया। अब कर्म राजा पर विजय प्राप्त करने के लिए कटिबद्ध बना और एक मुनि भगवंत के पास चारित्र ग्रहण कर ग्रहण शिक्षा आसेवन शिक्षा ग्रहण कर गीतार्थता प्राप्त कर विचरण करता हुआ यहाँ आया हूँ।

विमलवाहन राजा भी उनकी देशना से प्रतिबोध पाकर चारित्र ग्रहण करने के

विचारवाला बना। गुरुदेव से कहा, 'गुरुदेव! मैं नगर में जाकर राज्य की व्यवस्था कर दीक्षा लेने हेतु आऊँ तब तक स्थिरता करावें।' अरिदम आचार्य भगवंत ने कहा, 'मा पडिबंध करेह' 'किसीका प्रतिरोध स्वीकार न करना।' विमलवाहन ने राज्य में जाकर मंत्रियों को बुलाकर अपना विचार दर्शाया। मंत्रियों ने भी कहा, 'राजन्! यह तो अपने कुल की परंपरा रही है। अब आपको और हमको आत्म कल्याण के मार्ग पर चलना चाहिए।' फिर 'कचवरहर' कुमार का राज्याभिषेक कर उसे राज्य प्रायोग्य हितशिक्षा देकर गुरुदेव के पास पुनीत प्रव्रज्या का पथ स्वीकारा। अब आसेवन और ग्रहणशिक्षा ग्रहण करते हुए तप-जप में भी संलग्न हुए। गुरु सेवा तो रोम-रोम में बसी थी। गुरु की अंतिम अवस्था तक गुरु के पास रहे। फिर अपने धर्म परिवार के साथ विहार करते-करते वीश स्थानक तप की आराधना कर तीर्थंकर नाम कर्म निकाचित किया। दूसरे भी एकावली,रत्नावली, कनकावली और सिंहनिष्क्रीडित तप प्रारंभकर अष्टमासी तप भी किया। अंत समय में अनशन कर अपने नश्वर देह का त्याग कर विजय नामक अनुत्तर विमान में देव हुए। वहाँ उनका आयु तेत्तीस सागरोपम का था। जहाँ उन्हें तेत्तीस हजार वर्ष के बाद आहार की इच्छा होती थी और उस स्थान पर रहे हुए आहार के शुभ परमाणु उसी समय शरीर में लोमाहार के रुप से प्रविष्ट हो जाते थे। वह तृप्ति का आनंद पुनः तेत्तीस हजार वर्ष तक चलता था। वहाँ श्वासोच्छ्वास लेने का परिश्रम भी तेत्तीस पक्ष के बाद करना पडता था। इस प्रकार निरंतर शय्या में एक हाथ की काया में रहकर साढे सोलह सागरोपम के बाद दाये पार्श्व से बाये करवट में घूमकर शेष साढे सोलह सागरोपम का समय अहमिन्द्र पने में पूर्ण किया।

अजितनाथ का जन्म :

जंबूद्वीप के भरतक्षेत्र के मध्य खंड में अयोध्या नगरी अपने आप में अलकापुरी से भी अलौकिक, अनुपम और अद्‌भूत थी। वहाँ सर्वगुण सम्पन्न समताधारी और शांत स्वभावी जितशत्रु नामक राजा राज्य करता था। उसके शासन में रहने के इच्छुक अनेक राजा उसकी सेवा में उपस्थित रहते थे।

ऋषभदेव प्रभु के निर्वाण काल के पच्चास लाख क्रोड सागरोपम का काल व्यतीत होने आया था। उस समय इस ईक्ष्वाकुवंश के जितशत्रु राजा की विजयादेवी नामक सद्‌गुण धारिणी शीलवंती पत्नी की कुक्षी में 'विमलवाहन' राजा का जीव वैशाख सुद १३ के दिन विजय नामक अनुत्तर विमान से आया। माताने 'हस्ति, वृषभ, सिंह, लक्ष्मी, पुष्पमाला, चंद्र, सूर्य, ध्वज, पूर्णकुंभ, पभसरोवर, समुद्र, विमान, रत्नपुंज और निर्धूम अग्नि' ये चौदह स्वप्न देखे। विजयादेवी स्वप्न देखकर हर्षित होती हुई जागृत होकर नमस्कार महामंत्र का स्मरण करती हुई पति के पास जाकर मधुर ध्वनि से जितशत्रु राजा को जागृत कर स्वप्न का वृतांत

कहा। राजाने उत्तम पुत्ररत्न की प्राप्ति का फलादेश कहा।

सौधर्म इन्द्र का आसन चलायमान हुआ। इन्द्रने अवधिज्ञान से प्रभु का च्यवन जानकर सिंहासन से उठकर सात-आठ कदम सामने जाकर शक्रस्तव से स्तवना की। फिर नंदीश्वर द्वीप पर जाकर अट्ठाई महोत्सव किया।

इधर प्रातः जितशत्रु राजा ने स्वप्न पाठकों को बुलाकर विजयादेवी के स्वप्नों का फलादेश पूछा और स्वप्न पाठकों ने भी तीर्थंकर एवं चक्रवर्ती की माता चौदह स्वप्न देखती है ऐसा हमारे शास्त्रों में लिखा है। सो विजयादेवी ने उत्तम ऐसे ये चौदह स्वप्न देखे हैं तो आपके घर में तीर्थंकर होनेवाले पुत्र रत्न की प्राप्ति होगी। जो राज्य सुख को भोगकर तीनों लोक में पूजनीय तीर्थंकर पद प्राप्त करेगा। राजाने स्वप्न पाठकों को पारितोषिक देकर सम्मानित किया।

गर्भ प्रतिपालन :

विजयादेवी ने उस दिन से अपने आहार विहार और विचार तीनों को गर्भ की सुखाकारीता में प्रवृत्त कर दीये। वह अब आहार वही लेती थी जो गर्भस्थ शीशु को उपकारक हो। वह खट्टे, चटपटे मसालेदार और अधिक मीठे तले हुए पदार्थों को ग्रहण न करती थी। सुपाच्य और पौष्टिक प़दार्थो की ओर उसकी रुची हो गयी थी। वह अब मंद गति से चलती थी। उसकी चाल में चंचलता का नामो निशान न था। उसके विचार सात्त्विक थे। उसे दोहद भी उत्तम उत्पन्न होते थे। जितशत्रु राजा उन दोहदों को पूर्ण करता था।

प्रभु का जन्म :

गर्भकाल पूर्ण होने पर माह सुदि अष्टमी के दिन मध्य रात्रि में विजयादेवी ने सुख पूर्वक पुत्ररत्न को जन्म दिया। प्रभु के जन्म होते ही छप्पन्न दिक्कुमारियों के आसन कंपायमान हुए और उन्होंने अयोध्या आकर सूतिका कर्म कर जिन एवं जिन माता को प्रणाम कर स्व स्व स्थानक पर गयी। इंद्रासन कंपायमान हुआ। चौसठ इन्द्रोंने आकर मेरुपर्वत पर प्रभु का जन्मोत्सव़ मनाया। सौधर्मेन्द्र प्रभु को पंच रुप से लेकर आया और पुनः ज़न्मोत्सव के बाद प्रभु को अयोध्या में रखकर उद्घोषणा की कि जो कोई देव-दानव या मानव प्रभु और प्रभु की माता का अहित करेगा उसको मैं दंडित करूँगा। फिर प्रभु के पास रत्न जडित दडा आदि खेलने योग्य सामग्री और प्रभु के अंगुठे में अमृत का संचार कर सौधर्मेन्द्र स्व स्थानक पर गया।

प्रातः जितशत्रु राजा को दासी ने पुत्र जन्म की बधायी दी। राजाने उसको दासीपने से मुक्तकर, जीवनभर चले उतना धन देकर संतोषित कर सन्मानित कर विदा किया। फिर संपूर्ण उत्साह उमंगपूर्वक जन्मोत्सव मनाया। नगरजनों ने, मित्र राजाओं ने जितशत्रु राजा को

भेटणा दिया। राजाने भी सहर्ष भेट स्वीकार की। बंदीजनों को मुक्तकर आनंद में सहभागी बनाये। दस दिनावधि तक राज्य का कर माफ कर दिया। बिना मूल्य पदार्थ दुकानों से जनता को प्राप्त हुआ। जनता ने भी अपने राजकुमार का जन्मोत्सव तन-मन से हर्षोल्लास पूर्वक मनाया।

नामकरण :

राजा ने नामकरण की विधि के समय कहा कि यह बालक गर्भ में आया उस दिन से विजयादेवी चौपट के खेल में सदा अजित रही। मैं उसे एक बार भी जीत न सका। अतः इस पुत्र का नाम 'अजितकुमार' देना चाहता हूँ। और इस कथन का परिवार ने सहर्ष स्वीकार किया। उस दिन से 'अजितकुमार' के नाम से बालक प्रख्यात बना। इंद्राणियों से देवांगनाओं से एवं पाँच धाव माताओं से लालित-पालित अजितकुमार किशोरावस्था में अपने समान आयु वाले बालकों के साथ क्रीडा करते युवावस्था में आए।

विवाह :

जितशत्रु राजा ने अजितकुमार का विवाह अनेक राजकन्याओं से किया। भोगावली कर्म को खपाने के लिए अजितकुमार ने संसारिक सुखों का निर्लेप भाव से उपभोग किया। अनेक पुत्र हुए।

राज्यावस्था :

जितशत्रु राजा ने वैराग्य भाव को प्राप्त कर अजितकुमार का राज्याभिषेक कर अजितकुमार राजा द्वारा कृत महोत्सव पूर्वक सद्गुरु भगवंत के पास चारित्र ग्रहण कर शिव सुख को प्राप्त किया। अजितराजा ने प्रजा प्रेम का पान अपनी न्यायप्रियता से किया। अजितराजा की कार्य कुशलता ने प्रजा के हृदय में गहरा स्थान प्राप्त कर लिया था। 'निस्पृही राजा राज्य सिंहासन से नहीं परंतु प्रजा के हृदय सिंहासन पर बिराजमान होकर राज्य का संचालन करता है। उनके राज्य काल में चोरी, झारी, कलह-कंकाश का कहीं नामो निशान न था। राज्य सभा में धर्म चर्चा अधिक होती थी। समय द्रुत गति से जा रहा था।

दीक्षा :

एक बार लोकान्तिक देवों ने प्रार्थना की कि 'प्रभु तीर्थ प्रवर्तावो' तब प्रभु ने दीक्षा अवसर को जानकर एक वर्ष तक वरसीदान देकर महा सुद ९ के दिन ६४ इन्द्रों द्वारा कृत दीक्षोत्सव पूर्वक एक हजार पुरुषों के साथ चारित्र ग्रहण किया। 'करेमि सामाइयं' सूत्र के उच्चार के साथ प्रभु को चतुर्थ मनःपर्यवज्ञान उत्पन्न हुआ। प्रभु ने वहाँ से विहार किया।

पारणा :

प्रभु का प्रथम पारणा ब्रह्मदत्त के घर क्षीरान्न से हुआ। वहाँ देवताओं ने साडे बारह

करोड सोना महोरों की वृष्टि की। अजितनाथ प्रभु ने पृथ्वीतल पर छभस्थपने में बारह वर्ष तक विहार किया।

केवलज्ञान :

पोष सुद ११ के दिन छट्ठ तप में प्रभु ने क्षपक श्रेणि का प्रारंभ किया और चार घाति कर्मों का क्षय कर, निर्मल, अखंड, अप्रतिहत, अनुपम, अप्रतिपाति, अनंत केवलज्ञान और केवलदर्शन प्राप्त किया। अजितनाथजी सर्वज्ञ और सर्वदर्शी हुए। चौसठ इन्द्रों और असंख्य देवोंने आकर प्रभु का केवलज्ञान उत्सव किया। समवसरण की रचना की। प्रभु स्वर्ण कमल पर चलकर समवसरण में पधारें। मालकोश राग में प्रभु ने देशना दी। उस समय सिंहसेन ने प्रथम गणधर पद प्राप्त किया। प्रभु के ९५ गणधर हुए। चतुर्विध संघ की स्थापना कर प्रभु पृथ्वीतल पर विचरने लगे।

सम्यक्त्व की महिमा :

एक बार अजितनाथ प्रभु का समवसरण कोशंबी नगरी के पास में हुआ। वहाँ एक ब्राह्मण युगल आया। देशना श्रवणांते प्रभु से पूछा,'हे भगवन्! यह ऐसा कैसे है?' प्रभु ने कहा,'यह सम्यक्त्व का प्रभाव है।' यह वाक्य श्रवणकर ब्राह्मण युगल आनंदित हुआ। तब प्रथम गणधर ने सारी सभा की श्रद्धा दृढ हो इसलिए प्रभु से पूछा,'भगवंत! इस ब्राह्मण ने क्या पूछा? आपने कहा उसका तात्पर्य क्या है?' तब प्रभु ने कहा, 'इस शहर के पास अभिग्राम नाम का गाँव है। वहाँ दामोदर नाम का एक ब्राह्मण रहता है। उसकी सोमा नाम की स्त्री से सिद्धभट नामक पुत्र हुआ और उसका विवाह सुलक्षणा से किया। दामोदर और सोमा के देहांत के बाद सिद्धभट की पैतृक संपत्ति नष्ट हो गयी। निर्धनावस्था के दुःख से दुःखी सिद्धभट पत्नी को बिना कहे धनार्थ परदेश चला गया। सुलक्षणा उससे विशेष दुःखी रहने लगी।

एक बार विपुला नामक साध्वी सपरिवार चातुर्मास के लिए सुलक्षणा के घर वसति की याचना कर ठहरी। सुलक्षणा ने उनके पास धर्म श्रवण कर अपने अनादि के मिथ्यात्व अंधकार को दूर कर सम्यक्त्व का निर्मल प्रकाश प्राप्त कर लिया। वह सच्ची श्राविका हो गयी। अब उसे निर्धनावस्था का कोई विचार ही नहीं आता था। वह अपनी आजीविका की कोई चिंता नहीं करती थी। कुछ वर्षों के बाद सिद्धभट भी धनार्जन कर अपने गाँव में आ गया। सिद्धभट के पूछने पर सुलक्षणा ने धर्म प्राप्ति की सारी कथा कही। सिद्धभट भी अपनी पत्नी की श्रद्धा से प्रभावित होकर शुद्ध समकितधारी हो गया।

इन दोनों के जैन धर्म की क्रिया कांड से उनके जाति वाले अन्य लोग उन दोनों पर द्वेष भाव के साथ तिरस्कार की प्रकृति वाले हो गये। इन दोनों ने इस पर कोई प्रतिक्रिया न की।

वे अपने धर्माचरण एवं व्यवहार की प्रकृति में आनंदित थे। कुछ समय जाने पर सुलक्षणा गर्भवती हुई। और गर्भ की प्रतिपालना पूर्ण रूप से कर उसने एक पुत्र रत्न को जन्म दिया। पुत्र दूज के चंद्रमा समान बडा हो रहा था।

एकबार सिद्धभट अपने पुत्र को गोदी में लेकर बाहर गया था। कुछ ब्राह्मण 'धर्म अंगीठी' के पास बैठे हुए थे। सिद्धभट वहाँ गया। उसे देखकर ब्राह्मण चिल्लाएँ, 'अय! धर्मभ्रष्ट! तूं यहाँ क्यों आया? चल निकल जा! यहाँ तेरे जैसे चंडालों का काम नहीं।' इस प्रकार उसका तिरस्कार किया। उसने अंशमात्र क्रोध न किया पर अपनी धर्मश्रद्धा को कसोटी पर चढाकर उनको प्रतिबोधित करने हेतु अपने पुत्र को यह कहकर अग्नि में डाल दिया कि 'मेरा धर्म सर्वोत्तम शुद्ध हो तो इस बालक के स्पर्श मात्र से आग शीतल हो जाय।' इधर पूर्व की चारित्र विराधना के कारण एक साध्वी व्यंतर निकाय में देवी हुई थी। और वह केवली भगवंत के वचन से निरंतर धर्म की प्रभावना हेतु घूम रही थी। वह उसी समय वहाँ आयी हुई थी। उसने बच्चे के अग्नि में गिरने के पूर्व अग्नि को शीतल बनाकर उस पर उस लडके को चित्र समान बिठा दिया। सभी ब्राह्मण इस दृश्य को देखकर, जलती आग को हाथ लगाकर शीतलता का अनुभव कर प्रभावित हुए और सभी ने सिद्धभट के चरणों में गिरकर क्षमा याचना की और सभी ने जैन धर्म स्वीकार किया। सिद्धभट ने घर जाकर अपनी पत्नी से सारी कथा कही। तब पत्नी ने कहा, 'ऐसा साहस तुमको नहीं करना था। ऐसे साहस में कभी धर्म की निन्दा भी हो सकती है। यह तो अपना पुण्य प्रबल था और किसी देव-देवी की सहायता मिल गयी। पर भविष्य में ऐसी कोई बात न बनें इसका ध्यान रखना। धर्म चमत्कार से नहीं परंतु श्रद्धा से विशेष फल दाता होता है।' इसके बाद इन दोनों ने समवसरण की बात सुनी और ये दोनों यहाँ आए। और इन्होंने कारण पूछा और मैंने सम्यक्त्व का प्रभाव कहा। इस विश्व में सम्यग्दर्शन ही धर्म का रक्षक और वर्द्धक है। इस प्रकार देशना देकर प्रभु ने विहार किया।

राक्षस वंश की उत्पत्ति :

एक बार प्रभु साकेत नगर में पधारें। समवसरण की रचना हुई। वहाँ देशना के समय वैताढ्य पर्वत पर से पूर्णमेघ ने 'सहस्रनयन' के पिता 'सुलोचन' को मारा था। उस वैर के रुप में सहस्रनयन ने 'पूर्णमेघ' को मार दिया। उस समय पूर्णमेघ का पुत्र 'मेघवाहन' शरण पाने की इच्छा से समवसरण में आया। उसके पीछे सहस्रनयन भी आया। सहस्रनयन प्रभु के अतिशय से शांत हो गया। तब चक्री सगर ने पूछा, 'प्रभु! पूर्णमेघ और सुलोचन के वैर का कारण क्या?'

भगवान ने कहा, 'सूर्यपूर नगर में भगवान नाम का वणिक करोडपति रहता था। एक

बार वह परदेश गया। बहुत सा धन कमाकर वापस आया। रात को अपने घर आया। परंतु उसके पुत्र हरिदास ने उसे चोर समझकर मार दिया। भगवान को उस समय हरिदास पर द्वेष आया। इधर हरिदास को बाद में मालुम हुआ कि मैंने अपने पिता को मारा है तब उसे पश्चाताप हुआ। उसका आयुष्य पूर्ण होने पर वह भी परलोक गया। दोनों भवभ्रमण कर सुकृत के योग से हरिदास का जीव सुलोचन हुआ और भगवान का जीव पूर्णमेघ हुआ और पूर्व का प्राणांतिक वैर उदय में आया। पूर्णमेघ ने सुलोचन को मारा।'

फिर सगर राजा ने पूछा, 'इन दोनों के पुत्रों में आपसी वैर क्यों हुआ? और मुझे सहस्रनयन प्रति प्रेम क्यों हो रहा है?' तब प्रभु ने कहा, 'कई भव पूर्व तुम रंभक नामक संन्यासी थे। उस समय शशी और आवली ये दो शिष्य थे। आवली अपनी नम्रता के कारण तुम्हें प्रिय था। उसने एक गाय खरीद की। तब शशी ने उसका विरोध किया। दोनों लड पडे। शशी ने आवली को मार डाला। आवली सहस्रनयन हुआ। शशी मेघवाहन हुआ। यही वैर का कारण है। और तुझे पूर्वभव का स्नेह इस भव में उदय में आया है।

उस समय वहाँ रहे 'भीम' नाम के राक्षस पति ने मेघवाहन को गले लगाकर कहा, 'पुष्करवर द्वीप के भरतक्षेत्र के वैताढ्य पर्वत पर कांचनपुर नगर में मैं विद्युद्दंष्ट नामका राजा था। उस भव में तू मेरा 'रतिवल्लभ' नाम का पुत्र था। तु मुझे अति प्रिय था। अब तुझे देखकर मुझे अत्यंत प्रीति उत्पन्न हुई है। तूं राक्षस द्वीप का राजा बन। और उसने मेघवाहन को लंका एवं पाताललंका का राज्य और राक्षसी विद्या और नौ माणिकों का बनाया एक हार दिया। उस समय से उसका वंश राक्षस वंश हुआ।

अजितनाथ प्रभु ने अपने केवली पर्याय में अनेक प्रकार से धर्मोपदेश दिया। उस धर्मोपदेश में अनके कथाओं का वर्णन किया। उसमें से कुछ कथाओं का वर्णन इसके पश्चात् के पृष्ठों में अपनी भाषा में लिखा है। इसे हम प्रभु का उपदेश समझकर अपने जीवन में उतारने का प्रयत्न करें।

● *देव स्वयं किसी को स्वेच्छानुसार कर्मों से मुक्त कर लेता हो तो फिर जगत भर के सभी जीवों पर करुणाशील देव क्यों उन्हें परिभ्रमण करने देता है? सभी को अतीव शीघ्रता से मुक्त क्यों नहीं कर लेता?*

- जयानंद

श्री भरत चक्रवर्ती चरित्र

जंबूद्वीप के भरतक्षेत्र में इस अवसर्पिणी काल के तीसरे आरे का अधिकांश समय व्यतीत हो जाने के बाद नाभीकुलकर की मरुदेवा पत्नी की कुक्षी में श्री ऋषभदेवजी की आत्मा चौदह स्वप्न पूर्वक आयी। मरुदेवा ने गर्भ की प्रतिपालना की और गर्भकाल के पूर्ण होने पर एक युगल को जन्म दिया। छप्पन्न दिक्कुमारियों ने सूतिका कर्म का महोत्सव किया और चौसठ इन्द्रों ने करोडों देवों के साथ मेरु पर्वत पर स्नात्र महोत्सव किया। नाभीकुलकर ने पुत्र का नाम 'ऋषभ' दिया। और साथ में जन्मी पुत्री का नाम सुमंगला दिया। ऋषभकुमार के अंगुठे में इन्द्रों ने अमृत का सिंचन किया था। वे बाल्यावस्था में अंगुठे को चूसकर उदर पूर्ति करते थे। इंद्राणियाँ, देवियाँ आकर ऋषभकुमार को अनेक प्रकार से प्यार करती थी। आहार योग्य अवस्था होने पर देवताओं द्वारा प्रदत्त कल्पवृक्ष के फलादि का आहार करते थे।

उस समय एक युगल जो अभी बाल्यावस्था में था। उसमें बालक के मस्तक पर एक फल गिरने से उसकी अकाल मृत्यु हो गयी। दूसरे युगलियों ने उस बालिका को नाभीकुलकर को सौंप दी। नाभीकुलकर ने 'यह ऋषभ की पत्नी होगी।' ऐसा कहकर उसका नाम सुनंदा दिया और उसका पालनपोषण मरुदेवा ने किया। विवाह योग्य उम्र होने पर देव-देवियों ने आकर विवाह उत्सव किया। फिर ऋषभ का राज्याभिषेक भी देवों ने किया। ऋषभ राजा ने उस समय के युगलिकों को व्यवहारिक ज्ञान दिया। कलाएँ सिखायी।

सुमंगला की कुक्षी से भरत और ब्राह्मी का जन्म हुआ। सुनंदा की कुक्षी से बाहुबली और सुंदरी का जन्म हुआ। उसके बाद सुमंगला की कुक्षी से ४९ युगलों का पुत्र रूप में जन्म हुआ। इस प्रकार ऋषभ राजा के सौ पुत्र और दो पुत्रियाँ हुई।

लोकांतिक देवों के द्वारा विनति करने पर ऋषभ राजा ने वरसीदान देकर भरत को अयोध्या का राज्य और बाहुबली को तक्षशिला का राज्य दिया। अन्य अट्ठाणुं पुत्रों को अंग, चंग, कुरु आदि देशों का राज्य दिया और ऋषभ राजा ने इंद्रादि कृत महोत्सव पूर्वक दीक्षा ग्रहण की। उनके साथ कच्छ, महाकच्छ आदि चार हजार व्यक्तियों ने भी दीक्षा ग्रहण की।

उस समय साधुओं को आहार वहोराने की विधि का ज्ञान किसी को न होने से थोडे ही दिनों में कच्छ महाकच्छ आदि ने फल फूल आदि खाकर जीवन निर्वाह करना प्रारंभ किया। मुनि ऋषभ एक वर्ष तक आहार के बिना विचरे।

विहार करते हुए हस्तिनापुर आये। वहाँ ऋषभराजा के पौत्र श्रेयांसकुमार ने उनको देखा। जाति स्मरण ज्ञान हुआ। अपने और भगवान के पूर्व भव के संबंध को देखा। और उसी समय आया हुआ ईक्षु रस प्रभु को वहोराया। प्रभु ने पारणा किया। उस समय से साधु को आहार वहोराने का ज्ञान लोगों को प्राप्त हुआ। इस काल में मुनिदान का प्रथम लाभ

श्रेयांसकुमार को मिला।

एक हजार वर्ष तक छद्मस्थपने में ऋषभमुनि विचरते-विचरते अयोध्या पधारें और वहाँ उन्हें केवलज्ञान उत्पन्न हुआ।

भरत राजा की आयुधशाला में उसी दिन चक्ररत्न भी उत्पन्न हुआ।

भरत राजा राजसभा में बैठे थे। उस समय यमक, समक नामक दो व्यक्तियों ने राजा को शुभ संदेश दिया। यमक ने कहा, 'प्रभु ऋषभदेव को केवलज्ञान उत्पन्न हुआ है। इन्द्रादि महोत्सव करने पधारें हैं।' समक ने कहा, 'आपकी आयुधशाला में चक्ररत्न उत्पन्न हुआ है।' दोनों को पारितोषिक दिया। क्षणभर विचार कर केवलज्ञान महोत्सव प्रथम करने का निर्णय कर दादीमाँ मरुदेवा के पास आया। प्रणाम करके कहा, 'माताजी! आप मुझे प्रतिदिन उपालंभ देती थी कि 'मेरा ऋषभ तो वन में कष्ट देख रहा है, शीत-ताप सहन कर रहा है तूं उसका कोई ध्यान नहीं रखता। तूं महलों में मौज कर रहा है।' और आपके ऋषभ की चिन्ता में रो-रोकर आँखों पर पडल आ गये हैं। अब आज मेरे साथ चलो मैं आपको ऋषभ की ऋद्धि दिखाता हूँ। मेरे पिता कितने सुखी हैं आज आप देख लें। इस प्रकार माताजी को हर्ष उत्पन्न करवाकर हाथी पर बिठाकर अपने परिवार के साथ प्रभु वंदनार्थ चला। देव दुंदुभी के नाद को सुनकर मरुदेवा ने भरत से पूछा ये मधुर वाद्य कहाँ बज रहे हैं? भरत ने कहा, 'आपके पुत्र की सेवा में आये देवता ये वाद्य बजा रहे हैं।' मरुदेवा माता को हर्ष उत्पन्न हुआ और हर्षाश्रु से आँख के पडल दूर हो गये। मरुदेवा माता ने अपने पुत्र को स्वर्ण सिंहासन पर करोडों देवों से सेवित देखा और मोह से युद्ध प्रारंभ हो गया और हाथी पर बैठे-बैठे ही 'मोह' को मार भगाया। क्षपकश्रेणि से केवलज्ञान और उसी समय आयु पूर्ण कर मोक्ष पधारीं मरुदेवा माता। ऋषभ पुत्र ने अपनी माता को सर्व प्रथम मोक्ष में भेजकर सर्वोत्तम मातृ ऋण पूर्ण किया। तीर्थ की स्थापना हुई। भरत के पुत्र-पौत्रों ने दीक्षा ली।

भरत राजा साठ हजार वर्ष छः खंड पृथ्वी को जीतने में व्यतीत कर अयोध्या में आया। सुंदरी को स्त्रीरत्न करने के लिए चारित्र लेने की आज्ञा नहीं दी थी। सुंदरीने साठ हजार वर्ष तक आयंबिल तप किया। भरत को सुंदरी की कृशकाया का कारण घर के लोगों से ज्ञात हुआ और सुंदरी को महोत्सव पूर्वक दीक्षा दिलवायी।

इधर चक्ररत्न आयुधशाला में प्रवेश न करने का कारण सेनापति से जानकर अट्ठयानबें भाइयों को समाचार भेजे। वे सभी मिलकर ऋषभदेव के पास गये और भगवंत ने उन्हें वैतालिय अध्ययन सुनाकर प्रतिबोधित कर दीक्षा दी। उनके पुत्रों ने भरत की आज्ञा स्वीकृत की। फिर भी चक्ररत्न ने आयुधशाला में प्रवेश न किया। तब सुषेण सेनापति ने भरत राजा से कहा आपका भाई बाहुबली जब तक आपकी सेवा में उपस्थित न होगा तब

तक चक्ररत्न आयुधशाला में प्रविष्ट नहीं होगा। भरत ने दूत भेजा। बाहुबली ने दूत को वापिस भेजा। बारह वर्ष दोनों भाइयों का युद्ध हुआ। लाखों जीवों का संहार हुआ। सौधर्मेन्द्र ने दोनों भाइयों को समझाकर दोनों भाइयों के बीच पाँच युद्ध करने का निर्णित किया। दृष्टियुद्ध, वाग्युद्ध, मुद्गरयुद्ध, बाहुयुद्ध, मुष्टियुद्ध। पाँचों युद्धों में बाहुबली की जीत हुई। भरत आक्रोश में आ गया। नीति को भूलकर चक्ररत्न बाहुबली पर छोडा। सगौत्रिय पर चक्र कार्य न करने से वापिस आया। तब बाहुबली भी आक्रोश में आकर भरत को मारने के लिए मुष्टि उठाकर मारने दौड़ा, अध बीच में विवेक जागृत हुआ। बडे भ्राता ने भूल की इसलिए क्या मुझे भी भूल करनी! धन्य है मेरे भ्राताओं को जिन्हों ने इस असार क्लेशमय संसार को छोडकर चारित्र ग्रहण किया है। इस प्रकार विचार कर उसी मुष्टी से लोच किया। देवताओं ने वेश दिया। भरत ने वंदना की। बाहुबली ने सोचा, 'मुझे समवसरण में जाकर छोटे भाइयों को वंदना करनी पडेगी।' मैं केवलज्ञान प्राप्त कर ही वहाँ जाऊँगा। ऐसा सोचकर काउस्सग्ग ध्यान में एक जगह खडे रह गये। एक वर्ष बीता। ऋषभ प्रभु ने ब्राह्मी सुन्दरी साध्वी को कहा, 'तुम्हारे भाई मुनि को प्रतिबोध देने जाओ।' वहाँ जाकर कहना, 'गज पर सवार को केवलज्ञान नहीं होता।' दोनों साध्वियों ने बाहुबली को उपरोक्त शब्द कहें। बाहुबली ने सोचा मैं हाथी पर कहाँ बैठा हूँ? मैं तो पैरों पर खडा हूँ। साध्वियाँ झूठ नहीं बोल सकती। इनके कहने का तात्पर्य क्या है? इस पर विचार करते करते मान हाथी पर मैं बैठा हूँ ऐसा ख्याल आया। और विचारा कि मेरे से पहले दीक्षा लेने वाले, मेरे से पहले केवलज्ञानी बनें, मेरे भाई मुनियों को वंदन करना मेरा धर्म है। ऐसा सोचकर वंदन करने के लिए जाने हेतु पैर उठाया और क्षपकश्रेणि पर चढ गये और केवलज्ञान प्रकट हो गया। प्रभु के पास आकर केवलज्ञानियों की पर्षदा में बैठे।

भरतजी का चक्रवर्तीत्व का अभिषेक बारह वर्ष चला। अब भरतचक्री ८४ हजार स्त्रियाँ, बत्तीस हजार मुकुट बद्ध राजाओं से सेवित समय व्यतीत कर रहे हैं।

एक बार भगवंत की देशना सुनने गये थे। तब साधुओं को आहार वहोराने हेतु पाँचसौ गाडियाँ भरकर आहार ले गये। ऋषभ प्रभु ने आधाकर्मी और सामने लाया आहार साधु को नहीं कल्पता ऐसा कहा। भरतजी ने कहा तो मेरे घर निर्दोष आहार के लिए मुनि भगवंतों को भेजो, तब प्रभु ने कहा राजपिण्ड भी साधु को नहीं कल्पता। ऐसा सुनकर भरतजी खिन्न हो गये। तब इन्द्र ने प्रभु से अवग्रह कितने प्रकार का है, ऐसा पूछा तब प्रभु ने कहा, 'पाँच प्रकार का अवग्रह है। यथा चक्रवर्ती का अवग्रह, राजा का अवग्रह, गृहस्थ का अवग्रह, और साधु का अवग्रह। इन पाँचों की आज्ञा से साधु विहार करते हैं। तब इन्द्र ने कहा, 'मैं मेरे अवग्रह में साधुओं को विचरने की विनति करता हूँ।' चक्रवर्ती ने भी ऐसा ही कहा।

भरत ने इन्द्र से पूछा अब इस आहार का क्या करूं? इन्द्र ने कहा आप से अधिक गुणवाले आत्माओं को भोजन कराओ। फिर उसने श्रावकों को बुलाकर कहा आप प्रति दिन मुझे आकर इस प्रकार कहना 'जितो भवान भयं भूरि ततो मा हन मा हन।', 'तुम इंद्रियों के द्वारा जिते हुए हो भय की वृद्धि हो रही है अतः आत्म गुण का हनन न करो, सावधान रहो।'

श्रावकों ने प्रतिदिन ऐसा कहना प्रारंभ किया। और भरत चक्री ने उनको भोजन करवाना प्रारंभ किया। कुछ दिन पश्चात् भरत के नियुक्त सेवकों ने आकर कहा संख्या इतनी बढ़ रही है जिससे लगता है श्रावकों के साथ अश्रावक भी आ रहे हैं। तब भरतजी ने श्रावकों की पहचान हेतु उनके शरीर पर काकिणी रत्न से तीन रेखाएँ कर दी। उनके स्वाध्याय के लिए चार वेद भी बना दिये। भरतजी कभी-कभी उनकी परीक्षा भी करते थे। श्रावकों को भोजन करवाने का कार्य उनके पुत्र-पौत्रादि ने भी किया। उन्हों ने स्वर्ण की फिर रजत की जनोई दी फिर धीरे-धीरे सूत की जनोई आयी। भगवंत सुविधिनाथजी के शासनकाल में साधुओं का विच्छेद होने पर ये ही माहन ब्राह्मण बन गये। नये वेद भी बना लिये। और प्रचार प्रारंभ किया कि ब्राह्मणों को देने से तुम्हारे पितरों को स्वर्ग में मिल जाता है। इस प्रकार ब्राह्मणों की उत्पत्ति हुई।

भरत पुत्र मरीचि ने चारित्र लिया था। परंतु चारित्र का पालन पूर्ण रूप से करने की अपनी अशक्ति को जानकर उसने छत्रधारण किया, जटा रखनी प्रारंभ की, फासु पानी से स्नान प्रारंभ किया, पैरों में चाखडी पहन ली। पात्र के स्थान पर कमंडल रख दिया। इस प्रकार त्रिदंडी के रूप में भगवाने के साथ विचरने लगा। उपदेश शुद्ध देता था। एकबार भरत ने प्रभु से पूछा, 'हे प्रभु! इस पर्षदा में भविष्य में आपके समान पदवी पानेवाला कोई जीव है?' तब प्रभु ने कहा, 'इस पर्षदा में तो कोई नहीं है। परंतु पर्षदा के बाहर तेरा पुत्र मरीचि इस अवसर्पिणी काल का प्रथम वासुदेव, महाविदेह क्षेत्र में चक्रवर्ती और यहाँ चौबीसवाँ तीर्थंकर वर्धमान नाम का होगा। तीर्थंकर होनेवाले आत्मा के दर्शन, वंदन के इच्छुक भरतजी मरीचि के पास आकर कहने लगे मैं आपके इस वेश को, वासुदेवपने को या चक्रवर्तीपने को वंदन नहीं कर रहा हूँ। मैं तो आप चौबीसवें तीर्थंकर बनोगे इस अपेक्षा से तीर्थंकर की आत्मा को वंदन कर रहा हूँ। भरतजी तो वंदन कर गये। परंतु मरीचि को मद आ गया। उसने सोचा मेरा कुल कितना ऊँचा, मेरे दादा तीर्थंकर, मेरे पिता चक्रवर्ती, मैं वासुदेव, चक्रवर्ती होकर तीर्थंकर बनूंगा। इस प्रकार अहंकार में आकर नाचे। उस समय नीच गौत्र कर्म बांध लिया।

एक बार मरीचि बिमार पडे। किसी साधु ने उनकी सेवा न की। तब एक शिष्य करने का विचार किया। और एक दिन कपिल नामका एक व्यक्ति आया। मरीचि ने प्रतिबोध दिया और दीक्षा के लिए भगवंत के पास भेजा। कपिल ने वहाँ जाकर पुनः मरीचि के पास आकर

पूछा वे तो ऐश्वर्य का उपभोग कर रहे हैं वहाँ धर्म कहाँ है? आपके पास धर्म है या नहीं। तब मरीचि ने कहा, 'वहाँ भी धर्म है यहाँ भी धर्म है।' इस प्रकार उत्सूत्र भाषण कर एक कोडा-कोडी सागरोपम काल की संसार भ्रमण की वृद्धि की।

ऋषभदेव प्रभु विहार करते हुए अपने अंतिम समय को जानकर अष्टापद पर्वत पर आये। और एकसौ आठ आत्माओं ने महा वद १३ को एक साथ एक समय में निर्वाण पद प्राप्त किया। उत्कृष्ट संघयणवाले एक समय में एकसौ आठ मोक्ष में गये यह दश आश्चर्य में एक आश्चर्य है। भरतजी को समाचार मिलते ही भरतजी पैदल ही अष्टापद पर आये और इन्द्रादि देवों द्वारा कृत अग्नि संस्कार में सम्मिलित हुए और उसके बाद भरतजी ने वहाँ जिनमंदिर बनाया। चौबीस भगवंतों की उनके देह प्रमाण प्रतिमा बिराजमान की। अपने निन्यानवें भाईयों की, दोनों बहनों की प्रतिमाएँ भी स्थापन की। स्वयं की प्रतिमा मरुदेवा माता के साथ हाथी की अंबाडी पर बैठे हुए के रूप में स्थापित की। उस जिनमंदिर की सुरक्षा हेतु उस पर्वत पर एक-एक योजन की आठ पावडियाँ बना दी। इस प्रकार भरत चक्रवर्ती ने अष्टापद पर्वत को तीर्थ बना दिया।

भरत चक्रवर्ती ने ८३ लाख पूर्व संसारिक सुखों का उपभोग करने में व्यतीत किये। एक दिन अपने रत्नों के बनें शणगार गृह में अपने देह की शोभा रत्नों के बने आदर्श में देख रहे थे। उस समय अचानक उनके हाथ की एक अंगुली में से एक अंगुठी गिर गई। अंगुली को शोभा विहीन देखकर विचार करते करते एक-एक आभूषण दूर करने लगे। जैसे-जैसे आभूषण दूर होते गये वैसे वैसे शरीर शोभा विहिन दिखाई देने लगा। भरतजी देह की स्थिति पर सूक्ष्मता से चिंतन करते-करते क्षपकश्रेणि पर आरूढ हो गये और घातिकर्मों का क्षय कर केवलज्ञानी बन गये। देवों ने वेश दिया। एक लाख पूर्व तक केवली पर्याय में विचरें। अंत में निर्वाण पद को प्राप्त हुए।

भरतचक्रवर्ती के पास चौदह रत्न, नव निधान, चौसठ हजार स्त्रियाँ, चौराशी लाख रथ, चौराशी लाख हाथी, उतने ही अश्व थे। वे बत्तीस हजार देशों के स्वामी, छन्नु करोड ग्राम के अधिपति थे। उनकी सेना में छन्नु करोड पदाती थे। इत्यादि अनेक प्रकार की ऋद्धि के स्वामी थे।

● *प्राण प्रतिष्ठा और प्रतिष्ठा कराने करनेवाले व करवाने वाले शास्त्रों में बताये गये गुणों से सहित होने चाहिए।* - जयानंद

श्री सगर चक्रवर्ती चरित्र

ऋषभदेवजी के निर्वाण के बाद पचास लाख करोड सागरोपम काल व्यतीत होने पर अयोध्या नगरी में ईक्ष्वाकु कुल में जितशत्रु राजा राज्य करता था। उसकी सुशीला सदाचारीणी विजया नामक पत्नी थी। उसने एक बार रात को चौदह स्वप्न देखे। उस समय अजितनाथ प्रभु कुक्षी में आये। गर्भकाल पूर्ण होने पर पुत्र रत्न का जन्म हुआ और उसका नाम अजितकुमार दिया।

जितशत्रु राजा का छोटा भाई सुमित्र युवराज था। उसकी सुशीला सदाचारिणी यशोमति नामक पत्नीने भी कुछ मंद प्रकाशित चौदह स्वप्न देखे। गर्भकाल पूर्ण होने पर पुत्र रत्न का जन्म हुआ और उसका नाम सगरकुमार दिया। दोनों का विवाह यौवनावस्था में हुआ। इस प्रकार अठारह लाख पूर्व व्यतीत होने पर अजितकुमार का राज्याभिषेक और सगर का यौवराज्याभिषेक कर दोनों भाइयों ने चारित्र ग्रहण कर आत्म सिद्धि सुख प्राप्त किया।

सगर का राज्याभिषेक :

अजितकुमार को लोकांतिक देवों ने तीर्थप्रवर्तन के लिए प्रार्थना की तब अजितराजा ने साडे चारशो धनुष्य की कायावाले युवराज सगर का राज्याभिषेक किया और प्रभुने वरसीदान देकर चारित्रग्रहण किया।

छः खंड की साधना :

सगर राजा बनने के बाद उसकी आयुधशाला में सुदर्शन चक्र रत्न उत्पन्न हुआ। फिर भरत चक्रवर्ती के समान छ खंड साधे। देव-मानवों ने मिलकर सगर का चक्रवर्ती पने का राज्याभिषेक किया। सगर की स्त्री रत्न का नाम 'भद्रा' था।

सगर पुत्रों का राज्यक्षमण और आयु पूर्ण :

सगरके साठ हजार पुत्र थे। उन सभीने एक बार राजा से निवेदन किया कि हम आपकी आज्ञा से चक्र सहित रत्नों को लेकर पृथ्वी पर घूमना चाहते हैं। राजा ने उनकी बात का सहर्ष स्वीकार किया। शुभ मुहूर्त में प्रस्थान किया। घूमते घूमते अष्टापद पर्वत पर पधारें। सैन्य को तलहटी में रखकर स्वयं ऊपर गये। वहाँ जिन प्रतिमाओं को वंदन पूजनकर अत्यंत आनंदित हुए। फिर मंत्री से पूछा ये मंदिर किसने बनवाये हैं? मंत्री ने कहा, 'ये मंदिर आपके पूर्वज भरत चक्रवर्ती के द्वारा निर्मित हैं।' तब जह्नुकुमार ने पूछा, 'ऐसा कोई दूसरा पर्वत है जहाँ हम भी ऐसे मंदिर बनवा सकें?' मंत्री ने कहा, 'इसके जैसा तो अन्य कोई पर्वत नहीं है।' तब उसने सोचा इस तीर्थ की सुरक्षा का हमें कोई उपाय करना चाहिए। यही उत्तम कार्य है।

इस विचार से उस पर्वत के चारों ओर दण्ड रत्न से खाई खोदने लगे। खाई खोदते-खोदते इतने गहरे चले गये कि नागलोक के देवों के भवन तक पहुँच गये। उन देवों ने ज्वलन

प्रभ नामक अपने इंद्र से निवेदन किया कि कोई व्यक्ति हमारे भवनों को तोडने हेतु आया है। तब नागराज ने आकर उन कुमारों को उपालंभ दिया। तब उन्होंने कहा, 'हमने तीर्थ की सुरक्षा के लिए यह खाई खोदी है, हमारी भावना आपके देव भवनों को नुकशान पहुँचाने की नहीं है।' नागराज ने उपशांत होकर कहा अब ऐसा मत करना। और इसका स्वीकार उन कुमारों ने किया। नागराज स्वस्थान पर गया।

जहनु ने पुनः सोचा 'खाई कुछ काल में भर जायगी। अतः इसमें पानी भरा जाय तो ठीक रहेगा।' दूसरे भाईयों से विचार कर गंगा नदी से जल लाया और खाई में पानी भरने लगा। वह जल नाग भवनों तक पहुँचा। देव-देवियाँ भागमभाग करने लगे। नागराज ने अवधि ज्ञान से देखा कि यह कार्य उन सगर पुत्रों का है। तब उनकी उद्धताई से आक्रोश में आकर नागदेवों को आदेश दिया, 'उन कुमारों को भस्म कर दो।' वे नागकुमार नाग बनकर बाहर आये और उन कुमारों पर दृष्टि फेंकी। वे सभी उसी समय भस्मीभूत हो गये। एक साथ साठ हजार सगर पुत्रों की मृत्यु को देखकर मंत्री आदि सब शोकाकुल हो गये। उन्होंने सोचा 'ये तो तीर्थरक्षा के भावों में मृत्यु को प्राप्त हुए हैं। अतः इनकी तो सद्गति ही हुई है। परन्तु हम सगर चक्री को यह समाचार कैसे देंगे?' इस प्रकार चिंतन करते करते वहाँ से चलते हुए अयोध्या के निकट आये। और यह सोचकर सबने अग्नि में भस्म होने का निर्णय कर लिया कि हम ये समाचार सगर चक्री को देनेमें असमर्थ हैं। उस समय इंद्र अवधिज्ञान से भरत क्षेत्र को देख रहा था। उसे यह प्रकरण दिखाई दिया। इस अनर्थकर घटना को रोकने के लिये इंद्र ब्राह्मण का वेश लेकर वहाँ आया। और उसने मंत्री आदि परिवार को समझाकर सगर चक्री को समाचार देने की जिम्मेदारी अपने ऊपर ले ली। मंत्री सेना आदि परिवार को थोडी देर बाद आने का कहकर स्वयं एक शब को लेकर राज सभा में गया। और आक्रंद पूर्वक बोलने लगा, 'हे राजन्! इस मेरे पुत्र को कृष्ण सर्प ने दंश मारा है। उसकी औषधि एक वैद्यराजजी ने बताई है कि जिसके घर में किसीकी मृत्यु न हुई हो, उसके घर की राख लाकर, इसके सर्प दंश के स्थान पर लगाने से जहर उतर जायगा। इसलिए मैं मेरे पुत्र को लेकर आपके पास में आया हूँ। आप ऐसी राख मुझे दीजिये।' सगर चक्री ने कहा, 'भाई! मेरे घर में तो मेरे दादा-परदादा आदि अनेकों की मृत्यु हुई है इसलिए मेरे घर की राख तो काम में नहीं आयगी। परन्तु मैं मेरे सेवकों को आदेश देता हूँ, वे नगर में जाकर ऐसे घर की तपासकर राख का प्रबंध करेंगे।' राजा का आदेश पाकर हजारों सेवक चारों ओर राख लाने गये। जैसे गये वैसे ही खाली हाथ लौटकर आकर राजा से निवेदन किया कि, 'राजन्! राख कहीं न मिली।, ऐसा घर कोई न मिला कि जिसके घर में किसी की मृत्यु न हुई हो।' ऐसा सुनकर राजा ने ब्राह्मण से कहा, 'विप्रवर! यह बात तो साधारण है कि ''जो जन्मा है उसकी मृत्यु निश्चित है, कोई दीर्घायुष्य

भोगता है, कोई अल्पायुष।'' इसलिए अब आपको इस पुत्र की मृत्यु का स्वीकार कर शोकरहित हो जाना चाहिए। आपको अब आत्मचिंतन करना चाहिए। रोने से अब यह आपका पुत्र जीवित होनेवाला नहीं।' ऐसे सगर चक्री के सान्तवना वाले वचन सुनकर विप्र बोला, 'राजन्! आपने कहा वह मेरे लिए हितकारी है वैसे ही ये वचन आपके लिए भी हितकारी हैं। क्योंकि आपके भी साठ हजार पुत्र तीर्थ रक्षा करते करते स्वर्गवासी बन गये हैं। इसका आप भी शोक न करें।' उसी समय पूर्व संकेतानुसार मंत्री आदि परिवार शोक सहित राज सभा में आया। और राजा को पुत्रों की मृत्यु के समाचार दिये। सगर राजा सुनते ही मूर्च्छित हो गया। शीतल चंदन जलादि का छंटकाव कर राजाकी मूर्च्छा दूर की। राजा विलाप करने लगा। तब ब्राह्मण ने सगर चक्री को उसीके वचनों से समझाया। फिर स्वयं का स्वरूप प्रकट कर सगर चक्री को शोक रहित कर इंद्र स्व स्थान पर गया।

सगर चक्रवर्तीने मंत्रियों से सारा वृतांत पूछा और मुख्यमंत्रीने अष्टापद पर्वत पर जाना, तीर्थ रक्षा के भाव उत्पन्न होना, खाई खोदना, देवों का समझाना, पुनः गंगानदी से पानी लाना और पानी का देवभवनों तक जाना, नागदेवों का कुपित होकर पुत्रों को भस्म करने तक का सारा वर्णन सुनाया। सगर चक्री को पुनः रोना आ गया।

इतने में अष्टापद के निकट निवासीजनोंने सगर चक्री की राजसभा में आकर पुकार पूर्वक निवेदन किया कि 'गंगा नदी का प्रवाह इतनी तेजीसे आ रहा है कि हमारे घरों में जल घूस गया है, हमारा घर में रहना मुश्किल हो गया है। आप इसका शीघ्र निवारण कीजिए।' तब भगीरथ नामक सगर के पौत्र ने चक्रवर्ती से आज्ञा माँगी। और चक्री की आज्ञा लेकर वहाँ जाकर उसने नागराज को संतुष्ट कर क्षमायाचना कर दण्ड रत्न से गंगा प्रवाह को पूर्व समुद्र में मिला दिया। लोग उपद्रव मुक्त हो गये।

गंगा के तीन नाम :

उस समय से गंगा के तीन नाम हुए। जह्नु ने लाई जिससे जाह्नवी, भगीरथ ने पुनः व्यवस्थित की इससे भागीरथी और मूल नाम गंगा।

साठ हजार सगर पुत्रों का पूर्वभव :

भगीरथ वहाँ से चक्री के आदेशानुसार कार्यकर अयोध्या आ रहा था। तब मार्ग में एक केवलज्ञानी मुनि भगवंत के दर्शन हुए और भगीरथने विनय और बहुमानपूर्वक वंदनाकर, उनसे धर्मोपदेश सुना। फिर पूछा, 'भगवंत! मेरे पिता जह्नु और मेरे काका आदि की इस प्रकार मृत्यु कैसे हुई ? इसका कारण बताने की कृपा करें।' तब भगवंत ने उनका पूर्वभव सुनाया।

एक गाँव में एक बार एक तीर्थयात्री संघ एक कुम्हार के घर के निकट विशाल मैदान में ठहरा था। उस समय उस गाँव के लोग जो चोर ही थे। उन्होंने तलवार, भाले आदि से सज्ज

होकर वहाँ आकर उस संघ के यात्रियों को लूटना चाहा। तब उस कुम्हार ने उन्हें मीठे मधुरे शब्दों से समझाया और संघ को लूटने से बचाया।

एक बार उस नगर के राजा ने कुपित होकर उस गाँव के सभी लोगों को चोरी का दंड देने के लिए पूरे गाँव को जलाने का आदेश दिया। सैनिकों ने पूरा गाँव जला दिया। उस समय वह कुम्हार बाहर गाँव गया हुआ था। वह बच गया। वहाँ से कुम्हार मरकर विराट देश में धनवान वणिक हुआ। गाँव के दूसरे लोग आयु पूर्ण कर विराट देश में ही सामान्य साधारण मानव बने। कुम्हार का जीव वहाँ से आयु पूर्ण कर उसी देश का राजा बना। वहाँ से परम ऋद्धिवाला देव बना। वहाँ से तुम भगीरथ बने हो। और वे गाँव के लोग अनेक भवों में भ्रमण करते करते शुभ पुण्योपार्जनकर सगर चक्री के पुत्र रूप में जन्में। और संघ लूटने के विचार के अशुभकर्म अवशेष थे। इसलिए ज्वलन प्रभ देव द्वारा वे मारे गये। इसमें ज्वलन प्रभ तो निमित्त मात्र हैं। वे देवलोक में गये हैं। इस प्रकार अपने पिता-काका आदि के पूर्वभव का वर्णन श्रवणकर भगीरथ को वैराग आया। पर मेरे पितामह को मेरी दीक्षा से असह्य पीड़ा होगी अतः उनको पूछकर बादमें दीक्षा लूंगा। ऐसा सोचकर वह अयोध्या में आया।

सगर चक्री पुत्रों की मृत्यु से अतीव उद्विग्न तो थे ही, इधर अजितनाथ प्रभु अयोध्या पधारें। सगर चक्री ने भगीरथ की इच्छा न होते हुए भी आज्ञा देकर उसका राज्याभिषेक करवाया। और भगीरथ ने महा महोत्सव पूर्वक सगर चक्रवर्ती का दीक्षा महोत्सव किया।

सगर मुनि बनने के बाद स्वाध्याय एवं सेवा को अपनाकर निरतिचार चारित्र पालन में संलग्न बन गये।

इस प्रकार चारित्र की पालना कर घातीकर्मों का क्षय कर केवलज्ञान प्राप्त किया। ज्ञानावस्था में अनेक भव्यात्माओं को प्रतिबोधित कर स्वयं अघाति कर्मों का भी क्षयकर ७२ लाख पूर्व का संपूर्ण आयुष्य पूर्णकर मुक्ति सुख के उपभोक्ता हुए।

● *जिनबिंब व जिन मंदिर में जो धन लगाया जाता है वह धन न्यायोपार्जित होना चाहिए। अन्यायोपार्जित धन जिनमंदिर, जिन बिंब के उपयोग में नहीं आना चाहिए। इस कारण पासत्थाओं के धन का उपयोग जिन बिंब व जिनमंदिरों में करने का निषेध किया है। उनका धन अन्यायोपार्जित गिना जाता है।* - जयानंद

श्री मघवा चक्री चरित्र

भरत क्षेत्र में श्रावस्ती नामक नगरी में समुद्र विजय नामक राजा राज्य करते थे। उनकी शीलव्रत धारिणी भद्रा नामक पट्टरानी थी। उसने एक दिन रात को चौदह स्वप्न देखे। निमित्तज्ञों ने चक्रवर्ती होने वाले पुत्ररत्न को महारानी जन्म देगी, ऐसा फलादेश बताया। परिवार में आनंदोत्सव सीमातीत हुआ। गर्भ की प्रतिपालना आयुर्वेदिक नियमानुसार होने लगी। गर्भकाल के पूर्ण होते ही पुत्र रत्न का जन्म हुआ। परिवार वालों ने देश निवासियों ने महा महोत्सवपूर्वक जन्मोत्सव मनाया। क्रम से यौवनावस्था में आने पर अनेक राज कन्याओं से उसका पाणि ग्रहण करवाया, फिर समुद्रविजय राजाने उसका राज्याभिषेक कर स्वयं ने चारित्र ग्रहण किया।

मघवाराजा की आयुध शाला में चक्ररत्न उत्पन्न हुआ। तत्पश्चात् मघवा चक्रीने भरत चक्रवर्ती के अनुसार छ खंड पर विजय प्राप्त कर राजाओंने साडी बेतालीस धनुष्य की कायावाले मघवा का चक्रवर्ती पद का राज्याभिषेक किया।

मघवा की स्त्री रत्न का नाम सुनंदा था। षट् खंड का स्वामित्व भोगकर वैराग वासित चित्त से संसार का त्याग कर चारित्र ग्रहण किया। चारित्र का निरतिचार पालनकर पांच लाख वर्ष का सर्वायु पूर्णकर मघवा मुनि सनत्कुमार देवलोक में देव बनें। वहाँ से मनुष्य भव पाकर सिद्धि सुख के उपभोक्ता होंगे।

मूर्तिपूजा

मूर्ति पूजा को हम नहीं मानते ऐसा निरुपण कर्ता पूज्य पुरुषों की प्रतिकृति न बनवाकर दूसरे रूप में मूर्तिपूजा कर आत्म संतोष मान लेते हैं ये हैं वे प्रकार :-

- *मुस्लिम लोग मस्जिदों में पीरों की आकृतियाँ बनवाकर पुष्प धुपादि से पूजा करते हैं, ताजिया बनाकर, मक्का मदिना जाकर काले पत्थर का चुम्बन कर अपने कृत कर्मों का नाश मानते हैं।*
- *ईसाई धर्मावलम्बी गिरजा घरों में [क्रोस] ईसा मसीह की सूली पर आकृति स्थापित कर द्रव्य भाव से पूजा कर पुष्पमाला आदि चढ़ाकर पूज्य भाव प्रगट करते हैं।*
- *कबीर नामक आदि पंथ वाले भी स्वयं के पूज्य पुरुषों की समाधि बनवाकर पुष्पादि अर्पण करते हैं* - जयानंद

श्री सनत्कुमार चक्री चरित्र

जंबूद्वीप के भरत क्षेत्र में कांचनपुर नगर में विक्रमयशा नाम का महापराक्रमी राजा-राज्य करता था। उसकी पांचसौ रानियाँ थी। उस नगर में नागदत्त नामका महर्द्धिक सार्थवाह था। उसकी रूपवती सौभाग्यशालिनी विष्णुश्री नाम की स्त्री थी। एकबार राजा की दृष्टि में वह आ गयी। राजा उसको देखकर उसके सौंदर्य से प्रभावित हुआ। उसने उसका अपहरण किया और उसे अंतपुर में ले गया। अन्य रानियों ने ईर्ष्यावश विष्णुश्री पर जादु टोना कर दिया, उससे वह प्रतिदिन क्षीण होती गयी और उसका आयु पूर्ण हो गया। राजा भी उसकी मृत्यु से विकल हो गया।

इधर नागदत्त अपनी पत्नी का अपहरण हो जाने से उसके विरह में पीडित होकर पागल की तरह नगर में घूमने लगा।

विष्णुश्री की मृत्यु से राजा भी नागदत्त की तरह प्रलाप करने लगा। मरी हुई होने पर भी वह जीवित है, ऐसा मानकर राजा उसका अग्नि संस्कार करने नहीं देता था।

इधर मंत्रियोंने बहाना बनाकर, दूर ले जाकर शव को अरण्य में फिंकवा दिया। राजाने शोक से अन्नपान छोड़ दिया। तब मंत्रियों ने अरण्य में ले जाकर राजा को शब दिखलाया। क्षत-विक्षत शब की दुर्गंधमय स्थिति देखकर राजा संसार की असारता पर चिंतन करने लगा। चिंतन करते-करते उसे संसार से विरक्ति हो गयी। वैराग्य भाव में आकर, राज्य की व्यवस्था करके अष्टाह्निका महोत्सवपूर्वक श्री सुव्रताचार्य भगवंत के पास राजाने चारित्र ग्रहण किया। ग्रहण शिक्षा, आसेवन शिक्षा ग्रहण कर निरतिचार चारित्र का पालन कर आयुष्य पूर्ण कर राजा सनत्कुमार देवलोक में देव बना।

राजा देवलोक के सुखों को भोगकर रत्नपुर नगर में एक श्रेष्ठि के घर पुत्र रूप में जन्मा। जन्मोत्सव मनाकर उसका जिनधर्म नाम करण किया गया। किशोरावस्था में सद्गुरू भगवंत के परिचय में आकर समकित पूर्वक श्रावकधर्म का पालन करने लगा। उसकी धर्म में दृढ श्रद्धा थी।

'नागदत्त' नगर में उन्मत्त की तरह घूम-घूमकर आर्तध्यान में आयु पूर्णकर, तिर्यंच योनि में चिरकाल तक घूमकर, अकाम निर्जरा के कारण, सिंहपुर नगर में अग्निशर्मा नामक ब्राह्मण पुत्र के रूप में जन्मा। युवावस्था में ही तापस बना, और उग्र तप करने लगा। घूमते-घुमते वह तापस रत्नपुर में आया। जनता में उसके तप की प्रशंसा होने लगी। एकबार मासखमण के पारणे के लिए राजाने निमंत्रण दिया। तापस ने निमंत्रण स्वीकार किया।

राजा के महल में जिनधर्म का आना-जाना होता रहता था। तापस के पारणे के दिन भी राजा के आमंत्रण से जिनधर्म वहाँ आया हुआ था। जिनधर्म को देखकर तापस के पूर्व

के वैरानुबंध के परिणाम जागृत हुए। उसने जिनधर्म प्रति द्वेषभाव धारणकर राजा से कहा, 'राजन्! इस जिनधर्म की पीठपर खीर का थाल रखकर पारणा करा सको तो मैं पारणा करूंगा, वरना नहीं।' राजाने कहा, 'मैं किसी दूसरे पुरूष की पीठ पर थाल रखकर पारणा करवा दूँ।' तब तापस ने कहा, 'नहीं। मैं तो इसी व्यक्ति की पीठ पर थाल रखकर पारणा करना चाहता हूँ।' तब राजा ने जिनधर्म से कहा। जिनधर्म ने कहा, 'राजन्! मैं समकित धारी हूँ। मेरे धर्म में इनको प्रणाम करने का विधान नहीं है। फिरभी ''राजाभिओगेणं'' नामके अपवादिक मार्ग का आलंबन लेकर आपका कहना स्वीकार करना पड़ता है।'' तदनंतर शेठने अपनी पीठ पर थाल रखवाकर तापस को पारणा करवाया। वह थाल शेठ की पीठ से चिपक गया। मांस सहित वह थाल निकाला गया। श्रेष्ठि ने घर आकर, सभी से क्षमापना कर, किसी त्यागी आचारवान् मुनि भगवंत के पास चारित्र ग्रहण किया। एक पर्वत पर जाकर अनशन किया। पक्षियों ने उसका मांस खाया। उस उपसर्ग को समभाव से सहनकर वह सौधर्म कल्प में देवेन्द्र बना। ब्राह्मण त्रिदंडी मरकर ऐरावत हाथी बना।

ऐरावत हाथी आयु पूर्णकर अनेक भवों में भ्रमण कर, अज्ञान तप कर, असिताक्ष नामक यक्ष योनि में देव हुआ।

जिनधर्म का जीव सौधर्मइंद्र का आयु पूर्णकर, भरतक्षेत्र के कुरु जंगल देश में हस्तिनापुर नगर में अश्वसेन राजा की सहदेवी भार्या की कुक्षि में आया। सहदेवी ने चौदह स्वप्न देखे। गर्भ का समय पूर्ण होने पर पुत्र का जन्म हुआ। राजा ने पुत्र का जन्मोत्सव उल्लास पूर्वक मनाया। पुत्र का नाम उसने सनत्कुमार दिया।

किशोरावस्था में महेन्द्रसिंह नामक प्रधानपुत्र के साथ सनत्कुमार की गाढ़ मित्रता हुई। अब दोनों साथ में ही रहते थे। युवावस्था आने पर एक दिन दोनों क्रीडार्थ वन में गये थे। वहाँ एक अश्व के व्यापारी ने अश्व बताये। एक अश्व पर सनत्कुमार आरूढ हुआ। अश्व वायुवेग से चला। विपरीत शिक्षित होने के कारण लगाम खींचने पर भी वह तैजी से दौडा। क्षणभर में अश्व राजादि की आंखों से दूर हो गया। राजादि पीछे दौड़े। इतने में आंधी आई और मार्ग दिखना बंद हो गया। महेन्द्रसिंह ने राजा को समझाया। वह अल्प परिवार के साथ कुमार को खोजने चला। परिवार भी भ्रमण करते-करते थक कर चला गया। अकेला महेन्द्रसिंह कुमार को खोजने चला। और खोजते-खोजते वह एक अटवी में प्रविष्ट हुआ। इस प्रकार एक वर्ष तक घूमा पर कुमार का कहीं पता न लगा।

एक दिशा में उसे पक्षियों की आवाज एवं संगीत ध्वनि सुनाई दी। उसने सोचा इस दिशा में मानव होंगे। वह उस दिशा में चला। वहाँ उसे विद्याधरियों के बीच सनत्कुमार दिखायी दिया। हर्षाश्रु पूर्वक महेन्द्रसिंह ने कुमार के चरणों में प्रणाम किया। कुमार ने गाढ़

आलिंगन देकर पूछा, 'यहाँ कैसे आ गया। अकेले कैसे आया ? माता-पितादि को कैसे भेजा? वे सभी स्वस्थ हैं?'' महेन्द्रसिंह ने कुमार के सभी प्रश्नों का संतोषजनक उत्तर देकर पूछा, 'आप यहाँ कैसे आये? मार्ग में आपको कोई विघ्न तो नहीं हुआ?' तब कुमारने अपनी मुख्य पत्नी बकुलमति को सर्व वृतांत कहने का आदेश दिया और स्वयं केलिगृह में जाकर सो गया।

बकुलमति ने कहा, 'अश्व से हरण करवाये हुए तुम्हारे मित्र दूसरे दिन क्षुधा और पिपासा से पीडित अश्व के खड़े रहने पर नीचे उतरे। वहाँ मूर्च्छित हो गये। उनके पुण्य से प्रेरित एक यक्ष ने उन्हें मानस सरोवर के जल से सिंचित किया। मूर्च्छा उतरने पर जलपान करवाया। कुमार ने पूछा, 'ऐसा शीतल जल कहाँ से लाया?' तब यक्ष ने, 'मानस सरोवर से लाया' ऐसा कहा। कुमार ने कहा, 'मुझे मानस सरोवर पर पहूँचा दो। मैं वहाँ स्नानकर थकान मुक्त हो जाऊँ।' यक्ष कुमार को मानस सरोवर पहूँचाकर स्व स्थान गया। कुमार ने स्नान किया। उस समय पूर्व भव का नागदत्त का जीव जो असिताक्ष यक्ष बना था, वहाँ आया। वह कुमार के साथ युद्ध करने लगा। कुमार ने उसे एक मुष्ठि मारी। उस मुष्ठि को वह सहन न कर सका और भाग गया।

इस कौतुक को देखने आये विद्याधरों ने कुमार पर पुष्प वृष्टि की। आर्यपुत्र वहाँ से चले। चलते-चलते उन्हें खेचर कन्यायें दिखाई दीं। आर्यपुत्र के पूछने पर उन्होंने कहा, 'हम भानुवेग विद्याधर की आठ कन्यायें हैं। हमारा स्थान पास में ही है। आप वहाँ पधारो।' आर्यपुत्र वहाँ गये।

भानुवेग विद्याधरने अभ्युत्थानादि पूर्वक आर्यपुत्र का स्वागत किया। और अपनी आठ कन्याओं के साथ पाणिग्रहण करने की प्रार्थना की। आर्यपुत्र ने उन आठ कन्याओं का पाणिग्रहण किया। रात को बद्धकंकण आर्यपुत्र को असिताक्ष यक्षने दूसरे स्थान पर फेंक दिया। जागृत होने पर अपने को अरण्य में देखकर विस्मित होकर कुमार विचार करने लगा। 'मैं यहाँ किसी के द्वारा लाया गया हूँ।' ऐसा सोचकर अरण्य में चलने लगा। थोडी दूर जाने पर एक सप्त मंजिल महल देखा। 'क्या यह भी माया तो नहीं है' ऐसा विचार करते हुए साहसकर महल पर चढ़ा। सातवीं मंजिल पर एक कन्या रुदन करती थी। उसके मुखसे निकला 'इस भव में मुझे सनत्कुमार पति के रूप में न मिले तो भी भवान्तर में तो वही मेरा पति हो' ऐसे शब्द सुनकर अपने नाम से आश्चर्यचकित होकर उसके पास में जाकर, उसे सांत्वना देकर, रोने का कारण पूछा। 'सनत्कुमार कौन? तू कौन है? यहाँ कैसे आयी? तुझे कष्ट क्या है? जिससे तू इस प्रकार रो रही है?' तब उसने कहा, 'मैं साकेतपुर के चंद्रयशा राजा की सुनंदा नामकी पुत्री हूँ। मैंने मन से अश्वसेन भूचर राजा के पुत्र सनत्कुमार को पति

रूप में मान लिया है। मेरे पिता ने भी उसके साथ विवाह की अनुमति दे दी है। एक विद्याधर मेरे रूप से मोहित होकर मुझे यहाँ ले आया है। इस प्रासाद को बनाकर वह कहीं गया है। मेरा क्या होगा। इसी चिन्तामें मैं रो रही हूँ।' तब आर्यपुत्र ने कहा, 'तू जिसको याद कर रही है, वह अश्वसेन राजा का पुत्र मैं ही हूँ। तू चिन्ता मत कर। डर मत।' कन्या लज्जा से मस्तक झुकाकर बोली मेरा भाग्योदय हुआ है। जिससे आपके दर्शन हो गये। इतने में अशनी वेग विद्याधर का पुत्र वायुवेग नाम का विद्याधर विवाह सामग्री लेकर वहाँ आया। आर्यपुत्र को वहाँ देखकर युद्ध करने लगा। आर्यपुत्र ने एक मुष्ठि प्रहार में उसका काम तमाम कर दिया। सुनंदा आनंदित होकर उनके समीप आयी। आर्यपुत्र ने नैमित्तिक के वचन से उस स्त्री रत्न का उसी समय पाणिग्रहण किया। इतने में वहाँ वायुवेग की बहन सन्ध्यावलि आयी। वहाँ भाई का वध देखकर क्रुद्ध हुई पर उसी समय उसे ज्ञानि के वचन याद आये कि 'तेरे भाई का वध कर्ता तेरा पति होगा' इससे शांत होकर उसने भी आर्यपुत्र से गांधर्व विवाह किया।

तभी दो विद्याधरोंने आकर कहा 'इस शस्त्र सामग्री सहित रथ पर आप आरूढ हों। आपके द्वारा वायुवेग के वध के समाचार सुनकर उसका पिता अशनिवेग युद्ध करने के लिए वायुवेग से आ रहा है। हमारे पिता चंद्रवेग और भानुवेग ने हम दोनों को आपकी रक्षा के लिए इस रथ के साथ भेजा है। आप इन शस्त्रों को ग्रहण कर रथ पर सवार होकर हमें आपकी सहायता की आज्ञा दीजिए। हमारे पिता भी सेना के साथ आ ही रहे हैं।' संध्यावलि ने भी पाठ सिद्ध प्रज्ञप्ति आदि विद्याएँ उसी समय कुमार को दीं। आर्यपुत्र शक्तिशाली तो थे ही अब तो वे विद्याओं की प्राप्ति से अधिक शक्ति संपन्न हो गये।

अशनिवेग अपनी विशाल सेना लेकर अपने पुत्र के हत्यारे को मारने हेतु आ पहुँचा। अशनिवेग के साथ आर्यपुत्र का तुमुल युद्ध हुआ। चंद्रवेग भानुवेग विद्याधर अपने पुत्र एवं सेना के साथ अशनिवेग के पक्षधर विद्याधरों से युद्ध करने लगे। अशनिवेग आर्यपुत्र पर अनेक विद्यासिद्ध शस्त्रों का प्रहार करने लगा। आर्यपुत्र ने उनके सभी शस्त्रों का नाश अपनी विद्या शक्ति से किया। इस प्रकार युद्ध करते-करते विद्यादेवी द्वारा प्रदत्त चक्र से आर्यपुत्र ने अशनिवेग का मस्तक छेद दिया। अशनिवेग की मृत्यु से सभी विद्याधर आर्यपुत्र की शरण में आ गये। पश्चात् कुमार अशनिवेग की राज्यलक्ष्मी अपने वशमें कर वैताढ्य पर्वत पर आ गये। वहाँ सभी विद्याधरों ने मिलकर आर्यपुत्र का महाराज्याभिषेक किया। आर्यपुत्र ने शाश्वत् अर्हत् प्रतिमाओं के सामने अष्टाह्निका महोत्सव किया।

एक बार मेरे पिता चंद्रवेग ने आर्यपुत्र से कहा, 'मैंने ज्ञानीपुरूष से पूछा था कि मेरी बकुलमति प्रमुख सौ कन्याओं का पति कौन होगा? तब उन्होंने कहा था कि अशनिवेग विद्याधर का वध करनेवाला सनत्कुमार चक्रवर्ती तेरी पुत्रियों का पति होगा। अतः आप

इनका पाणिग्रहण कीजिए।' मेरे पिता ने हमारी शादी आपके मित्र से की। आज हम क्रीडा करने यहाँ आये और आपका मिलन हो गया।'

सनत्कुमार केलिघर से बाहर आया। दोनों मित्र अब आनंदपूर्वक रह रहे हैं। शाश्वत् तीर्थों की यात्रार्थ दोनों परिवार के साथ जाते हैं। कुछ समय इस प्रकार व्यतीत होने के बाद महेन्द्रसिंह ने कुमार से कहा, 'आपके माता-पिता आपके वियोग में कितने दुःखी होंगे? अतः आप हस्तिनापुर पधारो।'

कुमारने चंद्रवेग विद्याधर से बात की। वहाँ राज्य की व्यवस्थाकर अपनी सभी पत्नियों को वहाँ बुलाकर अनेक विद्याधरों के परिवार के साथ कुमार हस्तिनापुर आया। माता-पिता के चरणों में प्रणाम कर सबको आनंदित किया। पुत्र की ऋद्धि-सिद्धि देखकर कौन पिता आनंदित नहीं होगा?

अश्वसेन राजा ने सनत्कुमार का राज्याभिषेक कर श्री धर्मनाथ प्रभु के तीर्थ में स्थित स्थविरों के पास चारित्रग्रहण कर आत्मसाधन किया।

सनत्कुमार की आयुधशाला में चक्र रत्न आदि की उत्पत्ति हुई और चक्रवर्ती ने छः खंड जीते।

हस्तिनापुर प्रवेश के समय पूर्व जन्म के मित्र सौधर्म शक्रेन्द्र ने राज्याभिषेक महोत्सव के लिए कुबेर को आदेश दिया। कुबेर देवने आकर, नगर को देव विमान जैसा बनाकर, एक योजन भूमि का मंडप बनाकर, सनत्कुमार चक्रवर्ती का देवताओं ने बत्तीस हजार मुकुट बद्ध राजाओं की एवं अनेक अन्य राजा एवं नगरजनों की उपस्थिति में चक्रवर्ती पद का राज्याभिषेक किया। पूरे नगर को धन-धान्य से समृद्ध बनाकर कुबेर अपने देव परिवार के साथ स्व स्थान में गया। राजा एवं प्रजा ने बारह वर्ष तक राज्याभिषेक महोत्सव किया। राजा की ओर से बारह वर्ष तक दंड-कर (टेक्स) आदि वसूल न किया। चक्रवर्ती पिता के समान प्रजा का पालन-पोषण करता था।

एकबार सौधर्मेन्द्र की देवसभा में ईशान देवलोक से एक देव इंद्र के कार्य से आया। उसके शरीर की कांति देखकर विस्मित हुए देवोंने उसके जाने के बाद इंद्र से पूछा कि इस देव के शरीर का तेज इतना अधिक किस कारण से है ? तब इंद्र ने अवधिज्ञान से देखकर कहा, 'इसने पूर्वभव में वर्धमान आयंबिल तपकी आराधना शुभभाव पूर्वक की थी। जिससे इस देव को ऐसा तेजस्वी शरीर मिला है।' पुनः देवों ने पूछा, 'इसके समान और कोई है?' इंद्र ने कहा, 'सनत्कुमार चक्रवर्ती के समान रूप तीन लोक में किसीका नहीं है।' इस वचन पर अश्रद्धा कर दो देव मानवलोक में आये। ब्राह्मण का रूप बनाकर राजद्वार पर आये। द्वारपाल ने चक्रवर्ती से पूछा, 'दो ब्राह्मण आपके दर्शन के लिए आये हैं।' चक्रवर्ती उस समय

स्नानगृह में स्नान कर रहा था। चक्रवर्ती ने आने देने का आदेश दिया। उन्होंने सनत्कुमार का रूप देखकर सोचा कि वास्तव में इंद्र ने जो कुछ कहा था उससे अधिक तेजस्वी रूप है। चक्रवर्ती के पूछने पर देवों ने कहा, 'हम आपके रूप को देखने आये हैं।' तब चक्रवर्ती को अहं ने घेर लिया और बोला, 'अब मेरा रूप क्या देखते हो? मेरा रूप तो जब मैं अलंकारों से सुशोभित होकर राजसभा में सिंहासन पर बैठूं तब देखना।'

देवोंने ये वचन सुनकर सोचा 'इतने बडे पुरूष के मुँह से स्व प्रशंसात्मक वचन? यह अनुचित है।' देव राजसभा में आये। राजा के रूप को विकृत देखकर विचार करते हुए मस्तक धुनाया। चक्री ने कहा, 'आपने मस्तक क्यों धुनाया?' उन्होंने कहा, 'हम सौधर्म देवलोक के देव हैं। इंद्र द्वारा आपकी प्रशंसा श्रवणकर आपके दर्शन के लिए आये थे। पर स्नानगृह के रूप में ओर अभी के रूप में आकाश-पाताल का अंतर आ गया है। आपके शरीर को रोगों ने घेर लिया है।' चक्रवर्ती ने थूकदानी में थूककर देखा तो उसमें किटाणु दिखाई दिये।

चक्री को आघात लगा। वैराग्य वासित होकर प्रव्रज्या के पुनीत पथ को ग्रहण किया। राज ऋद्धि छोडकर चले। परिवार छः मास तक अनुनय विनय करते-करते पीछे चला, पर मुनि ने मुड़कर देखा भी नहीं। परिवार घर आया। मुनि छट्ठके पारणे छट्ठ करने लगे।

पारणे में कई बार बकरी की छाश के साथ चने का आटा मिला। जिससे कुष्ट रोग उत्पन्न हो गया। इस प्रकार सनत्कुमार ने सौ वर्ष तक ज्वर आदि सात प्रकार के रोगों की वेदना सहन की जिससे उन्हे अनेक लब्धियाँ प्राप्त हो गयी। फिर भी वे वेदना को उपशांत करने का उपाय न कर समभावपूर्वक वेदना सहन करते रहे।

पुनः शक्रेन्द्र ने सनत्कुमार को अवधिज्ञान से देखकर उनकी रोगों की सहन करने की शक्ति की प्रशंसा की। वे दोनों देव पुनः वैद्य का रूप लेकर आये। औषधोपचार के लिए मुनि भगवंत से प्रार्थना की। तब सनत्कुमार मुनि ने कहा, 'भवरोग को मिटाने की औषधि हो तो दो। देह रोग मिटाना तो सहज है।' ऐसा कहकर अपना थूक एक कनिष्ठा अंगुली के अग्रभाग पर लगाया। अंगुली स्वर्ण के समान चमकने लगी। देवों ने प्रणाम कर कहा, 'आपकी सहन शक्ति की हम बार-बार अनुमोदना करते हैं। आप में इतनी लब्धियाँ होते हुए भी आप उनका उपयोग न कर वेदना सहन कर रहे हैं, इंद्र महाराजा की प्रशंसा से भी आपकी दृढता अधिक देखी।' इस प्रकार प्रशंसाकर देव देवलोक में गये।

चक्री पचास हजार वर्ष कुमार पने में, पचास हजार वर्ष मंडलिक पने में, दश हजार वर्ष दिग्विजय में, ९० हजार वर्ष चक्रवर्तित्व पने में और एक लाख वर्ष व्रत पर्याय में रहकर, तीन लाख वर्ष का सर्वायु भोगकर, अंत में अनशन कर, देवलोक में देवरूप में उत्पन्न हुए।

षोडशम जिन श्री शांतिनाथ चरित्र

जम्बूद्वीप के भरत क्षेत्र में रत्नपूर नगर में त्रिवर्ग साधन में तत्पर याचकों के लिए कल्पवृक्ष समान, रूपवान, दयावान श्रीषेण नामक राजा था। उसकी शीलगुण संपन्न, रंभा-उर्वशी से अधिक रूपवान अभिनन्दिता और शिखिनंदिता नामकी दो पत्नियाँ थी। एक बार अभिनंदिता ने स्वप्न में सूर्यचंद्र को अपने मुख में प्रवेश करते देखे। पूर्ण समय में दो पुत्रों का जन्म हुआ। उनका नाम इन्दुषेण और बिन्दुषेण दिया। वे क्रमशः सभी शास्त्रों में सभी कलाओं में निपुण हुए और यौवनावस्था को प्राप्त हुए।

कपिल और सत्यभामा :

इधर मगधदेश में अचलग्राम में धरणीजट नामक एक ब्राह्मण रहता था। उसकी यशोभद्रा नामक पत्नी थी। उससे नन्दिभूति और श्रीभूति नामके दो पुत्र थे। उस विप्र का कपिला नामक दासी से संबंध था। उससे कपिल नामक एक पुत्र हुआ। धरणीजट अपने दोनों पुत्रों को अध्ययन करवाता था। उस समय कपिल तीक्ष्ण बुद्धि से उन वेदों को सम्यक् प्रकार से धारण कर लेता था। इस प्रकार वह वेदाब्धि का पारगामी बन गया। फिर कपिल वहाँ से अन्य स्थान पर जाकर यज्ञोपवीत धारणकर मैं वेदपाठी ब्राह्मण हूँ ऐसी पहचान देता हुआ, नगर-नगर में जाने लगा। घूमता हुआ एक बार रत्नपूर में आया। वहाँ 'सत्यकि' नामक पंड़ित की पाठशाला में जाने लगा और पढ़ने वालों के संशयों का समाधान अच्छी प्रकार करने लगा। तब सत्यकिने उसे अनेक प्रश्न पूछे। उसने सभी प्रश्नों का योग्य उत्तर दिया। तब सत्यकि ने उसे अपने यहाँ रहने के लिए निमंत्रण दिया। अब वह वहाँ पाठशाला में अध्यापन करवाने लगा। सत्यकि उसे पुत्रवत् मानता था तो कपिल उसे पिता समान मानता था।

एक दिन सत्यकि ने सोचा मेरी पत्नी जंबुका से उत्पन्न सत्यभामा पुत्री जो यौवनावस्था में आयी हुई है। उसका विवाह इसके साथ कर दूं तो कपिल यहाँ ही रहेगा। मुझे पुत्री का विरह भी नहीं होगा और कपिल जैसा अन्य विद्वान व्यक्ति भी कहाँ मिलेगा? ऐसा सोचकर पत्नी की सलाह लेकर विवाह कर दिया। अब दोनों संसारिक सुख का उपभोग करते थे। सत्यकी और जंबुका का स्वर्गवास हुआ। कपिल लोगों द्वारा सन्मानित होता हुआ समय पसार कर रहा था।

एक बार रात को घर आ रहा था, तब वर्षा प्रारंभ हो गयी, तब उसने सोचा ये नये वस्त्र वर्षा में आर्द्र न हो इस हेतु उसने वस्त्र उतारकर कक्षान्त प्रक्षिप्त कर घर के पास में आकर पुनः वस्त्र पहन लिये। इधर सत्यभामा नये वस्त्र लेकर द्वार पर आयी और द्वार खोलकर वस्त्र बदलने हेतु विनति की। तब उसने कहा 'विद्या के प्रभाव से मेरे वस्त्र भिगे नहीं हैं।' तब सत्यभामा ने सोचा 'शरीर आर्द्र और वस्त्र अनार्द्र यह तो विद्या का प्रभाव नहीं है। ये मार्ग में

वस्त्र रहित चले हैं। यह बुद्धि नीच जाति की सुचक है। इनको अध्ययन किसीने करवाया नहीं है। सुनकर विद्वान बने हैं। नीच जाति-कुल वाले को वेदाध्ययन नहीं करवाया जाता। इस नीच जाति वाले से भोग सुख का कोई प्रयोजन नहीं।' अब वह उसके साथ मन्द अनुराग वाली हो गयी। इधर भाग्य योग से धरणीजट दरिद्रावस्था में आ गया। उसने कपिल की ख्याति सुनी थी। वह कपिल के पास द्रव्य की आशा से आया। कपिल ने योग्य सत्कार किया। और भोजन के समय पिता के लिए अलग से भोजन का थाल रखवाया। तब सत्यभामा को अपनी शंका सत्य लगी। उसने धरणीजट को ब्रह्म हत्या की शपथ देकर पूछा। 'यह आपका पुत्र शुद्ध पक्ष का है या अन्य पक्ष का?' तब धरणीजटने सत्य कहा। उसके बाद कपिल द्वारा अत्यधिक धन लेकर वह अपने नगर में आया।

सत्यभामा ने श्रीषेण राजा के पास जाकर विनति की कि 'मेरे अभाग्य से मुझे पति अकुलीन मिला है इससे आप मुझे मुक्त करावें। इससे मैं धर्माचरण में दत्तचित्त बन सकूंगी।' श्रीषेण राजा ने कपिल को बुलाकर समझाया। वह न माना। तब सत्यभामा ने कहा 'मैं आग में भस्म हो जाऊँगी पर इसके घर तो नहीं जाऊँगी।' तब राजा ने कहा 'इसे थोड़े दिन मेरे घर रहने दें फिर इसका निर्णय करेंगे।' कपिल ने उसे स्वीकारा। सत्यभामा वहाँ अनेक प्रकार से तप करती हुई रही।

अनंतमति के कारण युद्ध :

इधर कौशांबी नगरी के महाबल राजा ने श्रीकांता नामक अपनी पुत्री को इंदुषेण के लिए स्वयंवरा के रूप में भेजी। उस समय श्रीकांता के साथ अनंतमति नामक वेश्या पुत्री भी आयी थी। उस वेश्या पुत्री को देखकर दोनों भाई उसके रूप-यौवन पर मोहित बन गये। और उसको पाने के लिए दोनों आपस में युद्ध करने लगे। श्रीषेण राजा उनको समझा न सका। तब खिन्न होकर अपनी दोनों पत्नियों के साथ विषाक्त कमल सुंघकर प्राण त्याग दिये। सत्यभामा ने भी कपिल के भय से कमल सुंघकर प्राण त्याग दिये। जंबूद्वीप के उत्तर कुरूक्षेत्र में श्रीषेण अभिनंदिता युगल रूप में एवं शिखिनंदिता-सत्यभामा युगल रूप में उत्पन्न हुए।

दो भाईयों का पूर्वभव :

इंदुषेण, बिन्दुषेण को युद्ध करते देख एक विद्याधर वहाँ आया और उसने कहा, 'इस तुमारी बहन को न जानकर तुम युद्ध कर रहे हो।' दोनों विस्मित बनकर पूछने लगे। तब उसने कहा, 'जंबूद्वीप के महाविदेह में पुष्कलावती विजय में आदित्य नगर में सुकुंडली नामका राजा, उसकी अजितसेना पत्नी है, उसका मैं मणिकुंडली नामक पुत्र हूँ। मैं पुण्डरीकिणी नगरी में तीर्थंकर परमात्मा को वंदन करने गया था। वहाँ देशना के अंतमें 'किस कर्म के उदय से मैं विद्याधर बना ऐसा प्रश्न 'अमितयश' परमात्मा से पूछा।' तब प्रभुने कहा 'बीतशोका

पूरी में रत्नध्वज चक्री की कनकश्री और हेममालिनी दो रानियाँ थी। कनकश्री की कनकलता, पभलता दो पुत्रियाँ और हेममालिनी की पभा नामकी कन्या थी। वहाँ पभाने वैराग्य से चारित्र ग्रहण किया। एक बार वह गुरूणी की आज्ञा लेकर स्थंडिल जा रही थी। उस समय उसे एक मदनमंजरी वेश्या के लिए दो राजपुत्रों को युद्ध करते देखा। तब उसे विचार आया 'इसे धन्य है कि इसके लिए ये युद्ध कर रहे हैं। मुझे भी मेरे तप के प्रभाव से भवांतर में ऐसा ही सौभाग्य मिले।' इस प्रकार नियाणा किया। अंतमें इस नियाणे की आलोचना लिये बिना अनशन कर सौधर्म कल्प में देवी हुई। और कनकश्री अनेक भवों में भ्रमण कर दानादि धर्म कर मणिकुंडली विद्याधर हुआ है। कनकलता और पभलता अनेक भवों में भ्रमणकर दानादि धर्मकर श्रीषेण राजा के इंदुषेण बिन्दुषेण नामके पुत्र हुए हैं। पभा का जीव देवलोक से च्यव कर कौशांबी में अनंतमतिका नामक वेश्या हुई है। उसके कारण देवरमण वन में इंदुषेण बिन्दुषेण युद्ध कर रहे हैं। इस प्रकार जिनवर मुख से तुम्हारा वर्णन सुनकर युद्ध से निवृत्त करने के लिए यहाँ आया हूँ।

इंदुषेण-बिन्दुषेण दोनों भाई पूर्वभव श्रवणकर वैराग भाव से धर्मरूचि अणगार के पास चार हजार राजाओं के साथ दीक्षित हुए। और ध्याग्नि से कर्म इन्धनों को जलाकर वे दोनों मोक्षाधिकारी हुए।

श्रीषेणादि चारों युगलिक रूप में आयु पूर्णकर सौधर्म कल्प में देव देवी हुए।

अमित तेज और श्रीविजय :

इधर भरतक्षेत्र के वैताढ्य पर्वत पर रथनुपुर चक्रवाल नगर में ज्वलनजटिन विद्याधरेन्द्र का अर्ककीर्ति पुत्र और स्वयंप्रभा पुत्री थी। स्वयंप्रभा का विवाह पोतनपुर के प्रजापति राजा के पुत्र त्रिपृष्ठ वासुदेव के साथ किया था। अर्ककीर्ति का विवाह मेघवन विद्याधर की पुत्री ज्योतिमाला के साथ हुआ था।

श्रीषेण का जीव ज्योतिमाला की कुक्षी में आया। शुभ शुकन से जन्मे बालक का नाम अमिततेज दिया। सत्यभामा का जीव अमिततेज की बहन के रूप में जन्मा। उसका नाम सुतारा दिया। अभिनंदिता का जीव त्रिपृष्ठ वासुदेव की पत्नी स्वयंप्रभा के पुत्र रूप में जन्मा। उसका नाम श्रीविजय दिया। शिखिनंदिता का जीव श्रीविजय की बहन रूप में जन्मा, उसका नाम ज्योतिप्रभा दिया। कपिल का जीव तिर्यचादि योनियों में भ्रमणकर अशनिघोष नामा विद्याधरेन्द्र बना। अर्ककीर्ति ने अपनी पुत्री सुतारा का विवाह श्रीविजय के साथ किया। त्रिपृष्ठ ने भी अपनी पुत्री ज्योतिप्रभा का विवाह अमिततेज से किया। ज्वलनजटिन ने चारित्र ग्रहण किया।

एक बार रथनुपुर नगर के उद्यान में अभिनंदन, जगन्नंदन और ज्वलनजटिन ये तीनों

मुनिराज पधारे। उनके पास अर्ककीर्ति ने अमिततेज का राज्याभिषेक कर चारित्र ग्रहण किया।

त्रिपृष्ठ की मृत्यु के बाद अचल बलभद्र ने चारित्र ग्रहण किया। श्रीविजय राजा बना।

विद्युत्पात :

एक बार श्रीविजय और सुतारा को मिलने की इच्छा से अमिततेज पोतनपुर आया। वहाँ महोत्सव देखकर पूछा, 'यह महोत्सव किस निमित्त से हो रहा है?' तब श्रीविजय ने कहा, 'आज से आठवें दिन एक नैमित्तिक आया था। उसने पोतनपुर के अधिपति पर आज से सातवें दिन विद्युत्पात होगा। ऐसी भविष्यवाणी की। और उसने यह स्पष्टीकरण भी किया कि मैंने यह निमित्तज्ञान का अध्ययन चारित्र लेकर किया था। बाद में मैं पतीत हो गया। मुझे यह निमित्त दिखाई दिया इसलिए मैं आपको सूचना देने आया हूँ। और उस दिन मुझ पर स्वर्णाभूषणों की वर्षा होगी। अब आप आपका उपाय कीजिए। तब मंत्रियोंने अनेक प्रकार के विचार दर्शाए, पर दूसरों के प्राण हरण कर मुझे जीवित रहना योग्य न लगा। एक मंत्री ने कहा 'हम यक्ष की एक मूर्ति राज्य सिंहासन पर प्रतिष्ठित कर लें।' क्योंकि इसने पोतनपुर के अधिपति पर विद्युत्पात का कहा है न कि श्रीविजय राजा पर। इसलिए सात दिन के लिए यक्ष की मूर्ति का राज्याभिषेक कर दें। और राजा पौषध व्रत में रहे। ऐसा ही किया। विद्युत्पात हुआ। मूर्ति के टुकडे टुकडे हो गये। मैं सात दिन पौषध व्रत में रहा। आज पौषध पारकर आया हूँ। अंतपुर ने नैमित्तिक पर आभूषणों की वर्षा की। मैंने उसे पभिनीखंड नामक पत्तन (शहर) दिया। और यक्ष की नयी मूर्ति का निर्माण करवाया। उसी खुशी में आज महोत्सव हो रहा है।' अमिततेज कितने ही दिन तक वहाँ रहकर अपने नगर में आया।

सुतारा का अपहरण :

एकबार श्रीविजय सुतारा के साथ क्रिडा करने उपवन में गया था। वहाँ अशनिघोष ने सुतारा को देखी। राग उत्पन्न हुआ। और उसका हरण करने के लिए एक स्वर्ण के हरण (मृग) को दौडता दिखाया। सुतारा ने श्रीविजय को वह हरिण लाने का कहा। श्रीविजय उसे लाने के लिए उसके पीछे दौडा। अशनिघोष ने सुतारा का हरणकर प्रतारणी विद्या को सुतारा का रूप लेकर सर्प दंश से मूर्छित बनने का कहा। मुझे सर्प ने दंश मारा इस प्रकार चिल्लाती हुई वह कृत्रिम सुतारा मूर्च्छित हो गयी। उसके आवाज से श्रीविजय वापिस आया। औषधोपचार विफल गया। राजा मूर्च्छित हो गया। चेतना प्राप्त कर उसके साथ चिता में जलने का राजाने निर्णय ले लिया। सुतारा का शब लेकर चिता में चढ गया। आग लगा दी गयी। इतने में दो विद्याधर आये और आग शांत कर दी। उस समय प्रतारणि विद्या से बनी सुतारा अट्टहास करती आकाश मार्ग से चली गयी। तब विस्मित होकर श्रीविजय ने पूछा, 'यह कौन थी?'

तब दोनों विद्याधरों ने कहा, 'हम अमिततेज विद्याधर के सैनिक पिता-पुत्र हैं। जिन पडिमा को वंदन के लिए जा रहे थे। मार्ग में सुतारा का करुण स्वर सुनाई दिया और हम उस ओर गये। तब सुतारा ने कहा 'पहले पोतनपुरजाओ और वहाँ कृत्रिम सुतारा की मृत्यु से श्रीविजय राजा कहीं अग्नि प्रवेश न कर लें। उन्हें बचाओ। हम वहाँ से यहाँ आये। हमें देखकर वह प्रतारणि विद्या जो सुतारा का रूप लेकर आयी थी वह भाग गयी। अब आप वैताढ्य पर्वत पर पधारो। वहाँ अमिततेज अपनी बहन सुतारा को अवश्य ले आयेंगे।

श्रीविजय का अमिततेज ने स्वागत किया। उन दोनों विद्याधरों ने सुतारा के अपहरण की घटना बतायी। तब अमिततेज ने शस्त्रावरणी बन्धनी मोचनी विद्या दी और अपने पांचसौ पुत्रों को सेना सहित श्रीविजय के साथ युद्ध के लिए जाने का आदेश दिया। और स्वयं महाज्वाला विद्या को साधने के लिए अपने पुत्र सहस्त्ररश्मि को उत्तर साधक के रूप में साथ में लिया। श्रीविजय चमरचंचा नगरी के बाहर गया। और सुतारा को देने हेतु दूत के साथ अशनिघोष को संदेश भेजा। उसने युद्ध स्वीकारा। और दोनों में एक महिने तक युद्ध हुआ। इतने में परविद्याछेदकरी महाज्वाला विद्या को सिद्धकर अमिततेज आ गया। गन्ध हस्ति को देखकर गज भाग जाते हैं, वैसे अमिततेज को देखकर वह अशनिघोष भागा। उसके पीछे महाज्वाला विद्या को भेजी। अशनिघोष भागता हुआ, बलदेव मुनि को केवलज्ञान उत्पन्न हुआ था वहाँ पहूँचा। तब महाज्वाला ने आकर अमिततेज से सारा वृतांत कहा। अमिततेज ने 'मारीचि' विद्याधर को सुतारा को लेकर आने का कहकर, बाद में सभी द्रुत गामी विमान में बैठकर केवली की देशना सुनने आये। वंदनकर यथायोग्य स्थान पर बैठे। अशनिघोष ने श्रीविजय एवं अमिततेज से क्षमा याचना की। मारीचि उपवासी सुतारा को लेकर वहाँ आया। बलदेव केवलज्ञानी ने देशना दी।

अशनिघोष की दीक्षा :

देशना के अन्त में अशनिघोष ने पूछा 'मैंने सुतारा का अपहरण वासना से नहीं किया। परंतु इसे देखते ही मैं इसके बिना आगे ज़ाने में असमर्थ हुआ और इसक अपहरण किया। इसको मैंने मुँह से भी कोई अयोग्य वचन भी नहीं कहा। भगवंत सुतारा पर मुझे स्नेह आने का कारण आपश्री बताइये।' तब मुनि भगवंत ने सत्यभामा और कपिल के भव का वर्णन सुनाकर कहा, 'कपिल अनेक भवों में भ्रमण कर वह एक जटिल कौशिक तापस की पवनवेगा पत्नी से धर्मिल नामा पुत्र हुआ। वहाँ अज्ञान तप करते हुए विद्याधर की ऋद्धि देखकर विद्याधर बनने का निदान कर तुं अशनिघोष हुआ। और सत्यभामा का जीव सुतारा हुई है। पूर्वभव के संस्कार हजारों भवों के बाद भी स्मृति में आ जाते हैं। यह वर्णन सुनकर अमिततेजा श्रीविजय अशनिघोष आदि सभी विस्मित हुए। अमिततेज ने पूजा, 'मैं भव्य हूँ या

अभव्य?' तब केवलज्ञानी ने कहा, 'इससे नौवें भव में तुम पंचम चक्रवर्ती और सोलवें तीर्थंकर होंगे और यह श्रीविजय तेरा पुत्र होकर प्रथम गणधर होगा। श्रीविजय अमिततेजा ने बारहव्रत स्वीकार किये। अशनिघोष ने अपने पुत्र अश्वघोष को अमिततेजा को देकर कहा इस राज्य की व्यवस्था आप करें, मैं तो यहाँ ही चारित्रग्रहण करता हूँ। श्रीविजय की माता स्वयंप्रभा, अशनिघोष आदि अनेकों ने चारित्रग्रहण किया।

चारित्र ग्रहण :

श्रीविजय अमिततेजा धर्मकार्य में समय पसार करते थे। एकबार चारणमुनि को अपना आयुष्य पूछा तब मुनि ने छव्वीस दिन का शेषायु कहा। दोनों ने शीघ्र चारित्रग्रहण किया और पादपोपगमन अनशन स्वीकारा। श्रीविजय मुनिने अपने पिता की ऋद्धि का स्मरण कर नियाणा कर लिया कि भवांतर में मैं वैसी ऋद्धिवाला होऊँ। आयुष्य पूर्णकर दोनों प्राणत कल्प में मणिचूल-दिव्यचूल नामक देव हुए। वीश सागरोपम का आयु पूर्ण किया।

अपराजित-अनन्तवीर्य :

जंबूद्वीप के पूर्व विदेह में रमणीय विजय में शुभा नगरी में 'स्तिमितसागर' राजा की वसुंधरा-अनुद्धरा नामक दो पत्नियाँ थी। अमिततेजा वसुंधरा की कुक्षी से चार स्वप्न सुचित अपराजित बलभद्र के रूप में जन्मा और अनुद्धरा की कुक्षी से सात स्वप्न सूचित श्रीविजय का जीव अनन्तवीर्य वासुदेव के रूप में जन्मा। वे यौवनावस्था में आये।

एक बार स्तिमितसागर राजा ने स्वयंप्रभ मुनि के पास अनन्तवीर्य को राज्य देकर चारित्र ग्रहण किया। निरतिचार चारित्र का पालन करते थे। परन्तु अन्त समय में मन से चारित्र की विराधना करने से 'चमरेन्द्र' के रूप में देवेन्द्र हुए।

अनन्तवीर्य और अपराजित की मित्रता एक विद्याधर से हुई। उसने इनको विद्याएँ दी। विद्या साधने के लिए वैताढ्य पर्वत पर आये। वहाँ वे अपनी बर्बरी-किराती नामक दासी का नृत्य देख रहे थे। उस समय अचानक नारदजी वहाँ आये। वे दोनों नाटक देखने में व्यग्र होने से नारदजी का सत्कार न कर सके। नारदजी आवेश में आकर चले गये। फिर नारदजी ने प्रतिवासुदेव दमितारी के पास दोनों नर्तकियों के नृत्य की प्रशंसा की। तब उसने उनके पास दोनों नर्तकियों को भेजने के लिए दूत भेजा। तब अनन्तवीर्य ने विद्या सिद्ध करने का सोचा। दूत को कुछ दिन बाद नर्तकी को भेजने का वादा कर विदा किया। दोनों भाई विद्या साधने के लिए जाने की तैयारी करने लगे। इतने में प्रज्ञप्ति आदि विद्याओं ने आकर कहा 'आपको कष्ट देखने की आवश्यकता नहीं, हम स्वयंवरा के रूप में उपस्थित हैं।' फिर वे उनके शरीर में प्रविष्ट हो गयी। दूत पुनः आया। तब दोनों भाई नर्तकी का रूप लेकर दूत के साथ आये। दमितारी राजा उनके नृत्य से अतीव प्रसन्न बना। उसने अपनी पुत्री कनकश्री को नृत्य कला

की शिक्षा देने के लिए दोनों को उनके पास भेजी। वहाँ नृत्य कला का शिक्षण देते समय अनन्तवीर्य के रूप गुण का वर्णनकर अपराजित ने उसके हृदय में अनन्तवीर्य के प्रति सद्भाव उत्पन्न किया। कनकश्री ने अतिरागवान होकर अनन्तवीर्य को यहाँ लाने का कहा। तब कनकश्री की अनन्तवीर्य को देखने की तीव्र उत्कंठा देखकर अनन्तवीर्य प्रकट हुआ। कनकश्री उसके रूप को देखकर अत्यंत आसक्त बन गयी और उनके साथ चलने को तैयार हो गयी। उन दोनों ने विमान की विकुर्वणा कर उद्घोषणा कि, 'मैं अनन्तवीर्य अपराजित के साथ आकर कनकश्री का अपहरण करता हूँ।' तब दमितारीने युद्ध के लिए सैनिकों को भेजे। उस समय वासुदेव-बलदेव प्रायोग्य हल आदि उनके हाथ में आ गये। दमितारी के सैनिक अपराजित के सामने हार गये। तब दमितारी आया अनन्तवीर्य के सामने वह भी हारने लगा तब उसने चक्र को याद किया। उसके हाथ में चक्र आया। अनन्तवीर्य पर चक्र छोडा। चक्र अनन्तवीर्य के हाथ में आया। अनन्तवीर्य ने चक्र छोडा और उस चक्र ने दमितारी का शिरच्छेद कर दिया। देवताओं ने पुष्पवृष्टि कर उद्घोषणा की कि ये बलदेव और वासुदेव उत्पन्न हुए हैं। इनका शरण स्वीकार करो। तब सभी वासुदेव के शरण में आये। वासुदेव विमानारूढ होकर सभी के साथ शुभापुरी के प्रति चला। मार्ग में मेरूपर्वत पर जिनचैत्यों को वंदन कर कीर्तिधर मुनि के केवलज्ञान महोत्सव में सम्मिलित हुये।

कीर्तिधर ज्ञानीने देशना दी। देशनान्ते कनकश्री ने पूछा, 'मेरे कारण मेरे पिता का वध व भाइयों का विरह किस कर्म के उदय से हुआ?'

कनकश्री का पूर्वभव :

मुनि ने कहा : धातकी खंड के पूर्व भरत में शंखपुर ग्राम में श्रीदत्ता नामक नारी ने मुनि भगवंत के उपदेश से धर्मचक्रवाल तप करना प्रारंभ किया। एक बार पारणे के समय मासखमण के तपस्वी मुनि सुव्रतर्षि पधारे। उसने प्रासुक अन्नपान वहोराया। उस नारी ने मुनि से धर्म पूछा। मुनि ने कहा यहाँ धर्म सुनाने का हमारा आचार नहीं है। हमारे स्थान पर आना। वह वहाँ गयी। धर्म श्रवणकर उसने श्रावक के व्रत ग्रहण किये। स्व स्थान गयी। कितनेक समय तक धर्म का आचरण किया। कर्म विपाक से उसे एक बार धर्म फल में संदेह उत्पन्न हो गया। और एकबार विद्याधर की ऋद्धि देखकर मोहित हो गयी। उस अतिचार की आलोचना किये बिना श्रीदत्ता ने आयु पूर्ण किया।

इधर मैं कनकपूज्य विद्याधर का कीर्तिधर नामक पुत्र था। मेरी पत्नि अनिलवेगा से दमितारी का जन्म हुआ दमितारी तीन खंड का भोक्ता हुआ। मैंने चारित्रग्रहण किया। और श्रीदत्ता का जीव दमितारी की पुत्री हुई। पूर्वभव में तूने मानसिक विराधना की आलोचना न ली। इसलिए तुझे इस भव में पिता का वध और भाई का विरह सहना पडा। कनकश्री अपने

पूर्वभव सुनकर संसार से विरक्त बन गयी। उसने अनन्तवीर्य से दीक्षा के लिए आज्ञा मांगी। तब वासुदेव ने उसे शुभानगरी में जाकर तीर्थंकर परमात्मा के पास महोत्सव पूर्वक दीक्षा दिलवाने का वचन दिया। केवलज्ञानी को वंदन कर सभी शुभानगरी में आये। वहाँ वासुदेव का राज्याभिषेक हुआ।

कनकश्री की दीक्षा :

एक बार स्वयंप्रभ प्रभु वहाँ पधारे। अनन्तवीर्य वासुदेव ने समाचार देने आनेवाले उद्यान पालक को साडे बारह क्रोड रूपये पारितोषिक में दिये। सभी वंदन करने आये। देशना सुनी। और महोत्सव पूर्वक कनकश्री ने चारित्र ग्रहण कर निरतिचार चारित्र का पालन कर शिव पद को प्राप्त किया।

सुमति की दीक्षा :

बलदेव की एक पुत्री सुमति के स्वयंवर मंडप में अनेक राजा-महाराजा पधारे थे। उस समय एक देवविमान आकाश से उतरा और उसमें से एक देवी ने मंडप में आकर सुमति को कहा, 'हे धनश्री! पूर्वभव का स्मरण कर!'

पूर्वभव में पुष्करवर द्वीप में पूर्व भरत के श्री नन्दनपुर में महेन्द्र राजा की अनंतमति की कुक्षी से कनकश्री और धनश्री नामकी दो पुत्रियाँ युगल रूप में जन्मी। युवावस्था में नन्दनगिरि मुनि के पास श्रावक व्रत ग्रहण किये। वहाँ दोनों क्रीडा करते नदी किनारे घूम रही थीं। वहाँ वीरांग विद्याधर दोनों का अपहरण कर ले गया। उसकी पत्नी वज्रश्यामलिका ने उन दोनों को विमान से नीचे गिरा दी। वे वंशजाल में गिरि मरणांत उपसर्ग मानकर अनशन ग्रहण किया। नमस्कार महामंत्र के प्रभाव से कनकश्री सौधर्मेन्द्र की नवमिका नामक अग्रमहिषी हुई वह मैं, और धनश्री कुबेर की पत्नी हुई। अपन दोनों की वहाँ भी प्रीति थी। अपन दोनों ने निर्णय किया था। जिसका प्रथम च्यवन हो उसे दूसरी ने प्रतिबोध देना। तो तूं धनश्री का जीव सुमति हुई है। अतः मैं तुझे प्रतिबोध देने आयी हूँ। जैन धर्म को समझकर चारित्रग्रहण कर। और सुमति ने प्रतिबोधित होकर चारित्रग्रहण कर अव्यय पद को प्राप्त किया।

अनन्तवीर्य का नरक गमन :

अनन्तवीर्य चौराशी लक्ष पूर्व का आयु पूर्णकर प्रथम नरक में बेंतालीस हजार वर्ष का आयु वाला नारकी बना। पूर्व जन्म के पिता चमरेन्द्र स्नेह से उसकी वेदना उपशांत करता था। फिर भी अपने कर्म का उदय मानकर अनन्तवीर्य का जीव नरक वेदना को सहन करता था।

अपराजित की दीक्षा :

इधर बलदेव अपराजित सोलह हजार राजाओं के साथ चारित्र ग्रहणकर चारित्र का

पालन कर अच्युतेन्द्र हुआ।

नरक से विद्याधर एवं देव होना :

अनन्तवीर्य का जीव नरक से आयुपूर्ण कर मेघनाद नामक विद्याधर बना। मेरूपर्वत पर अच्युतेन्द्र ने मेघनाद को प्रतिबोध दिया और मेघनाद ने चारित्र ग्रहण किया। एकबार नन्दन पर्वत पर एक रात्रि की प्रतिमा स्वीकार की। वहाँ पूर्व भव के वैरी अश्वग्रीव का पुत्र भवों में भ्रमणकर दैत्य योनि में जन्मा था। उसने उपसर्ग किये। किन्तु वह ध्यान से चलायमान न हुआ। मेघनाद मुनि इस प्रकार अनेक वर्षों तक चारित्र का पालन कर अच्युत देवलोक में देव हुआ।

चक्रवर्ती वज्रायुध–सहस्रायुध :

जंबुद्वीप के पूर्व विदेह में मंगलावती विजय में रत्न संचया नगरी थी। वहाँ क्षेमंकर राजा राज्य करते थे। वे तीर्थंकर नाम कर्मोदय वाले थे। उनकी रत्नमाला पत्नी की कुक्षी से चौदह स्वप्न सूचित अपराजित का जीव जन्म से तीन ज्ञानयुक्त जन्मा। माता ने स्वप्न में वज्र भी देखा था। अतः 'वज्रायुध' नाम दिया। यौवनावस्था में आने पर वज्रायुध का विवाह लक्ष्मीवती नामक राजकुमारी से किया। उसकी कुक्षी से अनन्तवीर्य का जीव सहस्रायुध के रूप में जन्मा। उसका विवाह कनकश्री नामकी राजकन्या से किया। उसकी कुक्षी से शतबल नामक एक पुत्र हुआ।

देव समकिति हुआ :

एक बार ईशान इंद्र ने वज्रायुध के दृढ सम्यक्त्व की प्रशंसा की। तब चित्रचूल नामक एक देव वज्रायुध से चर्चा करने मानवलोक में आया। ब्राह्मण के रूप में नास्तिक मत की अनेक प्रकार से सिद्धि करने का प्रयत्न किया। और वज्रायुध ने अकाट्य तर्कों से उसकी युक्तियों का खंडन किया। वह प्रतिबोधित होकर समकित प्राप्त कर वज्रायुध को दिव्यालंकारादि देकर देवलोक में गया।

एक बार वसंत ऋतु में लक्ष्मीवती के आग्रह से अपनी सातसौ पत्नियों के साथ वज्रायुध क्रीडा करने गया। वहाँ पूर्व जन्म का वैरी दमितारी का जीव चिरकाल भ्रमणकर विद्युद्दंष्ट नामक देव हुआ था। उसने कुमार का नाश करने के लिए एक शिला उसके ऊपर छोडी, वज्रायुध ने उस शीला को एक मुष्टि प्रहार से चूर्ण कर दी। नागपाश से पैर बांधे। उसे लीलामात्र में तोड दिये। उस समय शक्र सपरिवार नंदीश्वर द्वीप जा रहा था। उसने वज्रायुध को देखकर स्तुति की कि आपको धन्य है। आप सोलहवें तीर्थंकर श्री शांतिनाथजी होंगे। इस प्रकार कुमार को वंदना कर शक्र यात्रार्थ गया।

लोकान्तिक देवों की प्रार्थना से वरसीदान देकर क्षेमंकर राजा ने वज्रायुध का

राज्याभिषेक कर चारित्र ग्रहण किया। क्रमशः केवलज्ञान प्राप्त कर समवसरण में देशना देते विचरने लगे।

षट् खंड विजेता :

वज्रायुध के अस्त्रागार में चक्ररत्न उत्पन्न हुआ। क्रमशः छ खंड विजेता बने। सहस्रायुध को युवराज पद दिया।

शांतिमति का पूर्वभव :

एकबार सभा में एक विद्याधर वज्रायुध के शरण में आया। उसके पीछे शांतिमति नामकी पवनवेग विद्याधर की पुत्री हाथ में तलवार लेकर आकर चक्री से कहा 'इस नराधम को छोडो जिससे इस के पाप का फल इसे बताऊँ।' इसीके पीछे पवनवेग भी आया और उसने कहा यह पापी मेरी पुत्री विद्या साधनकर रही थी उस समय उसका अपहरण करने आया पर उसी समय उसकी विद्या सिद्ध हो गयी। इसलिए यह भागकर आपकी शरण में आया है। इसे आप छोडो, मैं इस गदा से इसको यमपुर में भेज दूँ। तब अवधिज्ञान से उसके स्वरूप को जानकर वज्रायुध ने कहा 'इसके पूर्वभव का संबंध सुनो।'

इस जंबूद्वीप के ऐरवत क्षेत्र में विन्ध्यपुर में विन्ध्यदत्त राजा था। उसका नलिनकेतु नामक पुत्र था। उसी नगरी में धर्ममित्र सार्थवाह का दत्त पुत्र अपनी प्रभंकरा पत्नी के साथ रहता था। एक दिन नलिनकेतु ने प्रभंकरा को उद्यान में देखकर उसका अपहरण किया। और उसके साथ क्रीडा करने लगा। दत्त उस के विरहानल से पीडित इधर-उधर घूमता था। एक बार उसे केवलज्ञानी मुनि मिले। उनके पास धर्म श्रवणकर प्रतिबोधित हो उपशांत हो गया। अब दानादि धर्म में आयु पूर्ण कर अजितसेन नाम का यह विद्याधर हुआ है। नलिनकेतु राजा होने के बाद प्रभंकरा पर अधिक आसक्त होकर क्रीडा में मग्न रहता था। एक बार वह आकाश में मेघ रचना को देखकर संसार से विरक्त हुआ। और क्षेमंकर जिनेश्वर के पास चारित्र ग्रहण कर केवलज्ञान पाकर मोक्ष में गया। प्रभंकरा ने सुव्रता गरुणी के पास में चन्द्रायण तप किया। सम्यक्त्व रहित उस तप के प्रभाव से यह शांतिमती हुई है। उस दत्त के जीव अजितसेन ने पूर्व भव के स्नेह से आकर्षित होकर इसका अपहरण किया है। इसलिए आक्रोश को छोडकर क्षमापना करो। वज्रायुध के वचनों का स्वीकार कर तीनों ने परस्पर क्षमापना की। वज्रायुध ने कहा, 'अतिशीघ्र तुम तीनों क्षेमंकर प्रभु के पास चारित्रग्रहण करोगे। और तुम दोनों इसी भव में शीवपद प्राप्त करोगे। शांतिमति रत्नावली तप कर अनशन कर ईशानेन्द्र बनेगी। तुम्हारा केवलज्ञान महोत्सव एवं निर्वाण महोत्सव करेगी। पश्चात् मानव भव पाकर यह भी सिद्धि पद को प्राप्त करेगी। यह भविष्य वाणी श्रवणकर तीनों ने कहा, 'हमारे स्वामी, गुरूदेव आप हैं, आप आज्ञा दीजिए जिससे हम यहाँ से ही क्षेमंकर प्रभु

के पास चारित्र ग्रहण करें।' वज्रायुध की आज्ञा लेकर तीनों ने प्रभु के पास चारित्र ग्रहणकर दोनों तो मोक्ष में गये। शांतिमति साध्वी ईशानेन्द्र हुई।

कनक शक्ति :

सहस्रायुध की पत्नी जयना की कुक्षी से कनकशक्ति नामक पुत्र हुआ। कनकमाला एवं उसकी सखी वसन्तसेना दोनों के साथ उसका विवाह हुआ। इससे वसन्तसेना के पिताके जीजाजी कुपित हो गये। कनकशक्ति को एकबार एक विद्याधर को आकाश में उडते और पुनः नीचे आते उद्यान में देखा। उस के पास जाकर पूछा। तब उसने कहा, 'मैं प्रमाद से आकाश गामिनी विद्या का एक पद भूल गया हूँ।' तब कनकशक्ति ने कहा, 'आप विद्या बोलो तो मैं पद पूर्ति कर दूंगा।' उसने पाठ बोला। पदानुसारी लब्धि से कनकशक्ति ने पद की पूर्ति कर दी। उस विद्याधर ने उसे आकाश गामिनी विद्या दी। कनकशक्ति ने उस विद्या को सिद्ध कर दी। अब वह अनेक तीर्थों की यात्रा करता था। इधर वसन्तसेना के पिता के जीजाजी कनकशक्ति का अहित करने में अपने आपको असमर्थ समझकर अन्नपानादि का त्यागकर आयु पूर्ण कर हिमचूल नामक देव हुआ। एकबार चारणमुनि विपुलमति के पास धर्मदेशना सुनकर प्रतिबोध पाकर कनकशक्ति ने अपनी पत्नियों को हिमवद्गिरि से घर पर छोडकर चारणमुनि के पास आकर चारित्र ग्रहण किया। उसकी पत्नियों ने भी विमलमति साध्वी के पास चारित्र ग्रहण किया। कनकशक्ति मुनि सिद्धगिरि की एक शिलापर एक रात्रि की प्रतिमा में स्थित थे। हिमचूल देव उपसर्ग करने लगा। तब विद्याधरों ने उसे भगाया। प्रतिमा पूर्णकर विहार करते रत्नसंचया नगरी में आये। वहाँ एक रात्रि की प्रतिमा स्वीकार की। वहाँ क्षपकश्रेणि पर चढकर केवलज्ञानी हुए। देवताओंने महोत्सव किया। हिमचूल शरण में आया। वज्रायुध भी केवलज्ञानी का महोत्सव कर देशना सुनकर स्वपूरी में आया।

वज्रायुध की दीक्षा :

वज्रायुध ने एक बार क्षेमंकर प्रभु की देशना सुनकर सहस्रायुध का राज्याभिषेक कर प्रभु के पास चारित्र ग्रहण किया। उग्र तपादि अनुष्ठान पूर्वक विहार करते सिद्धगिरि में आकर एक वार्षिकी प्रतिमा स्वीकार की। वहाँ अश्वग्रीव के पुत्र मणिकुंभ, मणिकेतु के जीव देव हुए थे। वे भ्रमण करते वहाँ आये। और मुनि को देखकर अमिततेज के भव का वैर स्मरणकर उपसर्ग करने लगे। उस समय इंद्र की पत्नियाँ अरिहंत को वंदन करने जा रही थी। मुनि को उपसर्ग होते देख उन देवों को तिरस्कार पूर्वक वहाँ से दूर किये और वज्रायुध मुनि के आगे नाटकादि कर प्रभु को वंदन कर स्वस्थान में गयी। मुनि भी वार्षिकी प्रतिमा पूर्णकर विहार किया।

सहस्रायुध की दीक्षा – दोनों का स्वर्गगमन :

एकबार गणधर भगवंत की देशना सुनकर सहस्रायुध ने भी अपने पुत्र 'शतबलि' का राज्याभिषेक कर चारित्र ग्रहण किया। विहार करते पिता मुनि मिले और दोनों साथ-साथ विहारादि करते हुए पादपोगमन अनशन कर तीसरे ग्रैवेयक में पच्चीस सागरोपम के आयु वाले अहमिन्द्र देव हुए।

मेघरथ :

जंबूद्वीप के पूर्व विदेह में पुष्कलावती विजयमें पुंडरीकिणी नगरी में भावी तीर्थंकर घनरथ राजा की प्रियमती की कुक्षी से व्रजायुध का जीव मेघरथ के रूप में तीन ज्ञान युक्त जन्मा। और मनोरमा की कुक्षी से सहस्रायुध का जीव दृढरथ के रुप में जन्मा। दोनों भाई यौवनावस्था में आये।

विवाह :

एक बार निहतशत्रु राजा के अमात्य ने आकर घनरथ राजा से कहा 'हमारे राजा उनकी दो पुत्रियाँ मेघरथ को और एक पुत्री दृढरथ को देना चाहता है। आप इन दोनों को वहाँ भिजवावे। राजाने अमात्य का कहना स्वीकार कर दोनों पुत्रों को विवाह के लिए सैन्य सहित भेजे। चलते-चलते सुरेन्द्र दत्त राजा की सीमा में आये। सुरेन्द्र दत्त ने एक दूत भेजकर मेघरथ से कहलवाया कि आप इस मार्ग से न जाये। दूसरे मार्ग से जाये, नहीं तो कुशल नहीं रहेगा। तब मेघरथ ने कहा यह सरल मार्ग हम क्यों छोडे ? हम तो इसी मार्ग से जायेंगे। तब सुरेन्द्र दत्त ने युद्ध किया और मेघरथ ने उन पिता पुत्र दोनों को युद्ध में पकडकर साथ में ले लिया। सुमंदिरपुर में निहतशत्रु राजा की पुत्रियों से विवाह कर वापिस आते समय सुरेन्द्र दत्त और उसके पुत्र को मुक्तकर उनका राज्य उनको देकर अपने स्थान पर आये। मेघरथ के नंदिषेण और मेघसेन और दृढरथ को रथसेन नामक पुत्र हुए।

कुक्कुट का युद्ध :

एक बार घनरथ अन्तपुर में था उस समय सुसेना नामक वेश्या एक कुक्कुट लेकर आयी और कहा 'मेरा यह कुक्कुट कभी नहीं हारता। इसके साथ अपने कुक्कुट से युद्ध करवाकर मेरे कुक्कुट को हरा देगा तो एक लाख मोहरें मैं दूंगी। नहीं तो दो लाख मोहरें लूँगी।' यह सुनकर 'मनोरमा' रानीने कहा मेरा कुक्कुट तेरे कुक्कुट को हरा देगा। अब दोनों कुक्कुट का युद्ध होने लगा। किसी को हारते न देखकर लोक विस्मित थे। तब घनरथ राजा बोला 'इसमें हार जीत नहीं होगी।' तब मेघरथ ने कारण पूछा घनरथ ने इनका पूर्वभव सुनाया।

कुक्कुटों का पूर्वभव :

इस जंबूद्वीप के ऐरवत क्षेत्र में रत्नपूर में धन और वसुदत्त दो वणिक मित्र थे। परंतु लोभाभिभूत होकर वे दोनों अधिक धनाशा से लोगों को ठगते हुए आपस में लड पडते थे।

इस प्रकार आर्तध्यान में मरकर दोनों हाथी के भव में फिर वृषभ के भव में भी परस्पर युद्ध करते हुए ही दोनों मरकर कुक्कुट हुए हैं। इनमें कोई हारेगा या जीतेगा नहीं। विशेष में अब तो ये दोनों विद्याधर से अधिष्ठित होकर युद्ध कर रहे हैं। विद्याधरों का वर्णन भी सुन लो।

घनरथ के दर्शक :

इस जंबूद्वीप के भरत क्षेत्र के वैताढ्य पर्वत की उत्तर श्रेणि में स्वर्णपूर में गरूडवेग राजा के चंद्रतिलक, सूर्यतिलक नाम के दो पुत्र एकबार मेरू पर्वत पर शाश्वत प्रतिमा को वंदन करने गये। वहाँ सागरचंद्र चारणमुनि के पास धर्म देशना सुनकर अपना पूर्वभव पूछा। तब मुनि ने कहा, 'धातकी खंड के पूर्व ऐरवत के वज्रपुर में अभयघोष राजा के सुवर्णतिल का रानी की कुक्षी से उत्पन्न विजय, वैजयन्त नामके दो पुत्र थे। एक बार शंख राजा ने अपनी पुत्री पृथिवीसेना अभयघोष को दी। पृथिवीसेना ने दन्तमथन मुनि के पास प्रतिबोध पाकर चारित्र लिया।

एकबार अभयघोष ने छद्मस्थपने में विचरते 'अनन्त जिन' को अपने गृहांगण में आये देखकर बहुमानपूर्वक आहारादि वहोराया। अनन्तजिन को केवलज्ञान होने पर उनके पास अभयघोष ने अपने दोनों पुत्रों के साथ चारित्र ग्रहण किया। अभयघोष ने विंशति स्थानक की आराधना कर तीर्थंकर नाम कर्म उपार्जन किया। तीनों वहाँ से आयु पूर्ण कर अच्युत कल्प में देव हुए।

अच्युत कल्प से जंबूद्वीप के पूर्वविदेह में पुष्कलावती विजय में पुण्डरीकिणी नगरी में अभयघोष का जीव घनरथ नाम से राजा बना है। वे तीर्थंकर होंगे। और विजय वैजयन्त के जीव तुम दोनों विद्याधर हुए हो। चारणमुनि से पूर्वभव श्रवणकर वे मेरे दर्शन के लिए आये और कुक्कुटों को युद्ध करते देख उनके शरीर में प्रविष्ट हो गये। ये दोनों विद्याधर यहाँ से जाकर भोगवर्धन मुनि के पास चारित्र लेकर शाश्वत पद को प्राप्त करेंगे। फिर दोनों विद्याधरों ने प्रकट होकर घनरथ राजा को प्रणामकर स्वस्थान पर गये।

कुक्कुटों को धर्म प्राप्ति :

दोनों कुक्कुटों ने स्वभाषा में पश्चाताप पूर्वक हमें अब क्या करना चाहिए ऐसा घनरथ से पूछा। तब घनरथ ने उन्हें व्यवहार सम्यक्त्व का संक्षेप में स्वीकार करवाया। वे अनशन कर भूतरत्न अटवी में ताम्रचूल-स्वर्णचूल नामक भूतनायक देव हुए। परोपकारी मेघरथ के पास आकर उन्हें विमान में बिठाकर संपूर्ण पृथ्वी पर के दर्शनीय स्थल दर्शाकर पुनः स्व स्थान पर छोड़कर रत्नों की वृष्टिकर स्व स्थान पर गये।

राजा धनरथ की दीक्षा :

लोकान्तिक देवों ने घनरथ राजा को तीर्थ प्रवर्तन के लिए विनति की। घनरथ राजाने

मेघरथ को राजा और दृढरथ को युवराज का अभिषेक कर वरसीदान देकर चारित्र ग्रहण किया।

सिंहरथ :

एकबार देवरमण उद्यान में मेघरथ राजा प्रियमित्रा पत्नी के साथ क्रीडा करते थे। उस समय हजारों भूत आकर नृत्य करने लगे और एक विमान में से रूपवान युवक युवति प्रकट हुए। तब प्रियमित्रा ने पूछा 'ये कौन हैं?' तब मेघरथ ने कहा, 'जंबूद्वीप के भरत के वैताढ्य की उत्तरश्रेणि आमलकापुरी का विद्युद्रथो राजा का सिंहरथ नामका यह पुत्र है और वेगवती नामकी यह इसकी पत्नी है। यह घातकी खंड के पश्चिमविदेह में खंगपुर में अमितवाहन जिन को वंदन करने जा रहा था। विमान स्खलित होने से इसने मुझपर कुपित होकर मुझे उपद्रव करने का सोचा पर मेरे बाये हाथ से उसे मारने से वह मेरे शरण में आया और अनेक रूप बनाकर नृत्य करने लगा है। प्रियमित्रा ने पुनः पूछा इसने कौन से पुण्य से इतनी ऋद्धि प्राप्त की है ? तब मेघरथ ने उसका पूर्वभव सुनाया, पुष्करार्धद्वीप के भरत क्षेत्र में संघपुर में राज्यगुप्त नामका एक दरिद्र कुलपुत्र रहता था। उसकी शंखिका नामकी पत्नी थी। सर्वगुप्त मुनि के पास देशना सुनकर बत्तीस कल्याणक नामा तप स्वीकार किया और एक बार घृतिधर मुनि को दान दिया। फिर सर्वगुप्त मुनि के पास चारित्र लिया। वहाँ आचाम्लवर्धमान तपाराधना की। अंत में अनशन स्वीकार कर दशसागरोपम आयुवाला ब्रह्मलोक में देव हुआ। साध्वी भी तपाराधना कर वहाँ ही देव हुई। वहाँ से ये दोनों पति-पत्नी हुए हैं। यहाँ से जाकर अपने पुत्र को राज्य देकर घनरथ जिन के पास चारित्र ग्रहण कर सिद्धि पद प्राप्त करेंगे।

पारापत की रक्षा :

एक बार पौषधशाला में एक पारापत भयभीत होकर मेघरथ की गोद में आ बैठा। और मनुष्य भाषा में अभय की याचना की। तब मेघरथ ने अभय का वचन दिया। उसी समय बाज पक्षी ने आकर मेरा भक्ष मुझे दो की याचना की। तब मेघरथ राजा ने उसे अनेक प्रकार से हितशिक्षा दी पर उसने मांस के सिवाय मुझे कुछ नहीं चाहिए। ऐसी अपनी बात निश्चयात्मक कहीं। तब मेघरथ ने तराजु मंगवाकर उस पारापत के बराबर अपने शरीर का मांस देना प्रारंभ किया। मंत्री, अंतपुर आदि ने राजा को समझाने का प्रयत्न किया। पर राजा पारापत के प्राण बचाने हेतु स्वयं के प्राण देने को तैयार हो गये। कितना ही मांस रखने पर भी मांस का पलडा ऊँचा ही रहने से स्वयं तराजु में बैठने लगे। तब देवने प्रकट होकर राजा की काया को सुंदर बनाकर बोला 'आप ईशानेन्द्र की प्रशंसा से भी अधिक सत्त्वशाली हैं। मैं आपकी परिक्षा के लिए इन युद्ध करते दोनों पक्षियों के माध्यम से आपके पास आया।' इतना कहकर पुष्पस्वर्णादि की वृष्टि कर स्व स्थान में गया। विस्मित होकर पौषधवालों ने

राजा से पूछा कि ये दोनों पक्षी युद्ध किस कारण से कर रहे थे। तब मेघरथ ने निम्नोक्त वर्णन किया।

दोनों पक्षियों का पूर्वभव और धर्मप्राप्ति :

जंबूद्वीप के ऐरवत क्षेत्र के पभिनीखंड नगर में सागर दत्त की विजयसेना की कुक्षी से जन्मे धन और नन्दन नामके दो पुत्र थे। सागरदत्त की आज्ञा लेकर व्यापार के लिए नागपुर आये। और एक महामूल्य रत्न की उन्हें प्राप्ति हुई। वहाँ उस रत्न के लिए दोनों युद्ध करने लगे वहाँ युद्ध करते शंखनदी में गिरकर मृत्यु पाकर ये पक्षी हुए हैं। पूर्व जन्म के वैर से ये इस भवमें भी लड़ रहे थे। और यह देव दमितारि प्रतिवासुदेव का जीव था। जिसको हमने अपराजित एवं अनंतवीर्य के भव में मारा था। वह भव भ्रमणकर देव हुआ है। वह ईशानेन्द्र द्वारा कृत मेरी प्रशंसा को सहन न कर यहाँ आया। अब उस वैर का उपशमन हो गया। दोनों पक्षियों को जाति स्मरण ज्ञान हुआ। उन्होंने मेघरथ को अपनी भाषा में अपने उद्धार का मार्ग पूछा तब अवधिज्ञान से अल्पायुष जानकर उन्हें अनशन करवाया। वे दोनों भूवनवासी देव हुए।

इन्द्राणी कृत उपसर्ग :

मेघरथ राजा दोनों पक्षियों के वर्तन से विशेष वैराग भाव में आकर अट्ठम तपकर प्रतिमा में स्थित हुए। उस समय ईशानेन्द्र ने उनको नमस्कार किया। उसकी इन्द्राणी के पूछने पर उन्होंने मेघरथ के सत्त्व की प्रशंसा की। तब उसे चलायमान करने सुरूपा, अतिरूपा ने आकर अनुकूल उपसर्ग किये। पर मेघरथ चलायमान न हुए। तब वे क्षमापना कर देव लोक में गयी।

मेघरथ, दृढरथ की दीक्षा जिन नाम निकाचित :

घनरथ तीर्थंकर विचरते वहाँ आये। मेघरथ दृढरथ आदि ने देशना सुन मेघसेन को राजा और रथसेन को युवराज बनाकर मेघसेन कृत निष्क्रमण महोत्सव पूर्वक सातसो पुत्र और चार हजार रानियों के साथ दोनों भाईयों ने चारित्र ग्रहण किया। मेघरथ मुनि ने विंशति स्थानक तपाराधना कर तीर्थंकर नाम कर्म निकाचित किया। दोनों भाई आयु पूर्ण कर तैंतीस सागरोपम आयुवाले देव हुए।

शांतिकुमार :

जंबूद्वीप के भरतक्षेत्र के कुरुदेश में हस्तिनापुर नगर में इक्ष्वाकुवंशी विश्वसेन राजा था। उसकी अचिरा रानी की कुक्षी से दो बार चौदह स्वप्न सूचित भाद्रपद कृष्ण पक्ष की सप्तमी के दिन मेघरथ का जीव गर्भ में आया। उस समय पूर्वोत्पन्न मरकी आदि के रोग देश में बिना प्रयत्न के शांत हो गये। पूर्ण समय होने पर ज्येष्ठ कृष्ण पक्ष तेरस के दिन प्रभु का जन्म हुआ। छप्पन दिक्कुमारी, इन्द्रादि ने जन्मोत्सव किया। फिर अश्वसेन राजा ने जन्मोत्सव कर उनका

नाम शांति कारक होने से शांतिकुमार दिया।

चक्रायुध का जन्म :

यौवनावस्था में आने पर यशोमती आदि अनेक राजकन्याओं के साथ उनका विवाह किया। उस समय वे चंवालीस धनुष्य की कायावाले हो गये थे। यशोमती की कुक्षी में चक्र के स्वप्न सहित दृढरथ का जीव आया। पूर्ण समय में बालक का जन्म होने पर उसका नाम 'चक्रायुध' दिया। अश्वसेन राजा ने शांतिकुमार को पच्चीस हजार वर्ष की आयु में राज्यारूढ कर अपना आत्मसाधन किया। चक्रायुध का विवाह भी अनेक राजकन्याओं के साथ किया। पिता पुत्र दोनों राजा और युवराज के रूप में संसारिक सुखोपभोग करते थे।

चक्रवर्ती :

राज्य का पालन करते हुए शांति राजा को पच्चीस हजार वर्ष पूर्ण होने पर आयुधशाला में चक्ररत्न उत्पन्न हुआ। क्रमशः एकसौ आठ वर्ष में छः खंड को जीते। हस्तिनापुर में देव, राजा और प्रजा ने चक्रवर्ती पद का महोत्सव किया। चौसठ हजार अंतेउरियों से युक्त चौदह रत्न नव निधान आदि ऐश्वर्य का उपभोग एक सौ आठ वर्ष कम पच्चीस हजार वर्ष तक किया। प्रभु के डेढ़ क्रोड पुत्र थे।

दीक्षा ग्रहण :

लोकान्तिक देवों के द्वारा 'तीथ प्रवर्त्तावो' ऐसी प्रार्थना का स्वीकार कर जृम्भकादि देवों से पूरित धन का एक वर्ष तक दान देकर, चक्रायुध का राज्याभिषेक कर, शक्रेन्द्रादि द्वारा कृत निष्क्रमणोत्सव पूर्वक एक हजार राजाओं के साथ दीक्षा ग्रहण की। ज्येष्ठ कृष्ण चतुर्दशी के दिन प्रभु ने चारित्र ग्रहण किया। उसी समय उन्हें मनःपर्यवज्ञान उत्पन्न हुआ।

केवलज्ञान :

मन्दिरपुर नगर में सुमित्र राजा के घर प्रथम पारणा परमान्न से किया। देवों ने पंच दिव्य प्रकट किये। सुमित्र राजाने प्रभु के पाद स्थान पर रत्न पीठ का निर्माण किया। इस प्रकार एक वर्ष तक प्रभुने छभस्थ पने में विहार किया। हस्तिनापुर के सहस्रामवन में विहार करते हुए प्रभु पधारें। वहाँ नन्दिवृक्ष के नीचे छट्ठ तप में शुक्लध्यान पूर्वक घाति कर्मों का घातकर निर्मल केवलज्ञान-केवल दर्शन को प्राप्त किया। उसी समय चौसठ इन्द्रों ने मिलकर केवलज्ञान महोत्सव किया। समवसरण में पूर्व द्वार से प्रवेशकर चारसौ अस्सी धनुष ऊँचे चैत्यवृक्ष को तीन प्रदक्षिणा देकर पूर्वाभिमुख रत्न सिंहासन पर बैठे। मागध भाषा में मालकोश राग में प्रभुने देशना दी। चक्रायुध भी सपरिवार देशना श्रवणार्थ आकर प्रभु को तीन प्रदक्षिणा देकर वंदन स्तुति कर यथायोग्य स्थान पर बैठा।

चक्रायुध गणधर हुआ :

प्रभुने देशना में कहा, 'क्रोध, मान, माया और लोभ इन चार कषायों को जीतने के लिए इंद्रिय जय एवं मन पर विजय अत्यावश्यक है। एक-एक इंद्रिय के वश से आत्मा भयंकर विडंबना को पाता है। जैसे हस्ति के स्पर्श सुख में लुब्ध विन्ध्याचल में स्वतंत्र रहने वाला हस्ति आलान स्तंभ के बन्धन के क्लेश को पाता है, समुद्र में स्वेच्छापूर्वक घूमनेवाली मछली आमिष को खाने की लालच से जाल में फंसकर जीवन खो देती है। आकाश में उडनेवाला भौंरा गन्ध लोलुप बनकर कमल में बंध हो जाता है और मत्त हस्ति के द्वारा कुचला जाता है। स्वतंत्र जीवन जीने वाला शलभ शिखा के रूप से मोहित होकर दीप में गिरकर मरण को प्राप्त होता है। अरण्य में स्वेच्छा से घास खाकर जिनेवाला मृग कर्णप्रिय संगीत को श्रवणकरने की राग दशा से शिकारी के हाथों से वध किया जाता है। और तंदुलिया मच्छ मानसिक पाप के विचारों से सप्तम नरक के दुःखों को प्राप्त करता है। ऐसे एक-एक इंद्रिय का वशवर्ती भयंकर दुःखों को प्राप्त करता है तो पांचों इंद्रियों के वशवर्ती की तो बात ही क्या करें? इस कारण मनुष्य को इंद्रिय जय और मनशुद्धि के लिए पुरूषार्थ करना चाहिए। इंद्रिय जय का प्रयत्न किए बिना यम नियम का पालन मात्र काय क्लेश है। इस प्रकार अनेक प्रकार से प्रभु ने उपदेश दिया। चक्रायुध राजा ने अपने पुत्र को राज्य देकर प्रभु के पास उसी समय दीक्षा ग्रहणकर प्रथम गणधर हुए। प्रभुने उस समय छत्तीस गणधरों को त्रिपदी दी। उन्हों ने द्वादशांगी की रचना की। वहाँ अनेक स्त्रीपुरुषों ने चारित्र ग्रहण किया। अनेकों ने देशविरति, सम्यक्त्व आदि ग्रहणकर श्रावक श्राविका धर्म स्वीकारा। इस प्रकार चतुर्विध संघ की स्थापना हुई। प्रभु के शासन रक्षक गरूड नामक देव और निर्वाणी नामक देवी शासन रक्षिका हुई।

शांतिनाथ भगवंत विहार करते हुए एक बार हस्तिनापुर पधारे। कुरुचंद्र राजाने देशना के अंत में प्रभु से पूछा हे प्रभो! किस कर्म के उदय से मुझे राज्य की प्राप्ति हुई और किस कर्म के उदय से लोग मुझे प्रति दिन पांच वस्तु भेट देते हैं, पर मैं उसका उपभोग नहीं करता।

कुरुचंद्र का पूर्वभव :

तब प्रभु ने कहा तेरा पूर्व भव सुनाता हूँ जिससे तेरा समाधान हो जायगा।

जंबूद्वीप के भरतक्षेत्र में कौशल देश में श्रीपुर नगर में सुधन, धनपति, धनद और धनेश्वर ये चार समवयस्क वणिक पुत्र रहते थे। एक बार चारों रत्नद्वीप की ओर अर्थोपार्जन के लिए जा रहे थे। मार्ग में पाथेय थोडा रहा था। मार्ग अभी लंबा था। इतने में एक मुनि भगवंत को देखकर चारों ने द्रोणक नामक नौकर को दान देने का कहा तब उसने अधिक श्रद्धा से मुनि को आहार पानी वहोराया। उस समय उसने महाभोग फल उपार्जन किया। रत्नद्वीप से

धनार्जन कर अपने नगर में आये। उन चारों में धनपति और धनेश्वर मायावी प्रकृति के थे। द्रोणक मरकर तूं कुरुचंद्र बना है। सुधन आयु पूर्णकर कांपिल नगर में वसन्तदेव नाम से और धनद कामपाल के नाम से कृतिकापुर नगर में जन्में। धनपति मरकर शंखपुर में मदिरा के नाम से और धनेश्वर का जीव केसरा नाम से जयन्ती पुरी में वणिक पुत्री हुई।

एक बार वसन्तदेव व्यापार के लिए जयन्तीपुरी में आया और वहाँ उसने केसरा को देखी। केसराने वसंतदेव को देखा। पूर्व भव के स्नेह से दोनों में प्रेम हुआ। इधर केसरा ने मनोमन निर्णय किया मैं वसन्तदेव से ही विवाह करूगी और वैसा ही निर्णय वसन्तदेव ने भी किया। केसरा के पिता ने केसरा का विवाह कान्यकुब्ज निवासी सुदत्त के साथ निश्चित किया। विवाह के मंगलगीत गाये जाने लगे। वसन्तदेव चिन्तित बना। केसरा की सखी प्रियंकरा ने आकर वसन्तदेव से कहा, 'मेरी सखी आप से ही शादि करेगी अन्य से नहीं। आप खेद न करें। इधर बरात को आयी सुनकर वसन्तदेव मरने के लिए उद्यान में गया। वहाँ पाश गले में लगाकर लटकना चाहता था कि एक पुरुष ने आकर रोका और कहा 'विवेकी को प्राण त्याग करना उचित नहीं है। इष्ट प्राप्ति के लिए प्रयत्न ही करना चाहिए। देख ! मैं कृतिकापुर का रहनेवाला हूँ। कामपाल मेरा नाम है। मैं एक बार शंखपुर आया। वहाँ उद्यान में एक कन्या को देखा। हम दोनों को एक दूसरे पर प्रीति उत्पन्न हुई। इतने में एक हाथी का उपद्रव हुआ। हम सभी भागे। हाथी ने उसे सूंड में पकड ली, दौडकर मैंने उस हाथी के पूंछ पर प्रहार किया। हाथी उसे छोडकर मेरी ओर आया। मैं वहाँ से सुरक्षित स्थान पर पहूँचा। उसके परिवारजनोंने मेरी प्रशंसा की। इतने में आकाश से ओले गिरने लगे। पुनः सभी भागे। मैंने उसे वहाँ खोजी पर न मिली। उसे खोजता-खोजता घूम रहा हूँ। मरा नहीं। तूं भी किसी के न मिलने से मरना चाहता हो तो न मर। तब वसन्तदेव को उस पर प्रीति उत्पन्न हुई। उसने सारी बात कही। कामपालने कहा वह आज कामदेव की पूजा करने अवश्य आयगी। तब मिलन हो जायगा। अपन दोनों कामदेव के मंदिर में रहेंगे। उस समय तुम दोनों चले जाना मैं केसरा के वस्त्र पहनकर चला जाऊँगा। तेरा काम हो जायगा। दोनों कामदेव की मूर्ति के पीछे बैठ गये। केसरा सखी के साथ आयी। सखी को बाहर बिठाकर अंदर आकर कामदेव को पुष्पादि चढाकर उपालंभ देकर इस भव में वसन्तदेव पति रूप में न मिला तो भवांतर में वही पति हो ऐसा कहकर उत्तरीय वस्त्र का पाश बनाया। तब वसन्तदेव ने प्रकट होकर उसे अपनी योजना समझायी और कामपाल केसरा के वस्त्र पहनकर घर गया। प्रियंकरा ने घर आकर उसे स्वर्णासन पर बिठाकर अपने प्रिय का स्मरण कर मैं अभी आयी। ऐसा कहकर वह बाहर आयी।

इधर केसरा के मामा की पुत्री मदिरा शंखपुर से केसरा के विवाह में आयी थी। वह

केसरा की हकीकत उसकी सखी से सुनकर केसरा को सांतवना देने आयी। और अपनी कहानी भी सुनायी। और कहा मेरा भाग्य अनुकूल होगा तब अवश्य प्रिय का संयोग मुझे होगा। तूं धैर्य धारणकर। तब कामपाल ने घूंघट दूरकर मदिरा से कहा देख। भाग्य तेरा और मेरा कितना प्रबल है कि हम दोनों का आज संयोग से मिलन हो गया। फिर वे दोनों गुप्त मार्ग से बाहर आए। और उस नगर में आए हुए वसंन्तदेव केसरा से मिले। ये यहाँ आए हुए हैं। ये तेरे चारों पूर्वभव के स्नेही मित्र हैं। पूर्व भव के मुनिदान के प्रभाव से तुझे राज्यादि ऋद्धि मिली है। और इन चारों का मिलन नहीं हुआ था इसलिए तूं उन पदार्थों का उपभोग नहीं कर सकता था। अब तुम पाँचो मिलकर उन पदार्थों का उपभोग कर सकोगे। प्रभु के ये वचन सुनकर उन पाँचों को जाति स्मरण ज्ञान हुआ। और कुरुचंद्र उन चारों को अपने घर ले गया और पाँचों मिलकर भोगोपभोग करने लगे। अंत में पाँचोंने चारित्र ग्रहण किया। इस प्रकार अनेक प्रकार से देशना दी।

प्रभु का परिवार :

शांतिनाथ भगवंत के परिवार में ६२ हजार मुनि, ६१६०० साध्वीयाँ, ८०० चौदह पूर्वी, तीन हजार अवधिज्ञानी, ४ हजार मनःपर्यवज्ञानी, ४३०० केवलज्ञानी, वैक्रिय लब्धिवाले ६०००, वादलब्धिवाले २४००, मुनि थे। श्रावक दो लाख नब्बे हजार, श्राविका तीन लाख तिरानवे हजार थी। प्रभुजी ने एक वर्ष कम पच्चीस हजार वर्ष तक केवलीपर्याय में विहार किया।

निर्वाण कल्याणक :

निर्वाण समय जानकर नौ सौ साधुओं के साथ समेत शिखर पर आकर अनशनकर ज्येष्ठ कृष्ण तेरस के दिन श्री शांतिनाथ प्रभु मोक्ष पधारें। उसी दिन वे सभी मुनि भी मोक्ष पधारें। देवताओं ने निर्वाण महोत्सव किया। चक्रायुध गणधर भी कोटि शिला तीर्थ पर कर्मक्षय कर मोक्ष पधारें।

● *मूर्ति चाहे रत्न की हो, स्फटिक की हो, स्वर्ण की हो, रजत की हो, सर्व धातु की हो, काष्ठ की हो या किसी भी पदार्थ की हो, चाहे खडी हो या बिराजमान पभासन में हो। परन्तु उपासक का लक्ष्य तो जिन प्रतिमा से देवाधिदेव के सच्चे स्वरूप का, अनन्तानंत गुणों का चिन्तन कर आत्म रमणता प्राप्त करना ही होगा।* - जयानंद

छट्ठे चक्रवर्ती एवं सतरहवें तीर्थंकर श्री कुन्थुनाथ चरित्र

जंबूद्वीप के पूर्व विदेह में खडिग नगर के सिंहावह राजा ने संकर नामक आचार्य के पास चारित्र लेकर वीश स्थानक तपाराधना कर तीर्थंकर नाम कर्मोपार्जन किया। आयु पूर्णकर सर्वार्थ सिद्ध विमान में देव बनें। वहाँ से आयु पूर्ण कर जंबूद्वीप के भरतक्षेत्र में हस्तिनापुर नगर में सूरराजा और श्रीदेवीरानी के पुत्ररूप में आए। माता ने चौदह स्वप्न देखे। प्रभु के गर्भ में आने के बाद सूरराजा ने शत्रु राजाओं को कुन्थु समान मानकर ऊन पर विजय प्राप्त किया था। अतः प्रभु का नाम जन्म होने पर कुन्थुकुमार दिया। यौवनावस्था में अनेक राजकन्याओं से कुन्थुकुमार का विवाह किया। सूरराजा ने कुन्थु राजकुमार का राज्याभिषेक कर चारित्र ग्रहण किया। चक्ररत्न आयुधशाला में उत्पन्न होने पर छः खंड के विजेता हुए। चक्रवर्ती की ऋद्धि को भोग फल मानकर भोगा। कुन्थुनाथ चक्री के डेढ़ क्रोड पुत्र थे। दीक्षा का समय परिपक्व होने पर लोकान्तिक देवों ने 'तीर्थ प्रवर्तावो' ऐसी प्रार्थना की। प्रभु ने एक वर्ष तक वरसीदान दिया। फिर चारित्र ग्रहण किया। देवों ने दीक्षा महोत्सव किया। सोलह वर्ष, छभस्थपने में मौन पने में विचरे। घाति कर्मों का क्षयकर केवलज्ञान को प्राप्त किया। चतुर्विध संघ की स्थापना की। केवली पर्याय में विहार कर अनेक भव्यात्माओं का उद्धार किया। अन्त समय को जानकर सम्मेत शिखर पर एक हजार मुनियों के साथ एक मास का अनशन कर अव्यय पद को प्राप्त किया। श्री कुन्थुनाथजी का च्यवन श्रावण वदि ६, जन्म वैशाख वदि १४, दीक्षा वैशाख वदि ५, केवलज्ञान चैत्र सुदि ३, निर्वाण वैशाख वदि ९ को हुआ था।

श्री कुन्थुनाथजी तेवीस हजार वर्ष कुमारभाव में, माण्डलिक राजा के रूप में तेवीस हजार वर्ष, चक्री पने में तेवीस हजार वर्ष और श्रमण पने में तेवीस हजार साडे सातसौ वर्ष इस प्रकार सभी मिलाकर ब्यानवे हजार साडे सातसौ वर्ष का सर्वायु पूर्ण किया। मतांतर से पंचानवें हजार साडे सातसौ वर्ष का आयु था।

श्री कुन्थु नाथ भगवंत के ३५ गणधर, साठ हजार साधु, साठ हजार छ सौ साध्वी, ३२३२ केवलज्ञानी, ३३४० मनःपर्यवज्ञानी, २५०० अवधिज्ञानी, ६०७० चौदह पूर्वी, ५१०० वैक्रिय लब्धिवाले, २००० वादि मुनि, एक लाख अस्सी हजार श्रावक, तीन लाख इक्यासी हजार श्राविका इस प्रकार प्रभु का परिवार हुआ था।

इति श्री छट्ठे चक्री एवं सतरहवें जिनेश्वर श्री कुंथुनाथ प्रभु का चरित्र पूर्ण।

● *प्राण प्रतिष्ठा व प्रतिष्ठा कारक गुणहीन है तो उन प्रतिमाओं से भक्तों को आत्मिक आनंद भी प्राप्त नहीं होता।* - जयानंद

सप्तम चक्रवर्ती अठारवें प्रभु श्री अरनाथ का चरित्र

पूर्व विदेह के विभूषण रूप मंगलावती विजय में रत्नसंचया नगरी में महिपाल राजा ने सद्गुरू मुख से धर्मश्रवणकर, वैराग्य वासित होकर, विशाल राज्य का त्यागकर प्रवज्या ग्रहण की। गुरू भगवंत के पास ग्यारह अंग का अध्ययन कर गीतार्थ बना। अनेक कोटी वर्षों तक संयम की आराधना के साथ विंशतिस्थानक तप की आराधना कर तीर्थंकर नाम कर्म उपार्जन किया। आयुष्य पूर्ण कर सर्वार्थ सिद्ध विमान में देव बना।

भरतक्षेत्र के हस्तिनापुर नगर में सुदर्शन राजा की देवीरानी की कुक्षी में महिपाल देव का जीव सर्वार्थ सिद्ध विमान से फागुन सुदि दूज को च्यवनकर आया। माता ने चौदह स्वप्न दो बार देखे। नौ माह ८ दिन की गर्भस्थिति पूर्ण होने पर पुत्र रत्न को जन्म दिया। छप्पन दिक्कुमारी एवं चौसठ इन्द्रों द्वारा जन्मोत्सव मनाया गया। सुदर्शन राजाने भी जन्मोत्सव किया। और नामकरण के समय रत्नमय आरा (चक्र) स्वप्न में देखने से 'अरकुमार' नाम दिया। युवावस्था में अनेक राजकन्याओं से विवाह किया। इक्कीस हजार वर्ष की आयु में सुदर्शन राजा ने उनको राजा बनाकर स्वयं चारित्र ग्रहण किया। इक्कीस हजार वर्ष माण्डलिक राजा के रूप में जाने पर शस्त्रागार में चक्ररत्न की उत्पत्ति हुई। अर राजाने छः खंड जीते। देव मानवों ने मिलकर चक्रीपने का राज्याभिषेक किया। इक्कीस हजार वर्ष तक चक्रवर्ती की ऋद्धि का भोगोपभोग किया।

लोकांतिक देवों के व्यवहारानुसार 'तीर्थ प्रवर्ताओ' की प्रार्थना होने पर अर चक्री ने एक वर्ष तक वरसीदान दिया। उनके सवा क्रोड पुत्र मेंसे सबसे बड़े पुत्र का राज्याभिषेक कर देवमानव कृत दीक्षा महोत्सवपूर्वक मगसर सुदि ग्यारस के दिन दीक्षा ग्रहण की। तीन वर्ष तक छद्मस्थपने में विचरकर सहस्त्राम वनमें आये और शुक्ल ध्यान के द्वारा कार्तिक सुदि १२ के दिन केवलज्ञान को प्राप्त किया। चतुर्विध संघ की स्थापना की। प्रभु के ३३ गणधर हुए। कुंभभूप प्रथम गणधर बना। इक्कीस हजार वर्ष तक श्रमण पर्याय का पालनकर अंतिम समय में सम्मेत शिखर पर एक हजार मुनियों के साथ एक मासिक अनशन कर मगसर सुदि १० को अव्याबाध पद प्राप्त किया। चौराशी हजार वर्ष का आयु पूर्ण किया। प्रभु का परिवार= पच्चार हजार साधु (मतांतर से साठ हजार साधु) साठ हजार साध्वियाँ, दो हजार आठ सौ केवलज्ञानी, २५५१ मनःपर्यव ज्ञानी, २६०० अवधिज्ञानी, ६१० चौदह पूर्वी, ७३०० वैक्रिय लब्धिधारी, एक हजार छ सौ वादी मुनि, एक लाख चौरासी हजार श्रावक और तीन लाख बहोत्तर हजार श्राविकाएँ हुई। इस प्रकार प्रभु का परिवार था।

इति श्री सप्तम चक्रवर्ती और अढ़ारवें श्री अरनाथ का चरित्र संपूर्ण।

अष्टम श्री सुभूम चक्रवर्ती चरित्र

दो देवों की मित्रता :

सौधर्म देवलोक में दो देव घनीष्ट मित्र थे। विश्वानर और धन्वन्तरि उनका नाम था। दोनों मित्र धार्मिक प्रवृत्तिवाले थे। एक जैन धर्म पर श्रद्धावाला था। दूसरा ईश्वर कर्तृत्व माननेवाला था। दोनों में इस विषय में चर्चा होती रहती थी। दोनों अपने-अपने धर्म को सर्वश्रेष्ठ मानते थे। दोनों ने कहा, 'धर्म की परीक्षा उसके आचरण करनेवालों से होती है, अतः अपन दोनों मानवलोक में जाकर धर्मी पुरुष की परीक्षा से धर्म की परीक्षा करेंगे। दोनों ने यह निश्चित किया। फिर मानव लोक में आये।

पद्मरथ की परीक्षा :

इधर मिथिला नगरी का स्वामी पभरथ राजा वैराग्यभाव धारणकर श्री वासुपूज्य स्वामी के पास चारित्र ग्रहण करने जा रहा था। वह भाव से साधु बन गया था। उन देवों ने प्रथम इस भाव साधु की परीक्षा करनी चाही। दोनों ने उसके पास में आकर भाव साधु के चलने के मार्ग में एक से एक सटी हुई मंडुकिएँ विकुर्वी। पास में रहे हुए दूसरे मार्ग पर तीक्ष्ण कंटक विकुर्वे। पभरथ भाव मुनि ने मण्डुकीवाला मार्ग छोडकर कंटक युक्त मार्ग पर चलना प्रारंभ किया। पैरों में कांटे चुभते थे। रुधिर धारा निकलती थी। बिना खेदित हुए ईर्या समिति का पालन करने पूर्वक चलते रहे। मुनि की धर्मश्रद्धा को देखकर देव मन में अतीव प्रसन्न हुआ। उनके पैर ठीक कर दिये। कंटक दूर कर दिये। आगे जाते हुये मार्ग में भिक्षा के समय देवों ने अनेक प्रकार की स्वादिष्ट रसोई के लिए आग्रह किया परंतु उन्होंने तो निरस आहार ही वहोरा। आगे जाते हुए नैमित्तिक बनकर आकर हाथ जोडकर विनयपूर्वक कहा 'आपका आयुष्य बहुत दीर्घ है, अभी तो यौवनवय है,. आप स्वरूपवान हैं, थोडे वर्ष संसारिक सुखों का उपभोगकर फिर चारित्र लेना।' पभरथ ने कहा, 'अगर आपके कथनानुसार मेरा आयुष्य दीर्घ है तो चारित्र का पालन सुदीर्घ काल तक होगा। यह मेरे लिए अच्छा ही है। यौवनावस्था ही धर्मोद्यम के लिए सर्वश्रेष्ठ है। आगम में यही कहा है, जब तक वृद्धावस्था की पीडा न हो, व्याधि उत्पन्न न हो, इंद्रियाँ निर्बल न बनें वहाँतक आत्म कल्याण कर लेना चाहिए। आपने कहा वृद्धावस्था में धर्म करना, भाई! वृद्धावस्था से ग्रस्त आत्मा को कहाँ धर्मोद्यम होगा? दांत गिर जाते हैं, हाथ पैर कंपते हैं, आँखों से कम दिखाई देता है, आँखें शक्ति हीन हो जाती हैं, बुद्धि में हीनता हो जाती है और तृष्णा राक्षसी अधिक पीडा करती है। ऐसे समय में धर्मोद्यम कैसे होगा?' इस प्रकार उसकी दृढता देखकर देवोंने उसकी बहुत-बहुत प्रशंसा की और अब किसी तापस की परीक्षा करने का निर्णय किया।

यमदग्नि की परीक्षा :

दीर्घकाल के तपस्वी यमदग्नि के पास आये। उसकी दाढ़ी को देखकर दोनों चिडाचिड़ी का रूप बनाकर उसकी दाढ़ी को घोसला का रूप देकर बात करने लगे। चिड़ेने अपनी पत्नी से कहा, 'मैं यात्रा करने जाता हूँ। तू सुखपूर्वक यहाँ रहना।' तब चिड़िया ने कहा, 'मैं आपके साथ आऊँगी। क्योंकि तुम किसी चिड़िया से प्रेम कर लो तो मेरी क्या हालत हो?' तब चिड़ेने कहा, 'मैं ऐसा नहीं करूंगा। फिरभी तेरे विश्वास के लिए कहता हूँ, मैं ऐसा करलूं तो मुझे गौ हत्या, ब्रह्म हत्या का पाप लगे।' चिड़िया ने कहा, 'ऐसी शपथ पर मैं विश्वास नहीं करती। हाँ आप यह शपथ लो कि इस यमदग्नि तापस का किया हुआ पाप मुझे लगे। तो मैं जाने की अनुमति दे दूंगी।' चिड़ेने कहा, 'यह तो बहुत बड़ा पापी है, फिरभी तुझे विश्वस्त रखने के लिए मैं ऐसी शपथ भी ले लेता हूँ।' इस प्रकार मानवी भाषा में बात सुनकर यमदग्नि ने आक्रोश में आकर चिड़े चिड़िया को पकडकर पूछा, 'अरे! तुम मुझे पापी कहते हो? मैंने कौनसा पाप किया है बता दो नहीं तो अभी झूठ बोलने की सजा देता हूँ।' तब चिड़े ने कहा, 'तपसीजी! हम पर गुस्सा क्यों करते हो? हमने तो तुम्हारे शास्त्र में लिखी बात कही है। तुम्हारे ग्रंथों में लिखा है ''अपुत्रवान की गति नहीं होती, स्वर्ग तो मिलता ही नहीं। इसलिए पुत्र मुख को देखकर ही मानव स्वर्ग में जाते हैं'' इसलिए हमने तुमको पापी कहा है। तुमने पुत्र का मुख तो देखा नहीं तो तुम स्वर्ग में कैसे जाओगे? यह तपाचरण तुम्हारे शास्त्र से विरूद्ध है इसलिए तुमने पाप किया है ऐसा हमने कहा है।' इस कथन को यमदग्नि ने पूर्वापर विचार किये बिना सत्य मान लिया। और उसने मन में विवाह कर संतानोत्पत्ति करने का निर्णय लिया। इस विचार को ज्ञान से देखकर दोनों देव वहाँ से चले। तापस भक्त देवने सोचा ''इतने वर्षों से तपश्चर्या करनेवाले में कषाय की परिणति कितनी ? अपने शास्त्र का अधूरा ज्ञान लेकर तपाचरण करने का क्या अर्थ? वास्तव में यहाँ धर्म नहीं है धर्म तो जैन ही। वह पूर्ण समकितवंत हो गया। दोनों देव देवलोक में गये। और धर्म पर श्रद्धावाले हो गये।

यमदग्नि का विवाह :

इधर यमदग्नि कोष्टक नगर के राजा जितशत्रु के अंतपुर में गया। राजाने उचित सत्कार कर आनें का कारण पूछा। तब उसने एक राजकन्या की याचना की। तब उसने अपनी पुत्रियों के सामने देखा। तब उन्होंने उस जटाधारी से विवाह करने की स्पष्ट मना कर दी। हम इस बुड्ढे से विवाह नहीं करेंगी। यह सुनकर यमदग्नि को क्रोध आया और उसने उन सौ राजकन्याओं को विरूप बना दी। कुब्जाकृति वाली बनादी। और वहाँ से चला। मार्ग में एक किशोरी बालिका ने यमदग्नि के हाथ में रहा बिजोरा फल लेने के लिए हाथ लंबा किया। तब यमदग्नि ने राजा से कहा कि 'यह मुझे चाहती है।' तब अपनी पुत्रियों की दशा से भयग्रस्त

राजा ने एक हजार गाय के गोकुल, दास-दासी वृन्द सहित वह बालिका उसे सौंप दी। इस से संतुष्ट हुए तापस ने बची हुई तपशक्ति से उन राजकन्याओं को पूर्ववत् कर दी। रेणुका नामक बालिका को राजा द्वारा प्रदत्त सामग्री के साथ आश्रम में कुटिया बनाकर रहने लगा। रेणुका यौवनावस्था में आयी तब उससे विवाह किया।

पुत्र प्राप्ति :

एक बार यमदग्नि ने रेणुका से कहा, 'मैं तुझे एक अभिमंत्रित औषधि दूंगा। जिसके सेवन से तुझे उत्तम पुत्र होगा।' तब रेणुका ने कहा, 'आप दो औषधि अभिमंत्रित करावें। एक क्षत्रिय पुत्र के लिए जो मेरी बहन हस्तिनापुर के राजा अनन्तवीर्य को दी हुई अनंतसेना के लिए और दूसरी औषधि ब्राह्मण पुत्र के लिए जो मेरे लिए। यमदग्नि ने उसी प्रकार दोनों औषधियाँ अभिमंत्रित कर उसे दी। रेणुका के हृदय में स्वार्थ ने प्रवेश किया। मेरा पुत्र शूरवीर हो तो अच्छा होगा ऐसा सोचकर उसने क्षत्रिय पुत्र होनेवाली औषधि खायी। दूसरी औषधि अनंगसेना को भेजी। रेणुका के पुत्र का नाम राम दिया और अनंगसेना के पुत्र का नाम कीर्तिवीर्य दिया।

परशु विद्या की प्राप्ति :

राम बड़ा हुआ तब एक सिद्ध पुत्र की सेवा की। सिद्धपुत्र ने उसकी सेवा से प्रसन्न होकर उसे परशु विद्या दी। अब वह परशु हाथ में रखकर घूमता था। अतः उसका नाम परशुराम हो गया।

दूराचार का परिणाम :

एकबार रेणुका हस्तिनापुर गयी। वहाँ अनंतवीर्य से प्रेम हो गया और पुत्रवती बनी। यमदग्नि रेणुका को घर ले आया। परंतु परशुराम को माता का चरित्र असह्य हो गया। उसने माता को मार दी। ये समाचार अनंतवीर्य ने जाने। उसने वहाँ आकर यमदग्नि को मार दिया। इससे क्रोधित हुए, परशुराम ने हस्तिनापुर जाकर अनंतवीर्य कीर्तिवीर्य आदि को मारकर हस्तिनापुर का राज्य अपने अधिकार में लिया। उस अवसर पर कीर्तिवीर्य की पत्नी 'तारा' जो चौदह स्वप्न सूचित गर्भवती थी। वह भाग गयी। उसने एक आश्रम में आश्रय लिया। तापसोंने उसे भूमि गृह में रखी। वहाँ एक पुत्र का जन्म हुआ। उसका नाम सुभूम रखा।

क्षत्रियों का नाश :

इधर परशुराम ने क्षत्रियों को ढूंढ़-ढूंढ़कर मारने प्रारंभ किये। पृथ्वी पर सात बार घूमकर उसने क्षत्रियों को मारे। मारे हुए क्षत्रियों की दाढ़ों का एक थाल भरा। एक बार वह उस आश्रम में आया। वहाँ उसके परशु में से ज्वाला निकलने लगी। परशुराम ने पूछा यहाँ कोई क्षत्रिय है? तब कुलपति ने कहा हम क्षत्रिय हैं, उसने तापस जानकर उन्हें न मारे।

नैमित्तिक :

एक बार एक नैमित्तिक उसकी सभा में आया, तब उसने पूछा 'मेरी मृत्यु स्वाभाविक होगी या किसी के द्वारा?' तब नैमित्तिक ने कहा, 'राजन्! आपकी मृत्यु स्वाभाविक नहीं होगी।' परशुराम ने पूछा, 'मुझे मारने वाले को पहचान ने की कोई पहचान है?' तब उसने कहा, 'आपने क्षत्रियों की दाढों का जो थाल भरकर रखा है वह जिसकी नजर गिरते ही दूध रूप में परिणत हो तब उसको मारने वाला जानना। तब परशुराम ने दानशाला के अंदर उस थाल को रखा। और सैनिक वहाँ नियुक्त कर दिये।

सुभूम का विवाह :

इधर वैताढ्यवासी मेघनाथ विद्याधर नैमित्तिक के कथनानुसार अपनी पुत्री का विवाह होनेवाले चक्रवर्ती सुभूम से करने हेतु उस आश्रम में आया। और सुभूम को अपनी पुत्री दी। सुभूम के पूछने पर माताने गद्-गद् कंठ से पूर्व का सारा वर्णन स्पष्ट रूप से कहा। परशुराम के भय से हम यहाँ रहे हैं। तब क्रोधित बना सुभूम अपने श्वसुर मेघनाद के साथ हस्तिनापुर में आया। और दानशाला में गया। वहाँ रहे हुए उस थाल पर सुभूम की दृष्टि गिरते ही वे दाढें क्षीर बनी।

परशुराम का नाश :

सुभूम क्षीर से भरा थाल उठाकर आराम से पीने लगा। सैनिकों ने परशुराम को समाचार दिये। परशुराम उसे मारने वहाँ आया। सुभूम को देखते ही उसके पुण्य के सामने परशुराम की शक्ति क्षीण हो गई। परशुराम ने सुभूम पर परशु फेंका पर परशु कुछ न कर सका। उस समय सुभूम ने क्षीर पीने के बाद खाली थाल को ही परशुराम के उपर फेंका। कहा हुआ है पुण्यवान के पुण्य से शूल भी शस्त्र बन जाता है। सुभूम के पुण्योदय से वह थाल हजार देवों से अधिष्ठित चक्ररत्न के रूप में परिणत हो गया और परशुराम का मस्तक छेद कर चक्र सुभूम के हाथ में आया। देवों ने पुष्पवृष्टि की। चौदह रत्न उत्पन्न हुए और उसने षट्खंड जीते। चक्रवर्ती पने का राज्याभिषेक होने के बाद उसने क्षत्रियों को मारने के वैर को याद कर इक्कीस बार ब्राह्मणों को खोज-खोज कर मारे।

लोभ का फल :

सुभूम चक्री ने लोभाभिभूत होकर धातकी खंड के भरतक्षेत्र को जीतने की इच्छा से चर्मरत्न पर अपनी सेना को लेकर हजार देवों द्वारा चर्मरत्न उठवाकर लवण समुद्र के मार्ग से चला। मार्ग में एक देव को विचार आया थोडी देर के लिए मैं विश्राम कर लूं तो क्या हर्ज है? और भवितव्यता वश हजार देवों को वही विचार आया। और एक साथ देवों ने चर्मरत्न से हाथ हटा लिये। देवों का सहारा दूर होते ही सभी समुद्र में जा गिरे। सुभूम चक्री साठ हजार

वर्ष का आयुष्य पूर्णकर उसी समय सातवीं नरकभूमि में तैतीस सागरोपम का आयु भोगने चला गया। अतिलोभ का परिणाम भोग रहा है।

इति अष्टम सुभूम चक्री चरित्र संपूर्ण।

- *स्थानकवासी, तेरापंथी आदि जैन धर्मानुयायी मुर्ति का खण्डन करने वाले स्वयं के पूज्य पुरुषों के चित्र समाधि आदि बनवाकर उपासना दर्शनादि करते हैं।*
- *कल्पना से भगवान का ध्यान करने वाले नजर समक्ष तो समवसरणासीन अष्ट प्रातिहार्य संयुक्त तीर्थंकर को ही लायेगें जो कि चिरस्थाई कल्पना नहीं रह सकती। इससे अधिक लाभदाई समवसरणासीन सुदेव की साक्षात् प्रतिकृति निर्माण करवाकर नजर समक्ष रखी जाय तो वह चिरस्थाई रहकर विशेषतया साधक को लाभान्वित करेगी। अत्यधिक समय तक विभु का ध्यान हो सकेगा।*
- *उपासना उपास्यकों का सान्निध्य प्राप्त करने हेतु प्रतिक्रिया चेष्टा प्रयत्न करेगा ही, उसी चेष्टा प्रतिक्रिया प्रयत्न से उद्‌भव हुई प्रतिकृति को बनवाकर सान्निध्यता प्राप्त करने की प्रबल हृदयेच्छा और बनने लगे जिन बिंब। उपास्य उपासकों का सम्बन्ध।*
- *आज के युग में न्यायी अन्यायी धन की व्याख्या धर्म स्थानों में भूलाई जा रही है। जिससे ही धर्म स्थानों में कलह कंकास की अधिकता दृष्टिगोचर हो रही है।*
- *द्रव्य एवं भावपूजा आवरणों से आच्छादित परमात्मा को प्रगट करने के लिए ही है यह लक्ष्य बना रहना चाहिए नहीं तो द्रव्य एवं भावपूजा निरर्थक सिद्ध हो जायगी लक्ष्य बिना के भक्त के लिए। (वास्तविक फल न मिलने के कारण)* - जयानंद

श्री नवम चक्रवर्ती महापद्म चरित्र

चक्रवर्ती का जन्म :

जंबूद्वीप के भरत क्षेत्र स्थित कुरुक्षेत्र में हस्तिनापुर नामक नगर था। वहाँ पभोत्तर राजा की ज्वालादेवी और लक्ष्मीदेवी दो रानियाँ थी। ज्वालादेवी की कुक्षी से सिंह स्वप्न सूचित विष्णुकुमार और चौदह स्वप्न सूचित महापभकुमार ऐसे दो पुत्र थे।

नमुचि :

इधर उज्जयनी नगरी में धर्म राजा का नमुचि प्रधान नास्तिक मतिवाला था। उसने एक बार सुव्रताचार्य के साथ चर्चा की और एक क्षुल्लक (छोटे) शिष्य के सामने निरुत्तर हो गया। नमुचि आवेश में आकर रात को मुनियों को मारने गया। शासनदेवी ने उसे स्तंभित कर दिया। प्रातः राजा एवं प्रजा ने उसे ऐसी स्थिति में देखकर तिरस्कृत किया। गुरू के कहने से शासनदेवी ने छोडा। वह हस्तिनापुर आया। और महापभ के पास में रहा। एक बार सिंहबल दुर्गस्वामी को नमुचि ने हराकर महापभ के सामने लाया। तब प्रसन्न होकर महापभ ने उसे इच्छित मांगने को कहा। नमुचि ने मुझे आवश्यकता होगी तब याचना करूंगा ऐसा कहकर वरदान महापभ के पास रखा।

महापद्म का नगर छोडना :

एक बार ज्वालादेवी ने प्रभु के जन्म कल्याणक की रथयात्रा का निर्णय लिया, तब ईर्ष्या से प्रेरित लक्ष्मीदेवी ने भी ब्रह्मरथ का निर्णय लिया। लक्ष्मीदेवी ने कहा मेरा रथ प्रथम नगर में प्रदक्षिणा देगा और ज्वालादेवी ने कहा मेरा रथ प्रथम नगर में प्रदक्षिणा देगा। ज्वालादेवी ने प्रतिज्ञा ग्रहण कर ली कि मेरा रथ प्रथम नगर में नहीं जायगा तो मैं आहार पानी अगले जन्म में लूँगी। तब राजा ने दोनों रथ रोक दिये। इससे महापभ को बूरा लगा। और वह राज्य छोडकर चला गया। चलता-चलता एक तापसाश्रम में पहूँचा और तापसों के आग्रह से वह वहाँ ठहरा।

मदनावली का प्रेम :

चंपानगरी के जनमेंजय राजा काल नरेन्द्र राजा के साथ युद्ध में हार कर भागा। उसका अंतपुर भी इधर-उधर भागा। उसकी नागवती पत्नी मदनावली पुत्री के साथ भागकर इसी तापसाश्रम में आश्रय हेतु आयी और तापसों ने उसे आश्रय दिया। मदनावली वहाँ रहे महापभ को देखकर स्नेह प्रदर्शित करने लगी। तब उसकी माता ने कहा 'कि नैमित्तिक के वचनों को भूलकर तू इधर-उधर अपने मन को क्यों भटका रही है? उसने तुझे चक्रवर्ती की पत्नी के रूप में दर्शाया है।' कुलपति ने भी कुमार को वहाँ से जाने का कहा।

महापभ ने वहाँ से प्रस्थान किया। और मदनावली से विवाह कर पृथ्वी पर अनेक

जिनमंदिर बनाऊँ तब मेरा नाम महापभ सार्थक है ऐसा मनोमन निर्णय किया।

विवाह :

घूमता-घूमता सिन्धुनंदन नगर के बाहर आया। वहाँ कौमुदी महोत्सव में लोग उद्यान में आये हुए थे। उस समय एक मत्त हस्ती आलान स्तंभ तोडकर, घर, दिवार, दुकान आदि तोडता हुआ वहाँ आया। उस समय युवतियाँ क्रीडा कर रही थी। हाथी वहाँ पहूँचा। वे भयभीत होकर इधर उधर भागने लगी और बचाओ-बचाओ की आवाज दी। तब महापभ उस ओर गया और हाथी को ललकारा। हाथी भी उन युवतियों को छोडकर महापभ के सामने आया। वहाँ रहे हुए लोगोंने दूर से महापभ को हाथी से दूर रहने के लिए कहा। वहाँ रहे राजा ने भी कहा कि यह हाथी महा विकराल है, तुम बालक हो इससे दूर हो जाओ। महापभ ने कहा, 'आप दर्शक बन कर मेरी कला देखिए।' और उसने हाथी को इतना घूमाया और मुष्ठियों से प्रहार भी किया कि हाथी थक गया। महापभ उसी हाथी पर चढा और उसे हस्तिशाला में लाकर आलान स्तंभ से बाँध दिया। लोगों ने उसकी प्रशंसा की। राजा ने अपनी सौ कन्याओं के साथ उसका विवाह किया। अब वह वहाँ सुख पूर्वक रहता था।

चक्र की उत्पत्ति :

एक दिन एक वेगवती नामकी विद्याधरीने कुमार का अपहरण किया। कुमार के पूछने पर उसने कहा, 'वैताढ्य पर्वत पर सुरोदय नगर के इन्द्र धनुप राजा की श्रीकान्ता पत्नी की कुक्षी से उत्पन्न जयचन्द्रा पुत्री पुरुषद्वेषिणी हो गयी थी। उसे मैंने अनेक राजा, राजकुमारों के चित्र बताएँ पर उसने एक भी चित्र पसंद नहीं किया। एक बार महापभ (तुम्हारा) का चित्र बताया और उसे देखते ही वह कामातुर हो गयी। फिर आपकी खोज की। आपको यहाँ देखकर मैं आपको वहाँ सूरोदय नगर में ले जा रही हूँ।

इन्द्रधनुष राजा ने जयचन्द्रा का विवाह महापभ से किया। इसे सुनकर जयचन्द्रा के मामा गंगाधर और महींधर दोनों विशाल सेना के साथ युद्ध करने आये। महापभ के साथ उनका भयंकर युद्ध हुआ। महापभ के हाथ में चक्ररत्न आया और उससे वे दोनों मारे गये। इधर स्त्रीरत्न को छोड सभी रत्न उत्पन्न हुए और उसने छः खंड साधे। अपने नगर में आया। पिताने महोत्सव पूर्वक उसका नगर प्रवेश करवाया। महापभ एक बार तापसाश्रम में गया। वहाँ तापसों ने विशेष सत्कार किया और 'जनमेंजय' राजा ने अपनी पुत्री मदनावली उसे दी। उसके साथ विवाह कर वह हस्तिनापुर आया।

एक बार नागसूरि नामके आचार्य भगवंत का उपदेश सुनकर पभोत्तर राजा ने महापभ का राज्याभिषेक कर विष्णुकुमार के साथ चारित्र ग्रहण किया।

रथयात्रा :

महापभ चक्रवर्तीत्व पने को भोग रहा था। नमुचि को प्रधानमंत्री बनाया था। चक्रीने जैन रथ को पूरे नगर में घूमाया और माता का मनोरथ पूर्ण किया। पृथ्वी को अनेक जिनालयों से मुद्रित की।

पभोत्तर मुनि ने निरतिचार चारित्र का पालन कर सिद्धि पद को प्राप्त किया।

विष्णुकुमार को तपोबल से वैक्रिय लब्धि आकाश गामिनी लब्धि आदि अनेक लब्धियाँ उत्पन्न हुई। वे शाश्वत तीर्थों की वंदना के लिए मेरू पर्वत आदि स्थानों पर जाते रहते थे। और निरतिचार चारित्र का पालन करते थे।

नमुचि का द्वेषभाव :

एक बार सुव्रताचार्य भगवंत विहार करते हस्तिनापुर आये और वसति की याचना कर उद्यान में चातुर्मास के लिए ठहरे। नमुचि ने पूर्व के तिरस्कार का स्मरण कर वैर लेने का निर्णय कर महापभ राजा से वरदान मांगा। चक्री ने कहा, 'जो इच्छा हो सो मांगो।' नमूचि ने कहा, 'मैं विश्व शांति के लिए यज्ञ करना चाहता हूँ इसलिए सात दिन के लिए छ खंड में मेरी अखंड आज्ञा का प्रवर्तन हो ऐसी व्यवस्था आप कर दें।' तब महापभ ने सात दिन के लिए उसको राज्य देकर स्वयं अंतपुर में रहा। उसके सात दिन के राज्याभिषेक के समय और यज्ञ की सफलता हेतु आशीर्वाद देने सभी धर्म गुरू आये। पर सुव्रताचार्य न आये। तब उसने सुव्रताचार्य को समाचार भेजे कि आशीर्वाद देने आओ या मेरा राज्य छोडकर चले जाओ।

सुव्रताचार्य ने कहलाया कि हमारा धर्म हमें इस प्रकार के हिंसक यज्ञादि के लिए आशीर्वाद देने जाने का निषेध करता है, इसलिए हम नहीं आ सकते। हम चातुर्मास के दिनों में विहार नहीं करते और आपका राज्य छ खंड तक विस्तृत है हम आपका राज्य छोडकर कहाँ जाएँ ?

नमुचि ने कहा आप तीन दिन में यहाँ से नहीं गये तो मैं सभी को मार डालूँगा।

सुव्रताचार्य ने अपने मुनियों से पूछा, 'इस समय कोई विष्णुकुमार के पासे जाने की शक्ति वाला है?' तब एक मुनि ने कहा 'मेरे पास मेरूपर्वत पर जाने जितनी शक्ति है पर वापिस आने की शक्ति नहीं है।' तब आचार्य श्री ने कहा, 'उसकी चिंता तुम मत करो। वे तुम्हे ले आयेंगे।' और वे मुनि मेरूपर्वत पर गये। विष्णुकुमार मुनि को समाचार दिये। विष्णुकुमार मुनि हस्तिनापुर आये। आचार्य भगवंत को वंदनादि कर समाचार जानें। फिर वे महापभ के पास गये। महापभ ने उनका आदर सत्कारपूर्वक वंदन किया। विष्णुकुमार ने कहा, 'तेरी उपस्थिति में मुनियों का अपमान यह क्या है?' तब उसने कहा, 'मुझे हार्दिक दुःख है पर मैं वचन बद्ध हो जाने से कुछ नहीं कर सकता।'

शासन रक्षा :

विष्णुकुमार मुनि राज सभा में आये। तब नमुचि के अलावा सभी सभासदों ने उठकर विष्णुकुमार मुनि को वंदन किया। मुनि ने नमुचि से कहा देख! चातुर्मास का समय है इस लिए मुनि गण यहाँ से विहार कर नहीं सकेंगे। चातुर्मास पूर्ण होने पर विहार कर लेंगे। नमुचि ने आवेशपूर्ण शब्दों मे कहा कि मैंने तीन दिन में उनको जाने का आदेश दिया है। वे नहीं गये तो मैं उनको मार दूंगा। तब विष्णुकुमार मुनि ने उसे कहा कि मुझे तीन पैर रखने जितनी भूमि दे। तब नमुचि ने तीन पैर भूमि से बाहर किसी मुनि को देखूंगा तो मार दूंगा, ऐसा कहा।

विष्णु मुनि ने उसी समय वैक्रिय लब्धि का प्रयोग कर एक लाख योजन का शरीर बनाकर एक पैर जंबूद्वीप की पूर्व जगति पर और दूसरा पैर पश्चिम जगति पर रखा। उस समय त्रिभुवन में क्षोभ उत्पन्न हो गया। पर्वत शिखर टूटने लगे, चारों ओर लोग भयभीत होकर भागने लगे। ज्योतिष देव विमानों में भी क्षोभ उत्पन्न हो गया। सौधर्मेन्द्र ने अवधिज्ञान से यह स्वरूप देखकर देवियों को उनके पास भेजी और उन्होंने मुनि के कर्ण के पास जाकर गायन करना प्रारंभ किया। मुनि ने तीसरा पैर रखने हेतु नमुचि से भूमि मांगी। नमूचि भी भयभीत हो गया था। तीसरा पैर उन्होंने नमुचि के मस्तक पर रखा। नमुचि वहाँ ही सिंहासन से गिरा। आयुष्य पूर्ण हो गया। महापभ चक्री ने आकर विष्णुकुमार के कोप की उपशांति के लिए प्रयत्न किया। समस्त संघने भी मुनि के कोप की उपशांति के लिए प्रयत्न किया। मुनि भगवंत उपशांत हुवे। और प्रायश्चित लेकर शुद्ध हुये। आगम में कहा है 'जो आत्मा आचार्य, कुल, गण, संघ, मुनि आदि के लिए अतिचार, अनाचार का सेवन करता है और उसका प्रायश्चित लेने पर ही वह शुद्ध होता है।

चारित्र ग्रहण देव भव :

महापभ चक्री ने सुव्रताचार्य मुनि भगवंतों से अविनय आशातना की वारंवार क्षमा याचना की। षड्खंड की ऋद्धि को भोगते हुए कितना ही समय व्यतीत हुआ। फिर चारित्र ग्रहण कर चारित्र का पालन कर सर्वायु तीस हजार वर्ष का पूर्णकर देवगति में गया।

● *भक्त भगवंत के पास जाए और जरूरत उपस्थित करे तो वह भक्त की अपूर्णता ही है एवं भक्ति की अपूर्णता भी है। संपूर्ण समर्पण भाव ही भक्ति है एवं संपूर्ण समर्पण भाव में आवश्यकता का कोई स्थान नहीं रहता।* - जयानंद

श्री दशम चक्रवर्ती हरिषेण चरित्र

जंबूद्वीप के भरत क्षेत्र में कांपिल्य पुर अपने आप में समृद्ध नगर था। वहाँ के रहनेवाले लोग धर्मपरायण, नीतिवान और कार्यदक्ष थे। उस नगर का महाहरि राजा प्रजावत्सल, न्याय प्रिय, शूरवीर और समतावान था। उसकी पट्टरानी मेरादेवी शील पालक, सदाचार प्रिय, गुण प्रिय और सहनशील थी।

एक बार रात्रि के समय अर्द्धजागृत अवस्था में मेरादेवी ने अपने मुख में गज वृषभ आदि चौदह पदार्थ प्रवेश करते देखे। उसी समय वह उठकर नमस्कार महामंत्र का जाप करने लगी और उसके रोम रोम में हर्ष उत्पन्न हुआ। वह विचारने लगी। मुझे इतने स्वप्न एक साथ आये हैं तो इसका विशिष्ट फल मुझे अवश्य मिलेगा। वह उसी समय अपने पति जहाँ सोये हुए थे वहाँ गयी और मंद एवं मधुर स्वर से पति को जगाकर स्वप्नों का वर्णन किया। पतिदेवने भी विचार कर कहा कि तुम्हें महापराक्रमी सदाचारी पुत्र रत्न की प्राप्ति के सूचक ये स्वप्न हैं।

फिर प्रातः काल स्वप्न पाठकों को बुलाकर स्वप्न फल पूछा और उन्होंने भी संपूर्ण पृथ्वी पर एक छत्री राज्य करनेवाला, महाशूरवीर, धर्मात्मा पुत्र रत्न की प्राप्ति होगी, ऐसा स्वप्न फल दर्शाया। उनको पारितोषिक देकर सत्कार कर विदाय दी।

गर्भ कालपूर्ण होने पर मेरा देवी ने पुत्र रत्न को जन्म दिया। उसका नाम 'हरिषेण' दिया। क्रमशः यौवनावस्था में आने पर अनेक राजकन्याओं से उसका विवाह किया। महाहरि राजा ने उसका राज्याभिषेक कर आत्म कल्याण का मार्ग ग्रहण किया।

एक बार आयुधशाला में चक्ररत्न उत्पन्न हुआ। तब पन्द्रह धनुष की काया वाला हरिषेण छ खंड पर विजय पताका फहराने के लिए चला। मागध आदि देव, वैताढ्य पर्वत पर के दोनों श्रेणियों के विद्याधर, म्लेच्छ राजा आदि को जीतकर पुनः कांपिल्य पुर में आया। देव, मानवों ने चक्रवर्तीत्व का महोत्सव किया। चौसठ हजार अंते उरियों के भौतिक सुखों का उपभोग करते कितना ही काल गया। एक दिन संसार से विरक्त होकर सद्गुरू भगवंत के पास चारित्र ग्रहण किया। निरतिचार चारित्र का पालनकर केवलज्ञान पाकर दश हजार वर्ष का संपूर्ण आयु पूर्ण कर सिद्धि गति को पाया। सिद्ध, बुद्ध और मुक्त हो गया।

इति श्री हरिषेण नामक दशम चक्रवर्ती चरित्र संपूर्ण।

● *जिनशासन ने अधमाधम की निंदा को भी पाप कहा है इस बात को न भूलें।* - जयानंद

ग्यारहवाँ श्री जय चक्रवर्ती चरित्र

जंबूद्वीप के भरत क्षेत्र के मागध देश में धर्मस्थली राजगृही नगरी में प्रजा पालक, सत्य प्रेमी, शत्रुओं का दमन करनेवाला, नम्रता गुण युक्त विजय राजा राज्य करता था। उसकी विशुद्ध स्वभाववाली, संतोषी, सरलता गुणवाली, वप्रा नामकी पट्टरानी थी।

एकबार वह अपने शयन गृह में सुख की निद्रा ले रही थी। उस समय एक भव्यात्मा उसकी कुक्षी में आया और उसने उत्तम तीस स्वप्न में से चौदह स्वप्न देखे। उत्तमोत्तम स्वप्न देखने से निद्रा सर्वथा उड गयी। वह अपने पतिदेव के शयनगृह में गयी। और स्वप्न की बात कही। पतिदेव ने उत्तम पुत्ररत्न की प्राप्ति होगी ऐसा स्वप्न फल कहा।

फिर प्रातः राज सभा में स्वप्न पाठकों को बुलवाकर उनका सत्कार सम्मान कर स्वप्न फल पूछा। उन्होंने भी एक चक्री राज्य करनेवाले सर्वोत्तम पराक्रमशाली, सर्वगुण संपन्न पुत्ररत्न के जन्म की बात कही। उनको धनराशि देकर विदाय दी।

गर्भ की उत्तमोत्तम रीति से प्रतिपालना की। पुत्र रत्न का शुभमुहूर्त में जन्म हुआ। उसका जय कुमार नामकरण किया। पांच धाव माताओं से लालित-पालित होते हुए वह किशोरावस्था में आया। विद्याध्ययन एवं शस्त्रकलादि पुरुषों की बहत्तर कला में प्रवीण हुआ।

यौवनावस्था में आने पर अनेक राज कन्याओं से उस जयकुमार का विवाह हुआ।

एक सद्गुरू भगवंत के पधारने पर उनकी वैरागमयी वाणी सुनकर विजय राजा ने जय कुमार का राज्याभिषेक कर चारित्र ग्रहण किया। कुछ समय जाने पर जय राजा के शस्त्रागार में चक्र रत्न उत्पन्न हुआ। राजा ने महोत्सवकर उसकी पूजा की और छ खंड पर विजय प्राप्त कर राजगृही में बत्तीस हजार मुकुट बद्ध राजाओं के साथ आया। सभी ने मिलकर चक्री पद का पाटोत्सव किया। राज्य सुख का उपभोग कर सद्गुरू भगवंत की देशना सुन कर वैराग भाव को धारण कर चारित्र ग्रहण किया। आसेवन शिक्षा एवं ग्रहण शिक्षा लेकर गीतार्थ हुआ। तपधर्म में निमग्नता धारण कर घाति कर्मों का क्षय कर केवलज्ञान को प्राप्त किया। पृथ्वीतल पर अनेक भव्यात्माओं को मुक्ति मार्ग का उपदेश देकर अनेक आत्माओं का उद्धार किया। अंतिम समय में अनशन कर सर्वायु एक हजार वर्ष का पूर्ण कर अघाति कर्मों का क्षय कर अजर अमर पद को पाया।

इति श्री जय चक्रवर्ती चरित्र संपूर्ण।

● *जिनाज्ञा का पालन मोक्ष का कारण।*
जिनाज्ञा की विराधना भव वृद्धि का कारण।

द्वादशम् ब्रह्मदत्त चक्रवर्ती चरित्र

साकेतनगर में चंद्रावतंसक राजा राज्य करता था। उसका एक पुत्र मुनिचंद्र जो सद्गुरू की देशना से प्रतिबुद्ध होकर प्रव्रजित हुआ। एक बार मुनियों के साथ विहार करते-करते एक सार्थवाह के साथ अटवी पार कर रहे थे, उस समय मुनिचंद्र मुनि मार्ग भूलकर अटवी में इधर-उधर घूमने लगे।

प्रतिबोध :

वहाँ उस अटवी में गाय चराने वाले बालक पशुओं को लेकर आये हुए थे। उन्होंने एक साधु को अटवी में देखकर वे उनके पास गये। और पूछा। आप इस भयानक अटवी में कैसे पधारे? मुनिचंद्र साधु ने उनकी मीठी मधुरी वाणी और साधु के प्रति का पूज्यभाव देखकर उनको कहा कि मुझे उस गांव में जाना है। मैं मार्ग भूल जाने से इस अटवी में आ गया हूँ। तब उन बालकों ने उन्हें आहार पानी वहोरा कर भक्ति की। और मार्ग बताने साथ में आये। मुनि ने उनकी योग्यता देखकर धर्मोपदेश दिया। चारों बालक मुनि भगवंत की देशना से प्रतिबोध पाकर दीक्षित हुए। निरतिचार चारित्र की पालना कर दो मुनि तो मोक्ष पधारे। दो मुनि ने मानसिक विराधना की कि 'यहाँ सब कुछ अच्छा है। परंतु मल मलिन वस्त्र पहनना, स्नान न करना, हाथ, पैर न धोना यह ठीक नहीं है।' इस प्रकार की केवल विचारणा की। कभी स्नान किया नहीं या हाथ पैर धोये नहीं। मानसिक चिंतन करके जुगुप्सा मोहनीय कर्म के कारण नीच गौत्र का बंध किया। आराधना के फल रूप में दोनों देवलोक में गये।

चित्र संभूत :

वहाँ से आयु पूर्ण कर दशपुर नगर में शांडिल्य ब्राह्मण की यशोमती दासी की कुक्षी से पुत्र रूप में एक साथ जन्में। बाल भाव छोडकर युवावस्था में आने पर खेत की रक्षा के लिए जाने लगे। एक बार रात को एक सर्प ने एक भाई को डसा। दूसरा भाई उस सर्प को मारने दौडा तो उस सर्प ने उसे भी डस लिया। दोनों एक साथ मरकर कालिंजर पर्वत पर मृगी की कुक्षी से एक साथ उत्पन्न हुए। माता के साथ घूमते-घूमते एक शिकारी के द्वारा दोनों मारे गये। वहाँ से राजहंसी की कुक्षी से हंस बाल के रूप में जन्में। वहाँ पर भी मछलीमारने उन दोनों को मारा। वहाँ से वाराणसी नगरी के एक समृद्ध चण्डाल भूतदिन्न के घर पुत्ररूप में दोनों एक साथ जन्में। उनका नाम चित्र और संभूत दिया।

नमुचि :

वाराणसी नगरी में शंख नामक राजा राज्य करता था। उसके नमुचि नामक प्रधान का रानी के साथ अनुचित संबंध ज्ञात होने पर राजाने उसे वध के लिए भूतदिन्न चण्डाल को दे दिया।

भूतदिन्न ने सोचा यह विद्वान है। अगर यह मेरे दोनों पुत्रों को पढाने का कार्य करे तो मैं उसे जीवित रखदूँ। फिर उसने नमूचि से कहा, 'मेरे पुत्रों को पढाने का कार्य आप करते हो तो मैं आपको नहीं मारूंगा। नमुचि ने जीवितव्य के लोभ में चण्डाल के पुत्रों को पढाने का मंजूर किया। चण्डाल ने उसे भूमिगृह में रखा। दोनों बालक बुद्धिशाली थे। ज्ञानार्जन शीघ्र होने लगा। भोजन आदि की व्यवस्था चण्डाल की पत्नी करती थी। बार-बार मिलने से और चण्डाल पत्नी अभी युवा थी। नमुचि उस पर आसक्त हो गया। चण्डाल पत्नी ने भी उसकी बात मंजूर कर ली। दोनों का संबंध चालु हो गया। पाप का घडा फूटे बिना नहीं रहता। एक दिन चण्डाल को इस संबंध का ख्याल आ गया। और उसने नमुचि को मारने के लिए अपने पुत्रों से कहा। पुत्रों ने गुरू के उपकार को याद कर जंगल में ले जाकर उन्हें छोड दिया।

नमुचि वहाँ से भागकर हस्तिनापुर आया। अपने बुद्धिबल से सनत्कुमार चक्री का मन्त्री हुआ।

अपमान :

इधर चित्र-संभुत गायन कला में प्रवीण हो गये थे। वे नगर में घूमकर गाते थे। तब नगर के लोग उनके गान को सुनने इकट्ठे हो जाते थे। स्पृश्यास्पृश्य का विवेक भी भूला दिया जाने लगा। एक बार मदनोत्सव में तो उन दोनों के गायन से आकृष्ट युवति वर्ग भी मनोमुग्ध होकर उनको घेर कर खडी हो गयी। उस समय वेदज्ञ ब्राह्मणों ने राजा से फरियाद की। तब राजा ने चित्र-संभुत के नगर प्रवेश पर प्रतिबंध लगा दिया।

कुछ समय के बाद कौमुदी महोत्सव में उन दोनों ने बुरखा ओढकर भाग लिया। और गीत गान द्वारा जनता को मंत्रमुग्ध कर दी। एक व्यक्ति को शंका उत्पन्न हुई और उसने बुरखा खींच लिया। उन दोनों को पहचान कर लोगोंने मार पीटकर भगा दिये।

मुनि बनें :

उस समय उन्होंने सोचा। हमारे संगीत से तो इनको प्रीति है। परंतु इस शरीर से अप्रीति करते हैं। इसलिए हमें जीवित रहने का कोई अधिकार नहीं है। हमारे लिए किसी पर्वत पर से झंपापात कर जीवन लीला समाप्त कर देना ही अच्छा है। इस प्रकार निर्णय कर एक पर्वत पर चढ़े। वहाँ एक तपश्चर्या करते मुनि भगवंत के दर्शन हुए। और उनके पास जाकर भाव सहित वंदन किया। मुनि ने अनंतभवों में दुर्लभ ऐसी धर्मलाभ की शुभाशीष दी। फिर उस पर्वत पर आने का कारण मुनि ने उनको पूछा। उन दोनों ने अपना अभिप्राय और कारण बताया।

मुनि भगवंत ने आपघात कर मरने के कटु फल दर्शाकर उनको धर्म का स्वरूप समझाया। धर्म ही सुख का मूल कारण है और दुःख का मूल कारण अधर्म है। ऐसा विस्तारपूर्वक समझाया। और उन दोनों ने मुनि भगवंत का शिष्यत्व ग्रहण कर लिया। अब

वे चारित्र के पालन में निमग्न बन गये। काल क्रम से गीतार्थ हुए। फिर गुर्वाज्ञा लेकर मासक्षमण आदि तप करते हुए दोनों मुनि साथ-साथ विचरने लगे। उन्हें अनेक लब्धियाँ प्राप्त हुई।

नियाणा :

एक बार वे हस्तिनापुर के बाहर उद्यान में ठहरें। मासखमण के पारणे के अवसर पर संभूत मुनि भिक्षा के लिए नगर में गये। राजमार्ग से जाते गवाक्ष में रहे हुए नमुचि ने उनको देख लिया और सोचा ये मुनि मेरा पूर्व का वृतांत यहाँ मुझे देखकर कह दे, इसके पूर्व ही मैं इसको यहाँ से निकलवा दूँ। ऐसा मनोमन निर्णय कर सेवकों के द्वारा मुनि को मुष्टि लकडी आदि से पिटवा कर नगर के बाहर निकलवाया। मुनि ने उस समय नमुचि को देख लिया। और उसके हृदय में विचार आया। जीवित दान दिया। उसका यह परिणाम। अभी इसको और सारे नगर को तेजो लेश्या के द्वारा भस्म कर दूँ। एक साथ भस्म करने की अपेक्षा पीडित कर भस्म करने से ये अधिक दुःखी होंगे। इस कारण उन्होंने मुँह से धुँआ प्रसारित किया। पूरा नगर अंधकार मय होने लगा। नगर में नमुचि ने मुनि को पिटवाया और मुनि द्वारा कृत यह उपसर्ग है ऐसा जानकर लोग मुनि के चरण में आकर क्षमा मांगने लगे। सनत्कुमार चक्री भी आया। उसने भी मुनि से क्रोध से उपशांत होने के लिए प्रार्थना की। अनेक प्रकार की उपदेशात्मक बातें की। परंतु सब प्रयत्न निरर्थक रहा। इधर उद्यान में भागकर जानेवाले लोगों से चित्र मुनि ने भाई मुनि के कुपित होने के समाचार जाने। वे अतिशीघ्रता से संभूत के पास आये। और कहने लगे हे संभूत मुनि! कोपानल को शांत कर। साधु का जीवन उपशम प्रधान होता है। वे भयंकर अपराध में भी कोप को अवकाश नहीं देते। कहा है : 'मासोपवास कारक, वनवासी, ज्ञानी, दुष्कर ब्रह्मचर्य का धारक, सद्ध्यान में तत्पर, भिक्षा भोजी अनेक प्रकार के धर्मानुष्ठान करने वाला भी क्रोध करता है, तब सब धर्मानुष्ठान निष्फल हो जाता है।'

इस प्रकार अनेक प्रकार से संभूत को समझाने पर वह शांत हुआ। तेजोलेश्या के प्रयोग को वापिस खींच लिया। जन हानि न हुई।

सनत्कुमार ने मुनि के कुपित होने का कारण खोजा तो नमुचि द्वारा मुनि को पिटवाने का कार्य जाना। उसी समय नमुचि को रस्सी बंधवाकर उद्यान में मुनियों के पास लाया, चरणों में गिरवाया। मुनियों ने उसको क्षमा कर, उसे छूडवाया। चक्री ने उसे राज्य में से निकाल दिया।

दोनों मुनियों ने अब आयु अल्प जानकर अनशन प्रारंभ किया। मुनि भगवंत के अनशन के समाचार सुनकर उनको वंदना करने के लिए अंतपुर सहित चक्री आया। नगर जन भी आये। सभी ने मुनि के चरणों में वंदना की। उस समय सुनन्दा जो स्त्री रत्न थी उसके वंदन

करते समय अवग्रह के अन्दर आ जाने से और अति भावुकता से उसके केश का स्पर्श मुनि के पैर को हो गया। और उस स्पर्श से मुनि विचलित हो गये। उन्होंने सोचा 'इतना मुलायम आल्हादक स्पर्श एक केशाग्र का है तो इसके शरीर का स्पर्श तो कितना आल्हादक होगा! संसार में सारभूत अंगना दर्शायी है वह सत्य है। बस मेरी तपश्चर्या का कोई फल हो तो अगले भव में मुझे ऐसी स्त्री की प्राप्ति हो। यानि मैं चक्रवर्ती होऊ।' ऐसा निदान संभूत मुनि ने किया। और इसका ख्याल चित्र मुनि को आ गया। उस समय चित्र मुनि ने भाई मुनि को निदान के कटु फल बताए। यह निदान दुःख का कारण है। आत्मा को नरक-निगोद में ले जाने वाला है। संसार के भोग परिणाम में दारूण है। परिभ्रमण बढाने वाले ये भोग है। इस निदान को छोडकर इसका मिच्छा मि दुक्कडं दे। परंतु संभूत मुनि ने अपने किये हुए निदान को न छोडा। न उसका मिच्छा मि दुक्कडं दिया। आयु पूर्ण कर दोनों सौधर्म देवलोक में देव हुए।

इधर कांपिल्यपुर नगर में ब्रह्म नामक राजा राज्य करता था। उसकी पत्नी चूलनी नाम की थी। ब्रह्म राजा के चार मित्र थे। काशी देश का कटक राजा, गजपुर का कणेरदत्त राजा, कौशल देश का दीर्घ राजा और चंपानगरी का पुष्पचुल राजा। ये पांचो मित्र राजा अत्यन्त स्नेह से आबद्ध प्रतिवर्ष विविध क्रीडा करते हुए अन्तपुर सहित एक ही राज्य में बारी बारी से रहते थे।

इधर चूलनी ने एक बार चौदह स्वप्न देखे। ब्रह्म राजा एवं स्वप्न पाठकों ने उत्तम पुत्र रत्न की प्राप्ति का फलादेश कहा। गर्भ समय पूर्ण होने पर पुत्र रत्न का जन्म हुआ। उसका नाम ब्रह्मदत्त दिया। ब्रह्मदत्त चौदह वर्ष का हुआ। उस वर्ष पांचो राजा कांपिल्यपुर में थे। अचानक ब्रह्मराजा का स्वास्थ्य बिगडा और असाध्य शिरोरोग उत्पन्न हो गया। ब्रह्मराजा ने चारों मित्र राजाओं पर राज्य की, पुत्र की जवाबदारी देकर स्वयं स्वर्गवासी हुआ। ब्रह्म राजा का अंतिम संस्कार एवं अंतिम कार्य कर चारों मित्र राजाओंने प्रथम वर्ष राज्य की व्यवस्था का भार दीर्घराजा के स्कंध पर रखा। अन्य तीनों राजा अपने अपने देश में गये।

दीर्घराजा ने राज्य का संचालन सुचारु रूप से करना प्रारंभ किया। कभी-कभी किसी आवश्यक कार्य के लिए चूलिनी के साथ मंत्रणा के लिए अंतपुर में जाता था। चुलिनी की वासना उपशांत नहीं हुई थी। दीर्घ स्वरूपवान एवं युवा था। दो-चार बार के मिलन में आपस में प्रेम हो गया। और चुलिनी दीर्घ के साथ भोग भोगने लगी। और इस पाप की खबर धनु नामके वफादार मंत्री को हो गयी। उसने सोचा ब्रह्मदत्त के लिए यह प्रकरण घातक होगा। अतः उसने अपने पुत्र वरधनु को एकांत में बुलाकर कहा 'तू ब्रह्मदत्त के पास जाकर उसे कह दे कि तेरी माता दीर्घ राजा के साथ भोग भोगती है। अतः तू जागृत रहना। कहीं ये पापी तेरा अहित न कर दे।' वरधनु ने ब्रह्मदत्त के पास जाकर सारी बातें बता दी।

ब्रह्मदत्त कुमार ने माता के दुश्चरित्र का पत्ता लगाकर इस दुश्चरित्र को असह्य जानकर एक दिन काक एवं कोकिल को शूल में पिरोकर चूलिनी एवं दीर्घ जहाँ बैठे थे, उनसे थोडी दूरी पर बैठकर, काक को संबोधन कर बोला, 'ए। कौआ! तू कोकिल के साथ संबंध रखने का फल चख ले। और उस कौए की गर्दन मरोड दी। और जोर से बोला, 'और कोई ऐसा कार्य करेगा तो उसको भी ऐसी ही सजा दूंगा।' इस प्रकार उसने दो तीन प्रकार के दृष्टांतों के द्वारा दीर्घ और चुलिनी को समझाने का प्रयत्न किया। चुलिनी ने उसकी इस प्रकार की क्रिया को बाल चेष्टा माना। परंतु दीर्घ जल उठा। उसने चुलिनी से कहा 'यह हमारे लिए विघ्नभूत है। तू पुत्र मोह से इसकी इन हरकतों को नहीं समझी। पर मैं समझ गया हूँ। यह मुझे कौआ आदि कह रहा है और मेरी गर्दन मरोडने का संकेत दे रहा है।

अब तुझे निर्णय कर लेना है या तो पुत्र मोह छोड या मेरा मोह छोड। चुलिनी वासना की पूजारण बन गई थी। पुत्र से भी उसे वासना पूर्ति प्रिय हो गयी। और उसने राज्य में विद्रोह न हो इस प्रकार पुत्र को मारने का उपाय सोचा। तय किया कि पुत्र विवाह करके आए उस समय लाक्षागृह बनवाकर उस में उसे सोने का कहूँगी। वह उसमें सो जायगा। तब आग लगवा दूँगी। दोनों मर जायेंगे। मेरा मार्ग स्वच्छ हो जायगा।

पुष्पचूल राजा का विवाह के लिए बार-बार आग्रह हो रहा था। उस आग्रह को मंजूर कर ब्रह्मदत्त को विवाह के लिए भेजा।

इधर धनुमंत्री को समाचार मिल गये कि लाक्षागृह ब्रह्मदत्त को जलाने हेतु बनाया जा रहा है। तब धनुमंत्री ने दीर्घराजा से तीर्थयात्रा करने जाने के लिए मंत्री पद से मुक्ति चाही। तब दीर्घराजा ने कहा 'इधर रहकर धर्म ध्यान करो' दीर्घ ने सोचा था कि 'यह कहीं बाहर जाकर उत्पात न मचा दे।' धनु ने नगर के बाहर दानशाला खोल दी। और वहाँ रहकर लाक्षागृह जहाँ बन रहा था वहाँ से दो कोश तक दो अश्वारोही चल सके उतना भूमि के अंदर मार्ग बनवाना प्रारंभ किया। लाक्षागृह भी बन गया। और भूमि मार्ग भी बन गया।

पुष्पचूल राजा को धनुने विश्वासु व्यक्ति के द्वारा समाचार भिजवा दिये कि 'आप आपकी पुत्री का विवाह करके ब्रह्मदत्त के साथ आपकी पुत्री के समान देह वाली किसी दासी पुत्री को भेजे। आपकी पुत्री को आपके घर पर ही रखें।' पुष्पचूल ने वैसा ही किया।

ब्रह्मदत्त वधु के साथ कांपिल्यपुर आया। माता के चरणों में नमन करने दोनों आये। माता ने दीर्घायुभव की आशीष दी। फिर कहा, 'अपने कुल की रीति है कि विवाह करके आनेवाले को एक दिन नये महल में रहना पडता है। एक दिन के लिए दास-दासी भी उस महल में नहीं रहने चाहिए।' ब्रह्मदत्त ने माता की बात मान ली। रात को नये महल में वर-वधु दोनों गये। उस समय बाहर से द्वार बंध कर दिया गया। ब्रह्मदत्त को अंदर एक कमरे में किसी

के होने की शंका हुई। वह उस कमरे में गया। वरधनु को देखा। वरधनु ने ईशारे से चूप रहने का कहा और पास में बुलाकर उसे सारी योजना बतायी। माता की योजना भी बताई और बचाव की योजना भी बताई। और कहा कि 'यह तेरी पत्नी नहीं है यह दासी पुत्री है। इसे यहाँ ही रहने देना है।' इतने में आग लगी। वरधनुने भूमि मार्ग का द्वार खोला और दोनों अश्वारोही बनकर भाग गये। एक दिन में पच्चास योजन दूर चले गये। लम्बे मार्ग की थकान से घोडे मर गये। फिर पैदल चलकर वे दोनों कोट्टाभिधान गाम गये। कुमार ने वरधनु को कहा 'मुझे भुख लगी है।' वरधनु कुमार को बाहर बिठाकर स्वयं गाम में गया। नाई को लेकर आया। कुमार का मस्तक मुण्डित किया। कषाय वस्त्र पहनाए। चार अंगुल प्रमाण पट्टे का बन्ध से कुमार के श्रीवत्स के चिन्ह से शोभित वक्षस्थल हृदय को बांधा। वरधनु ने भी वेष परिवर्तन किया।

वैसे वेषधारी होकर दोनों ने गाम में प्रवेश किया। एक ब्राह्मण ने सामने आकर उन कुमारो को ऐसा कहा, 'मेरे घर आओ और भोजन करो।' उसके ऐसा कहने पर वे दोनों उसके घर गये। ब्राह्मण ने राजा जैसा स्वागत कर उन दोनों को भोजन करवाया। भोजन के अन्त में एक उत्तम महिला ने बन्धुमति नाम की कन्या को लक्ष्य कर ब्रह्मदत्त कुमार के मस्तक पर अक्षत का प्रक्षेप किया और कहा, 'इस कन्या का वर हो।' वरधनु ने कहा, 'क्यों इस मूर्ख बटुक के लिए इतना प्रयास किया जाता है?' तब उसने कहा, 'सुनो, इस प्रयास का कारण।'

कुछ दिनों पहले सुव्रत नामक नैमित्तिक ने कहा था कि 'इस बालिका का पट्ट से आच्छादित वक्ष स्थल वाला मित्र सहित आपके घर में भोजन करने वाला पति होगा। यह इसके योग्य वर है। उसी दिन उसने उस कन्या का कुमार के साथ विवाह किया। घर का स्वामी हर्षित हुआ, कुमार एक रात वहाँ रहा। दूसरे दिन कुमार को वरधनु ने कहा, 'हम दोनों को दूर जाना है। दीर्घ राजा पास में होने से यहाँ ठहरना उचित नहीं है।' दोनों बन्धुमति को सारी कथा कहकर निकले। जाते हुए एक बार वे किसी दूर ग्राम में गये। तृषा से पीडित कुमार को बाहर बिठाकर वरधनु जल लेने के लिए ग्राम में प्रविष्ठ हुआ। शीघ्रता से वापिस आकर कुमार को कहा, 'यहाँ ऐसा लोक वाद सुना कि दीर्घराजा ने ब्रह्मदत्त के मार्ग को चारों ओर से सैन्य से घेर दिया है। इसलिए हम यहाँ से भागें। वे दोनों भागे, उन्मार्ग से जाते महा अटवी में प्रवेश किया। वहाँ कुमार को वटवृक्ष के नीचे बिठाकर वरधनु जल लेने के लिए इधर-उधर घूमा। दिन के अन्त में वरधनु को दीर्घ राजा के सैनिकों ने देखा। लकडी और मुट्ठिओं से मारते हुए 'कुमार को बता' ऐसा बोलते हुए कुमार के नजदीक के प्रदेश को आये तब तक वरधनु ने कुमार को कोई न जाने वैसे संकेत किया। सैनिकों ने न देखा और ब्रह्मदत्त भागा। विकट जंगल में घूसा। क्षुधा तृषा से पीडित तीसरे दिन उस अटवी को पारकर कुमार ने एक तापस

को देखा। उसको देखने से कुमार को जीने की आशा हुई। कुमार ने उस तापस को पूछा, 'भगवन! आपका आश्रम कहाँ है? उसने कहा कि पास में ही है। ऐसा कहकर ब्रह्मदत्त को कुलपति के पास ले गया। कुमार ने कुलपति को प्रणाम किया। कुलपति ने पूछा, वत्स! आपका आना कहाँ से हुआ ? कुमार ने सर्व वृतांत कहा। कुलपति ने कहा, 'मैं तेरे पिता का छोटा भाई हूँ। तूं अपने ही घर आया है। सुख पूर्वक यहाँ रह।' इस प्रकार का तापस का अभिप्राय जान कर कुमार वही सुख पूर्वक रहा।

वर्षाकाल आया। कुमार ने तापसों के पास रहकर बाणकला आदि सभी कलाओं का अभ्यास किया। एक बार शरतकाल में फल, मूल, कन्द आदि के निमित्त से तापसों के जाते हुए ब्रह्मदत्त कुमार भी उनके साथ वन में गया। वन लक्ष्मी को देखते हुए उसने एक महाहस्ती देखा। कुमार उसके सामने गया। हाथी ने उसे देखकर गर्जारव किया। कुमार ने उसके सामने अपना उत्तरीय वस्त्र फेंका। हाथी ने भी उसी समय उसे सूंड से पकडकर आकाश में उछाला। कुमार ने वात प्रयोग करके उस वस्त्र को अपने हाथों से पकडा। और अनेक प्रकार की क्रीडा से हाथी को हैरान करके छोडा। वह पीछे जाने लगा। उसके पीछे कुमार भी चला। आगे जाकर कुमारने पूर्व पश्चिम दिशा में घूमते पर्वत के पास नदी के किनारे रहा हुआ जीर्ण भवन की दिवारें मात्र दिखाई दें, ऐसा एक नगर देखा। उसके मध्य में प्रवेश कर चारों दिशाओं में दृष्टि को फेंकता हुआ चल रहा था। तब एक स्थान पर पास में रहा हुआ एक खेटक खड्ग और विकट वंश की जाल देखी। कुमार ने उस तलवार को कौतुक से चलायी। एक प्रहार से वंश जाल गिरी। और वंश जाल के बीच में रहा हुआ एक मस्तक दिखाई दिया। ओष्ट खुले मनोहर आकारवाले शिर कमल को देखकर संभ्रान्त कुमार ने सोचा 'हा! धिक्कार हो मेरे इस कार्य को, धिक्कार हो मेरे बाहुबल को' इस प्रकार स्वयं कि निन्दा करने लगा। पश्चाताप से पीडित कुमार ने पूजापे के सामान सहित शरीर को देखने के कारण बहुत घृणा उत्पन्न हुई।

इधर-उधर देखते कुमार ने पुनः उत्तम उद्यान को देखा। घूमते हुए अशोक वृक्ष युक्त एक सप्त भूमिका वाला मकान कुमार को दिखाई दिया। उसके मध्य में प्रवेश किया। सातवीं भूमि पर कुमार गया। वहाँ विकसित कमलदल जैसी आंखोंवाली एक स्त्री को देखा। कुमार ने पूछा, 'तू कौन है?' वह अपना वृतांत कहने के लिए प्रवृत्त हुई। महाभाग! मेरा वृतांत बडा है। इस कारण पहले तुम अपना वृतांत कहो। इस प्रकार उसके पूछने पर कुमार ने कहा। मैं पंचालाधिपति ब्रह्म राजा का पुत्र ब्रह्मदत्त हुं। कुमार का कहना सुनकर हर्षोत्फुल नयन वाली वह बालिका उठकर उसके चरणों में गिरकर रोने लगी। दयाद्र हृदय से कुमार ने उसे फिर से कहा मुख ऊँचा कर, रो मत, तुम अपना वृतांत कहो। ऐसा कहने पर वह बोली कुमार मैं तुम्हारे मामा पुष्पचल राजा की पुत्री हूँ। आपको ही मेरे पिताने मुझे दी हुई है। मैं विवाह के

दिन से ही आपकी प्रतीक्षा करती हुई मेरे घर के उद्यान में झुले में क्रीडा करती रही हुई थी। दुष्ट विद्याधर यहाँ ले आया अब मैं स्वजन की विरह अग्नि में संतप्त यहाँ रहती हूँ। तब तक तो अनपेक्षित आप यहाँ आये। मेरा जीवन सफल हुआ । जो मैंने आपको देखा। कुमार ने कहा मेरा शत्रु अब कहाँ है? जिससे उसकी शक्ति देखूँ। उसने कहा, स्वामिन्! मुझे उसने शंकरी नामक विद्या दी है। और कहा है इस विद्या के पाठ मात्र से तुझे दास दासी, सखी परिवार साकार होकर तेरी आज्ञा का पालन करेंगे। तेरे पास ये आये हुए शत्रु का निवारण करेगी। दूर रहे हुए भी मेरी कार गुजरी पूछने पर यह तुझे कहेगी। वह विद्या आज मुझे प्राप्त हुई। याद करने पर मुझे उसकी गतिविधि कही। वह उन्मत नामक विद्याधर पूर्ण पुण्य वाली तेरा स्पर्श और तेज सहन करने में असमर्थ होने पर तुझे यहाँ छोडकर, अपनी बहन को कहने के लिए ज्ञायिकी विद्या को भेजकर और स्वयं विद्या साधने के लिए वंशकुण्ड में गया है। वहाँ से निकलकर तुझ से शादी करेगा। उसके ये वचन सुनकर ब्रह्मदत्त ने कहा कुंडग में रहे उस विद्याधर का मैंने अभी शिरच्छेद किया है। उसने कहा आर्यपुत्र! अच्छा किया, जो उस दुरात्मा को मारा। फिर वह उसके साथ विलास करते हुए कुछ काल वहाँ रहा।

एक बार कुमार ने वहाँ दिव्य वलयों के शब्द सुनें। उसने कहा 'कुमार! वैरी की बहन 'खंडशाखा' नाम की विद्याधर कुमारियों से युक्त अपने भाई के निमित्त विवाह के उपकरण लेकर आई है। तुम शीघ्र यहाँ से दूर हो जाओ। तब तक मैं इसका अभिप्राय जानूं। अगर इसका आप पर राग होगा तो मैं प्रासाद पर चढकर लाल पताका लहराऊँगी अन्यथा श्वेत। कुमार उस घर से बाहर जाकर दूर रहकर ऊँचा देखता है। तब तक श्वेत पताका चलती देखकर धीरे-धीरे उस प्रदेश से कुमार दूर हुआ। कुमार पर्वत के मध्य में गिरा। वहाँ घूमते हुए कुमार ने एक सरोवर देखा। वहाँ स्नान कर सरोवर के पश्चिम किनारे पर उतर कर कुमारने एक उत्तम कन्या देखी। सोचा 'अहो मेरी पुण्य परिणति, जिससे ऐसी कन्या दृष्टि गोचर हुई।' उसने भी उस कुमार को स्नेह से देखा। कुमार को देखती हुई वह आगे चली। थोडे ही समय में उसने एक दासी भेजी। उसने कुमार को वस्त्र युगल और पुष्प तांबूल आदि दिये। दासी ने कहा, 'जो आपने सरोवर के किनारे कन्या देखी थी, उसने यह भेजा है। लावण्य लतिका नामकी मैं उसकी दासी हूँ। उसने मुझे आदेश दिया इस महानुभाव कुमार को मेरे पिता के महामन्त्री के मन्दिर में लेजा। इसलिए कुमार आप वहाँ चलो।' कुमार उसके साथ उस प्रधान के घर गया। वहाँ दासी ने मंत्री को इस प्रकार कहा। 'मंत्रीन् आपके स्वामी की पुत्री ने यह कुमार भेजा है। इसका अति आदर सत्कार करना। मंत्री ने वैसा ही किया। दूसरे दिन कुमार को मंत्री राजसभा में ले गया। राजा ने कुमार को प्रधान आसन दिया और वृतांत पूछा। कुमार ने सब हालचाल वर्णित किया।

विविध प्रकार से भोजन करवाकर राजा ने कुमार को इस प्रकार कहा, 'कुमार तेरी भक्ति हमारे जैसे तुच्छ कुछ भी नहीं कर सकते। परन्तु यह कन्या तेरे सामने भेट रूप में उपस्थित की है। शुभ मुहूर्त में दोनों का विवाह हुआ। कुमार उसके साथ विलास करते हुए सुखपूर्वक वहाँ रहा।

एकबार कुमार ने उसकी प्रिया से पूछा किसलिए मुझे तू दी गई? उसने कहा, 'आर्यपुत्र! मेरा पिता वतवान शत्रु से संतापित इस विकट पल्लि का आश्रय करके रहा है। मेरी माता श्रीमति को चार पुत्र के ऊपर मैं एक पुत्री हुई। मैं पिता को अत्यंत वल्लभ थी। यौवनावस्था में एक बार पिता ने मुझे कहा पुत्री, मुझसे सभी राजा विरूद्ध हैं। उससे तू यहाँ रहते हुए ही योग्य वर को खोज। इसलिए मैं ग्राम से बाहर उस सरोवर के किनारे आने वाले पथिको को देखती रही। तुम यहाँ आये। यह परम आनंद की बात है। श्रीकांता के साथ विषय सुख भोगते हुए उसके दिन सुखपूर्वक व्यतित होते हैं। एक बार पल्लिपति कुमार के साथ अपने विरोधी राजा के देश को जितने के लिए चला। मार्ग में जाते हुए किसी सरोवर के किनारे वरधनु मिला। कुमार ने पहचाना। कुमार को देखकर वह रोने लगा। कुमार ने अनेक प्रकार से समझाया। वह रुका। कुमारने पूछा, 'मुझसे दूर होकर तूने क्या अनुभव किया?' वरधनु ने कहा, 'कुमार! जब तुझे वट के नीचे बिठाकर मैं जल लेने गया, तो मैंने एक सरोवर देखा। जल लेकर तेरे पास आने के लिए प्रवृत्त हुआ तब शस्त्रों से सज्ज दीर्घराजा के सैनिकों ने मुझे देखा। मुझे पहचाना और मारा। ब्रह्मदत्त का पता बताने के लिए कहा। मैंने कहा, मैं नहीं जानता' फिर अधिक मारने पर मैंने कहा ब्रह्मदत्त अब कहाँ है? उसको तो व्याघ्र ने खा लिया। उन्होंने कहा, 'वह प्रदेश बता।' उनके द्वारा मारेजाने पर मैं तेरे पास आया। आकर तुझे इशारा किया। तुम्हारे वहाँ से भाग जाने पर मैं उनके द्वारा और मारे जाने पर मैंने अपने मुख में परिव्राजक की दी हुई गुटिका डाली। उसके प्रभाव से मैं निश्चेष्ट बन गया। यह मर गया ऐसा जानकर वे सभी सैनिक चले गये। उनके जाने के बाद अधिक समय के बाद मैंने वह गुटिका बाहर निकाली। फिर सचेत होकर मैं तुमको ढुंढने निकला। मैंने तुमको नहीं देखा। वहाँ से मैं एक गाँव में गया। वहाँ एक परिव्राजक को देखा। उसने कहा मैं तेरे पिता का मित्र सुभग हूँ। तेरे पिता धनु भागे और माता को दीर्घ ने पकडी है। और चंडाल के पाटक में रखी है। ऐसा सुनकर मैं अतीव दुःखी होकर कांपिल्यपुर गया। कापालिक का वेष करके मातंग और महतर को ठग कर मातंग पाटक से मेरी माता को निकाली। एक ग्राम में पिता के मित्र देवशर्मा ब्राह्मण के घर माता को रखकर तुझे ढूंढता हुआ यहाँ आया।' इस प्रकार वरधनु एवं ब्रह्मदत्त बात कर रहे थे, तब वहाँ एक पुरुष ने आकर इस प्रकार कहा, 'महामात्र! आपको इधरउधर कहीं नहीं घूमना है, आपको ढूंढने के लिए दीर्घ के नियुक्त किए हुए पुरुष यहाँ आए हैं।' ऐसा

सुनते ही वे दोनों वहाँ से भागे और कौशंबी गये। वहाँ बाहर उद्यान में दो श्रेष्ठि पुत्र सागरदत्त और बुद्धिल अपने कुर्कुट युगल को लाख रुपये की शर्त सहित लडवाते थे। देखने के कौतुक से वे वहाँ रहे। बुद्धिल के कुर्कुट ने सागरदत्त के कुर्कुट को प्रहार से बर्बर किया। सागरदत्त से प्रेरित उसके कुर्कुट ने बुद्धिल के कुर्कुट के साथ फिर से युद्ध की इच्छा नहीं की। लाख रुपये सागरदत्त ने धरे। इस बीचमें वरधनुने कहा। सागरदत्त यह उत्तम जातवान कुर्कुट कैसे हारा? मुझे विस्मय हो रहा है। यदि कोई कोप न करे तो बुद्धिल के कुर्कुट को मैं देखूँ। सागरदत्त ने कहा, 'हे महाराज! देखो, मुझे कोई धन लोभ नहीं है, किन्तु गौरव की सिद्धि प्रयोजन मात्र है।' वरधनु ने वह कुर्कुट देखा, उसके पैर में सुइयों का समूह बांधा हुआ देखा। बुद्धिल ने वरधनु के कान में धीरे से कहा, 'यदि तू सुई की बात नहीं कहेगा, तो मैं तुझे अर्धलक्ष रुपये दूंगा।' फिर वरधनु ने कहा, 'देखो, कुर्कुट में कोई संदेह नहीं है।' ऐसा कहकर जैसे बुद्धिल न जाने वैसे सुइयों का समूह दूर कर सागरदत्त को वह बात बताई। सागरदत्त ने फिर अपने कुर्कुट को प्रेरित कर बुद्धिल के कुर्कुट के साथ लडने को प्रवृत्त किया। सागरदत्त के कुर्कुट ने बुद्धिल के कुर्कुट को जीता। बुद्धिल ने लाख रुपये धरे। सागरदत्त ने उन दोनों से इस प्रकार कहा, 'आर्यपुत्र! घर पर आओ, दोनों कुमारों को रथ पर बिठाकर सागरदत्त अपने घर गया। सागरदत्त उन दोनों कुमारों को परम प्रीति से देखता है। सागरदत्त के स्नेह से वे दोनों उसके अतीव आग्रह से उसके घर ही रहे। कुछ दिनों के बाद एक दास वहाँ आया। वरधनु को एकान्त में बुलाकर कहा, 'तुमने तब सुइयों के समूह का राज न कहा, इसलिए बुद्धिल ने द्रव्य को देने के लिए यह हार भेजा है।' ऐसा कहकर हार उसने वरधनु को दिया। दास अपने घर गया। वरधनु हार को लेकर ब्रह्मदत्त के पास गया। बात कहकर हार डिब्बे से निकालकर बताया। हार देखते समय ब्रह्मदत्त ने हार के एक भाग पर ब्रह्मदत्त के नाम का उल्लेख देखा। मित्र को पूछा, 'किसका है यह लेख?' वरधनु ने कहा, 'कौन जानता है? ब्रह्मदत्त नाम के अनेक पुरुष हैं।' फिर जाकर वरधनु ने लेख में लिखा हुआ देखा कि 'संयोग जनित यत्न से लोगों के द्वारा जो जय की प्रार्थना की जाती है, फिर भी तुझ धनिक को ही मानने के लिए रत्नवती जानती है।' सूक्ष्म बुद्धि से विचार कर वरधनु ने लेख का मर्म जाना कि रत्नवती नामकी कन्या ब्रह्मदत्त को चाहती है। दूसरे दिन एक परिव्राजिका वहाँ आयी। उसने कुमार के मस्तक पर पुष्प, अक्षत उछालकर कहा, 'कुमार! तुम लाख वर्ष की आयु वाले होओ।' फिर वह वरधनु को एकान्त में ले गयी। उसके साथ कुछ मन्त्रणा कर वह वापिस गयी। कुमार ने वरधनु से कहा, 'इसने क्या कहा?' वरधनु ने कहा, 'इसने कहा, जो तुझे बुद्धिल ने डिब्बी में हार भेजा है उसके साथ जो लेख भेजा है उसका प्रत्युत्तर दो। मैंने कहा, यह लेख ब्रह्मदत्त राजा के उद्‌बोधन से लिखा है। इसलिए तू ही बोल यह ब्रह्मदत्त कौन है? उसने कहा, सुनो! परंतु

किसे भी कहना नहिं। इस नगरी में श्रेष्ठि पुत्री रत्नवती नाम की कन्या है। वह बालपन से लेकर मुझ पर अतीव स्नेह युक्त यौवनावस्था को प्राप्त हुई है। एक बार विचार मग्न मैंने उसे देखी और पूछा, पुत्री! तु क्या विचार कर रही है? उसने कुछ भी न कहा। परिवार के लोगों ने कहा, अनेक प्रहरों से यह ऐसे ही आर्तध्यान करती दिखाई देती है, परन्तु इसका हार्द हम नहीं जानतें। फिर भी पूछा, परन्तु वह कुछ नहीं बोली। उसकी सखी प्रियंगुलिका ने कहा, हे भगवति! तेरे सामने यह लज्जा से कुछ भी नहीं सकती है। मैं तुम को कहती हूँ। यह एक बार क्रीडार्थ उद्यान में गयी थी वहाँ उसने अपने भाई बुद्धिल श्रेष्ठि के कुर्कुट के साथ युद्ध करते समय, पास में एक उत्तम कुमार को देखा उसको देखकर यह इस अवस्था को प्राप्त हुई। कुमारी की सखी प्रियंगुलिका के ये वचन सुनकर बार बार मेरे कहने पर वह बोली। भगवति! तुम मेरी माता के समान हो। तुमको कुछ भी अकथनीय नहीं है। इस प्रियंगुलिका ने कहा हुआ ब्रह्मदत्त कुमार यदि मेरा पति होगा तो ठीक है, अन्यथा मैं मर जाऊंगी। मैंने उसे कहा, 'वत्स! धीरज धर, मैं ऐसा करूंगी, जिससे तेरा हित होगा।' फिर वह किंचित् स्वस्थ हुई। कल फिर से मैंने उसको और अधिक आश्वासन देने के लिए वैसे कहा, 'कन्या! ब्रह्मदत्त कुमार को मैंने देखा है।' उसने भी उल्लसित रोमवाली होकर कहा, 'भगवति! तुम्हारी कृपा से सब अच्छा होगा। किन्तु उसके ब्रह्मदत्त विश्वास निमित्त से बुद्धिल के नाम से यह हार रत्न डब्बी में रखकर ब्रह्मदत्त राजा के नाम से लेख सहित किसी के हाथ से भेजो। फिर मैंने कल यह भेजा। इस लेख का वृतांत सभी मैंने तुम को कहा, अब प्रत्युत्तर दो। फिर मैंने भी प्रति लेख दिया। उसमें मैंने ऐसा लिखा उत्तम गुणों से युक्त वरधनु ब्रह्मदत्त को जानता है!

रत्नवती रत्नमयी है। उसका योग पृथ्वी से चन्द्र जैसा है। इस प्रकार वरधनु के शब्द सुनकर नहीं देखी हुई रत्नवती पर कुमार परम प्रेमवान् हुआ। उसके दर्शन व संगम के उपाय को खोजते हुए कुमार के कई दिन बीत गये।

एक बार बाहर से आकार वरधनु इस प्रकार बोलने लगा, 'इस नगर के स्वामी के पास दीर्घराजा ने अपने नौकर हम दोनों को खोजने के लिए भेजे हैं। नगर के राजा ने हमको पकडने के लिए उपाय किया है। ऐसी लोकवार्ता मैंने सुनी है। सागरदत्त ने यह वर्णन सुनकर उन दोनों को भूमिगृह में छूपा दिया। रात पडी। कुमारने सागरदत्त को कहां ऐसा कर, जिससे हम यहाँ से चलें। यह सुनकर सागरदत्त उन दोनों के साथ नगर से बाहर निकला। थोडी दूर जाकर सागरदत्त को बलपूर्वक वापिस फिराकर, कुमार और वरधनु दोनों जाने के लिए प्रवृत्त हुए। मार्ग में जाते हुए उन दोनों को यक्षायतन उद्यान के वृक्ष के बीचमें रथ के समीप एक उत्तम महिला बैठी हुई दिखाई दी। उसने उन दोनों को देखकर सादर कहा, 'इस रात में आप यहाँ आये?' उसके वचन सुनकर कुमार बोला, 'भद्रे! हम कौन हैं? उसने कहा तु स्वामी ब्रह्मदत्त

और यह वरधनु। कुमार बोला, 'यह तूने कैसे जाना?' वह बोली, 'सुनो इसी नगरी में धनप्रवर नामक श्रेष्ठी रहता है, उसकी धन संयमा नामक पत्नी है। उसको आठ पुत्रों पर एक पुत्री हुई, और वह मैं हूँ। मुझे कोई, पुरुष पसंद नहीं आता है। फिर माता की आज्ञा से मैं यक्ष की आराधना में प्रवृत्त हुई। तुष्ट यक्ष ने इस प्रकार कहा, "वत्से! तेरा पति भविष्य में चक्रवर्ती होने वाला ब्रह्मदत्त कुमार होगा।" मैंने कहा, 'उसको मैं कैसे जानूँ?' उसने कहा बुद्धिल और सागरदत्त के कुर्कुट के युद्ध में उसे देख कर यदि वह तुझे आनन्द उत्पन्न करे तो वह वरधनु का मित्र ब्रह्मदत्त कुमार जानना।' फिर मैंने हार लेख भेजने का कार्य किया, वह सब आप को मालुम ही है। कुमारी के वचन सुनकर अनुराग सहित कुमार उसके साथ रथ पर चढा। कुमार ने उससे पूछा, 'इधर कहाँ जाना चाहिए?' रत्नवती ने कहा, 'मगधपुर में मेरे पिता के छोटे भाई धनसार्थवाह नामक शेठ हैं। वह हमारा वृतांत जानकर आप दोनों का और मेरा सुन्दर स्वागत करेगा, इसलिए वहाँ चलो। फिर तो तुम दोनों की जो इच्छा हो वह करो। रत्नवती के वचन से कुमार मगधपुर के प्रति जाने के लिए प्रवृत्त हुआ। वरधनु सारथी बना। ग्रामानुग्राम जाते कौशंबी देश से निकले।

एक बार गिरि गुहा अटवी में गये। जंगल में कंटक सुकंटकं नाम के दो चोर सेनापति उनको उत्तम रथ में, और विभूषित स्त्री को देखकर, और उनके रक्षक दो कुमारों को देखकर, मारने के लिए दौडे। इस अवसर पर कुमारं ने अपनी प्रहार शक्ति बताई। सभी चोर कुमार की प्रहार शक्ति से जख्मी होकर चारों दिशाओं में भाग गये। कुमार रथारूढ होकर चला। वरधनु ने कहा 'तुम थक गये हो। अब रथ में निद्रा सुख का अनुभव करो।' फिर रत्नवती के साथ कुमार ने थोडी निद्रा ली। थोडी दूर जाने पर घोडे श्रम से थक कर आगे नहीं चलते देखकर कुमार जागा। कुमार ने श्रमित घोडों को देखकर, रथ के आगे वरधनु को न देखकर सोचा, 'वरधनु जल लेने के लिए गया होगा।' इधर-उधर देखते हुए कुमारने रथ का अग्र भाग खून से लिप्त देखा। वरधनु को मारा ऐसा सोचकर विलाप करने लगा। हा.. हा.. मेरा मित्र मारा गया। शोकार्त कुमार रथ से गिरा और मूर्च्छित हो गया। फिर चेत कर वह इस प्रकार विलाप करने लगा 'हा भ्रात। हा वरधनु मित्र। तू कहाँ गया?' ऐसे विलाप करते कुमार को रत्नवतीने जैसे तैसे सान्तवना दी। कुमार ने रत्नवती को कहा, 'सुन्दरी! ना जाने वरधनु मरा या जीवित है। इसलिए मैं उसको खोजने के लिए जाता हूँ।' उसने कहा, 'आर्य पुत्र! अब अवसर नहीं है वापिस जाने के लिए मैं अकेली हूँ। चोर श्वापद आदि से युक्त यह जंगल अति भयंकर है और निकट में सीमा नहीं है। म्लान कुश कंटक दीखते हैं।' रत्नवती के वचन सुनकर कुमार समझकर रत्नवती के साथ आगे चला। मगध देश के पास एक ग्राम में गया। उसके प्रवेश करते हुए ग्राम के अधिपति ने देखा। दर्शन के साथ ही, यह सामान्य पुरुष नहीं है ऐसा

जानकर आदरपूर्वक भक्ति सहित स्वगृह में ले गया। वहाँ रहने हेतु अच्छा मकान दिया। वहाँ सुखपूर्वक रहते हुए एकबार ग्रामाधिपति ने कहा, 'कुमार! तुम खेदित जैसे क्यों हो?' कुमार ने कहा, 'मेरा भाई चोरों के साथ युद्ध करते हुए न जाने कौनसी अवस्था को प्राप्त हुआ है? इसलिए उसे खोजने के लिए मुझे वहाँ जाना चाहिए।' ग्रामाधिपति ने कहा, 'खेद को समाप्त करो। यदि अटवी में वह होगा, तो अवश्य मिल जायगा।' ऐसा कहकर उसके भेजे हुए आदमी अटवी में जाकर आये और कहा कि हमने सर्वत्र उस पुरुष को खोजा परंतु कहीं नहीं देखा। किन्तु यह एक बाण देखा। फिर कुमार ने वरधनु मर गया ऐसा जानकर बहुत समय तक शोक किया। एक बार उस ग्राम में रात को चोर आये। और वे कुमार के बाणों से बर्बर होकर भागे।

ग्रामाधिपति खुश हुआ। कुछ दिन बाद ग्रामाधिपति को पूछकर वहाँ से कुमार चला। क्रमसे राजगृह पहुँचा। नगर के बाहर, परिव्राजक के आश्रम में, रत्नवती को छोडकर, स्वयं नगर में गया। वहाँ एक धवल घर देखा। उसके अंदर प्रवेश करते ही कुमार ने दो कन्याएँ देखीं। वे कुमार को देखकर मोहित हो गई। उन्होंने कहा, 'कुमार तुम्हारे जैसे पुरूषों को भी स्वजन को छोडकर घूमना क्या उचित है?' कुमार ने कहा, 'वह स्वजन कौन ?' कन्याओं ने कहा, 'कृपा कर आप आसन पर बैठो।' कुमार आसन पर बैठा। उन्होंने स्नान मज्जन आदि से कुमार का सत्कार कर कहा, 'कुमार हमारा वृतांत सुनो।'

इसी भरत क्षेत्र के वैताढ्य पर्वत के दक्षिण श्रेणि में शिवमंदिर नगर में ज्वलन शिख राजा है। उसकी विद्युत्शिखा नाम की रानी है। उस की हम दोनों पुत्रियाँ हैं। हमारा भाई उन्मत्त नामक है। एकबार हमारे पिता अग्निशिख नामक मित्र के साथ जब बातों में मशगुल थे। उस समय उन्होंने अष्टापद पर्वत की और जाते देव समूह को देखा। राजा भी पुत्री सहित वहाँ जाने के लिए तैयार हुआ। अष्टापद पर गया जिन प्रतिमा की वंदना की। कर्पूर, अगर आदि से पूजा की। तीन प्रदक्षिणा देकर जाते हुए राजा ने अशोक वृक्ष के नीचे चारण मुनि युगल को बैठे देखा। प्रणाम किया। वहाँ बैठे गुरू ने देशना दी। 'असार संसार, शरीर क्षणभंगुर, बादल की उपमा जैसा जीवित, विद्युत रेखा जैसा यौवन, किम्पाक फल जैसे भोग, इसलिए ऐसी स्थिति में हे भव्यात्माओं! मोह के आवरण को छेदो। जिन धर्म में मन को ले जाओ। इस प्रकार चारण श्रमण मुनि की देशना सुनकर सुरादि जैसे आये वैसे गये। तब अग्निशिख ने पूछा, 'इन दो बालिकाओं का पति कौन होगा?' चारण श्रमणोंने कहा ये दोनों कन्याएँ भाई का वध करनेवाले की पत्नी होंगी। उनके वचन सुनकर राजा श्याममुखी हुआ।

एक बार हमारे भाई ने पृथ्वी पर घूमते हुए आपके मामा की पुत्री पुष्पवती कन्या को देखा। उसके रूप से मोहित होकर वह उसका हरण कर आ गया। परंतु उसकी दृष्टि को सहन करने में अक्षम वह विद्या साधने के लिए गया। इसके आगे का वृतांत तुम जानते ही हो। आप

के पास से आकर पुष्पवती ने हम दोनों को भाई के वध का वृतांत कहा। फिर शोक से भरकर हम रोने लगी। मधुर वचनों से पुष्पवती ने हमें सान्त्वना दी। तब हम दोनों को शंकरी विद्याने इस प्रकार कहा, 'तुम्हारे भाई का वध करनेवाला यह पुरूष ब्रह्मदत्त चक्रवर्ती होगा। तुम दोनों मुनियों के वचन को क्यों नहीं याद करती?' उसके इन वचनों को सुनकर हम दोनों को अनुराग हुआ और उसकी बात मानी। परंतु पुष्पवती ने बालभाव से स्नेह की अतिरेक से रक्त पताका को छोडकर शुक्ल पताका बतायी। उसके दर्शन से तुम कहीं अन्यत्र गये। अनेक ग्राम नगर आदि में घूमते हम दोनों के द्वारा तुम कहीं नहीं देखे गये। फिर खिन्न होकर हम यहाँ आयी। अब अचानक सुवर्ण वृष्टि सम तुमारे दर्शन हुए। हे महाभाग! पुष्पवती की बात यादकर हमारा हित करो। इस प्रकार वचन सुनकर कुमार ने सहर्ष माना और उन दोनों से गन्धर्व विवाह किया। एक रात उनके साथ रहकर प्रातः कुमार ने उन दोनों को कहा, 'तुम दोनों पुष्पवती के पास जाओ।, उसके साथ तब तक रहो, जब तक मुझे राज्य लाभ हो।' इस प्रकार सुनकर वे गयी। तब कुमार ने वहाँ धवल गृह न देखा। विचार किया कि यह विद्याधरों की माया है। ऐसा चिन्तन करता रत्नवती की खोज करता वापस आश्रम की ओर चला गया। वहाँ उसने रत्नवती को भी नहीं देखा। और न कोई अन्य पुरूष देखा। किसको पूछुं, ऐसा विचार कर इधर उधर देखा तब वहाँ एक भद्राकृति वाला पुरूष आया। कुमार ने उसे पूछा, 'भो महाभाग! इस प्रकार के रूपवाली एवं वर्णवाली एक स्त्री मैंने कल यहाँ छोडी थी, कल या आज तुमने उसे देखी?' उसने कहा, 'पुत्र! क्या तुम उस रत्नवती के पति हो।' कुमार ने कहा, 'हाँ।' उसने कहा, 'कल उसको मैंने रोती देखी, अपराह्न काल में मैं उसके समीप गया, पूछा 'तुम कौन हो? कहाँ से आई हो? तेरे शोक का कारण क्या? तुझे कहाँ जाना है?' फिर उसके वर्णन करने पर मैंने उसे पहचानी। 'वह मेरी भतीजी है ऐसा कहकर, मैं उसे उसके चाचा के पास ले गया। उसने भी पहचान कर, अपने यहाँ रखी फिर सभी जगह तुझे खोजा। परंतु कहीं नहीं मिला। अब अच्छा हुआ जो तू मिला। इस प्रकार कहकर कुमार को उसके घर ले गया। आदर सत्कार किया। वहाँ महोत्सव पूर्वक कुमार ने रत्नवती से विवाह किया। उसके साथ विषयसुख का अनुभव करते हुए दीर्घ समयतक वहाँ रहा।

एक बार वरधनु की आज वर्ष गाँठ है, ऐसा सोचकर ब्राह्मणों को भोजन करवाया। इस अवसर पर ब्राह्मण के वेष में वरधनु भोजन करने के लिए वहाँ आया और कहने लगा। 'भो! उस भोजन करवानेवाले से कहो कि यदि मुझे भोजन दोगे तो परलोक में रहनेवालों के पेट में भोजन जायगा।' घर के लोगोंने ये वचन कुमार को कहे। कुमार घर से बाहर आया। वरधनु को देखा और पहचान लिया। कुमार ने गाढ आलिंगन कर उसे घर में ले गया, स्नान, मज्जन भोजनादि से सत्कार किया। कुमार के पूछने पर वरधनु ने अपनी कथा कही। रात्रि में निद्रा में

रहे हुए तुम्हारे रहते पीछे से दौडकर एक चोर ने मेरे पग पर प्रहार किया। उसकी वेदना से मैं पृथ्वी पर गिरा, परन्तु कष्ट के भय से मैंने तुमको कुछ भी नहीं कहा। रथ आगे चला मैं तो धीरे धीरे गिरे हुए वृक्ष के बीच में पहुँचा। चलते चलते महाकष्ट से उस ग्राम में गया जहाँ तुम ठहरे थे। उस ग्रामाधिपति ने मेरा सत्कार किया। फिर तुम्हें ढूंढता हुआ तुम्हारी दानशीलता श्रवणकर उत्साह पूर्वक भोजन के समय में आया। तुम मेरे भाग्य से मिले हो। उन दोनों के दिन वहाँ हर्षपूर्वक जाते हैं। एक बार उन दोनों ने परस्पर विचार किया हम दोनों को पुरूषार्थ किये बिना कितने समय तक यहाँ रहना चाहिए? इस प्रकार विचार करते करते भी कुछ समय चला गया।

एकबार माघ महिना आया। मदन महोत्सव के कारण सभी लोक नगर के बाहर क्रीडा के लिए आये। वरधनु और कुमार भी नगर के बाहर आये। लोग क्रीडा रस में निमग्न थे, उस समय राजा का महावत को गिराया हुआ निरंकुश हाथी एकाएक वहाँ आया, कोलाहल उत्पन्न हुआ। क्रीडा रस नष्ट हो गया। लोग इधर-उधर भागे। एक युवति भागती हुई उस हाथी की दृष्टि में पडी, वह शरण की याचना करती इधर उधर देखती है। उसका परिवार पुकार करता है। भयभ्रान्त उस कुमारी के आगे आकर कुमार ने उस हाथी को ललकारा, और उसको छुडवायी। वह हाथी भी उसको छोडकर, रोष वश फैलायी हुई आंखो वाला, प्रसारित सूंण्ड वाला कुमार के सामने दौडा। कुमार ने भी उत्तरीय वस्त्र गज के सामने फेंका। गज ने उस वस्त्र को सूंण्ड से पकडकर आकाश में फेंका। वस्त्र भूमि पर गिरा। उसको लेने के लिए जब हाथी पुनः भूमि की ओर झूकता है, तब कूदकर कुमार उसके स्कंध पर चढा, और अपने हाथ से उसके कुंभ स्थल पर ताडना की। मधुरवचन से संतुष्ट किया। हाथी को वश में करके वह हस्तिशाला में ले गया। साधुवाद फैला, कुमार की जयकार हुई। बंदीजनो के द्वारा बिरुदावली गायी गयी। कुमार ने उस हाथी को आलान स्तंभ के पास ले जाकर बांधा। राजा ने ऐसे अलौकिक पुरुष को देखकर परम विस्मय से मंत्री को पूछा, 'यह कौन है?' मंत्री उसको जानता था, इसलिए कहा, 'यह ब्रह्मराजा का पुत्र ब्रह्मदत्त कुमार है।' तुष्ट राजा कुमार को अपने भुवन में ले गया। स्नान, मज्जन भोजन से सत्कार किया। कुमार को अष्ट पुत्रियाँ दी। महोत्सव पूर्वक उनका विवाह कुमार से किया। वहाँ अनेक दिन वरधनु, कुमार के साथ सुख से रहा।

एक बार एक स्त्री ने कुमार को आकर कहा, 'कुमार! तुमको कुछ कहना है।' कुमार ने कहा, 'कहो।' उसने कहा, 'जिसकी तुमने हाथी से रक्षा की, वह तेरी वीरता से मोहित तुझको ही याद करती है उस समय तो परिवारवाले उसे किसी भी प्रकार ले गये। वहाँ भी वह स्नान मज्जन भोजनादि समय पर नहिं करती। मैंने उसको कहा, तू असमय में ऐसी कैसे हुई? तू तो

मुझे भी प्रत्युत्तर नहीं दे रही है? हँस कर उसने कहा, हे माता! आपको क्या अकथनीय है? परंतु मैं लज्जा से कुछ कह नहीं सकती। मैंने आग्रह से पूछा तब उसने कहा, 'जिसने मेरी हस्ति से रक्षा की, उसके साथ यदि मेरा पाणिग्रहण नहीं हुआ तो मेरी अवश्य मृत्यु होगी।' इस प्रकार कहकर उसने मुझे तुम्हारे पास भेजा है। उस कन्या को स्वीकार करो। कुमार ने उसके वचन का स्वीकार किया। शुभ दिन में उसकी पुत्री से विवाह किया। वरधनु ने सुबुद्धि नामक प्रधान पुत्री नन्दना से विवाह किया। इस प्रकार दोनों को संसारिक सुखों का अनुभव करते कई दिन बीत गये। उन दोनों की सभी जगह प्रसिद्धि हुई।

एक बार वे दोनों वाराणसी गये। ब्रह्मदत्त को बाहर रखकर वरधनु नगर स्वामी कंटक के घर गया। वह हर्षित हुआ। सैनिको के साथ वाहन सहित सम्मुख गया, और कुमार को हाथी पर बिठाकर महोत्सव पूर्वक नगर प्रवेश करवाया। वह अपने भवन में उसे ले गया। स्नान मज्जन भोजनादि से सत्कार कर स्वपुत्री कनकवती उसे अनेक गज, अश्व, रथ, भंडार सहित दी। विवाह संपन्न हुआ। उसके साथ सांसारिक सुखोपभोग में काल व्यतीत होता है। फिर दूत भेजकर पुष्पचूल धनु मंत्री कणेरदत्त आदि अनेक राजा और अनेक मंत्रियों को सेना सहित बुलाये। उन सबने कुमार का राज्याभिषेक किया। वरधनु को सेनापति बनाया। ब्रह्मदत्त सर्व सैन्य सहित दीर्घराजा परआक्रमण करने चला। बिना रूके प्रयाण करते कांपिल्यपुर आये। दीर्घनृपने भी कटकादि राजाओं को दूत भेजा। उन्होंने दूत की भर्त्सना की। दूत अपने स्वामी के पास गया। ब्रह्मदत्त के सैन्य ने कांपिल्यपुर को चारों ओर से घेर लिया। तब दीर्घनृप ने सोचा कितने समय तक हम छुपके रह सकेंगे? साहस कर नगर से बाहर, सेना से परिवृत्त होकर, दीर्घराजा सम्मुख आया। ब्रह्मदत्त और दीर्घराजा का घोर संग्राम हुआ। ब्रह्मदत्त के सैन्य के द्वारा दीर्घराजा का सैन्य पराजित हुआ। दीर्घ राजा स्वयं उठा। ब्रह्मदत्त भी उसको आते देखकर, प्रदीप्त कोपानल वाला, उसके सामने चला। उन दोनों का युद्ध हुआ। अनेक आयुधों को फेंकते हुए उन दोनों का संग्राम चला। ब्रह्मदत्त ने चक्र छोडा। चक्र ने दीर्घ राजा का मस्तक छेदा। यह चक्रवर्ती ऐसा जोरों से शब्द हुआ। गन्धर्व देवों ने पुष्पवृष्टि कर कहा 'यह बारहवाँ चक्रवर्ती हुआ।' फिर जनता के द्वारा स्तुति कराता, नारी वृन्द से सम्मानित कुमार ने महलों में प्रवेश किया। सभी सामन्तों के द्वारा ब्रह्मदत्त का चक्रवर्ती के रूप में अभिषेक हुआ। ब्रह्मदत्त की माता चुलनी जंगल में भागी। साध्वीजी मिले उनके पास प्रायश्चित एवं चारित्र लेकर आत्म साधना की। चक्रवर्ती पने का पालन करते हुए ब्रह्मदत्त समय व्यतीत करता है।

एक बार चक्रवर्ती के सामने नट ने नाटक प्रारंभ किया। उसकी दासीने कुसुम का गुच्छा उसके हाथ में रखा। उसको देखते हुए गीत गान श्रवण करते हुए उसे इस प्रकार विचार

उत्पन्न हुआ। 'इस प्रकार की नाटक विधि मैंने कहीं देखी है। कहीं ऐसा पुष्प गुच्छा भी सूंघा है।' इस प्रकार चिन्तन करते हुए उसे जाति स्मरण ज्ञान उत्पन्न हुआ। पूर्व भव देखा। सौधर्म देव लोक में पभगुप्त विमान में अनुभव किया हुआ नाट्य दर्शन, दिव्य पुष्प की सुगंध आदि उसकी स्मृति पट पर आये। देवसुख स्मरण से मूर्च्छा आयी चक्रवर्ती भूमि पर गिरा। लोगोंने वायु आदि से उसे सचेत किया। फिर चक्रवर्ती ने पूर्व भव के भाई की शुद्धि के लिए श्लोकार्ध रचा,

''आस्व, दासौ, मृगौ, हंसौ, मातंगवमरौ, तथा।
गोवाल, दास, हरण, हंस, मातंग, देव और!''

ऐसा अर्धश्लोक करके वरधनु सेनापति को कहा, 'यह श्लोकार्ध सर्वत्र प्रसारित करो।' इसका पश्चिमार्ध जो पूरा करेगा उसको राजा राज्य का आधा भाग देगा। इस श्लोक को सभी लोगों ने सीखा। वे सब जगह जोर जोर से श्लोकार्ध बोलते हैं। इस अवसर पर पूर्वभव के भाई का जीव पुरिमताल नगर में श्रेष्ठि पुत्र होकर, जाति स्मरण प्राप्त कर, व्रत ग्रहणकर, उस नगर में मनोरम नामक उद्यान में आया। वहाँ प्रासूक भूमिपर पात्र उपकरण रखकर, धर्म ध्यान में रहकर, कायोत्सर्ग में लीन हुआ। इस बीच में अरहट वाले के द्वारा पढा जाता श्लोकार्ध मुनि ने सुना, ज्ञानोपयोग से अपने भाई का स्वरूप जानकर मुनि ने दोनों चरण कहे,

''एषा नो षष्टिका जातिरन्योरन्याभ्यां वियुक्तये।''

यह हमारा छठा भव एक दूसरे के वियोग वाला हुआ। उस अरहट वालेने उस श्लोकार्ध को सीखा और प्रफुल्ल होकर राज कुल में गया। चक्री के सामने सम्पूर्ण श्लोक पढा। पूर्वभव के भाई के स्नेह के अतिरेक से चक्री को मूर्च्छा आयी। सभा क्षुभित हुयी रोषवश हुए सेवक वर्गने आरहटिक को मारना प्रारंभ किया। मारते हुए उसने कहा, 'ये दो पद मैंने नहीं पूरे हैं, किन्तु वन में रहे हुए मुनि ने पूर्ण किये हैं।' ऐसा कहने से सैनिकों ने उसे छोडा। मूर्च्छा जाने पर चक्री ने पूर्व भव के भाई मुनि को आये सुनकर, उसकी भक्ति के स्नेह से आकर्षित होकर, ब्रह्मदत्त चक्रवर्ती सपरिवार वन में गया। उद्यान में उस मुनि को देखकर वंदन करके बैठा। मुनि ने धर्म देशना प्रारंभ की। भव की असारता बतायी, कर्म बन्ध के हेतु दर्शाये, मोक्ष मार्ग की प्रशंसा की, शिव सुख का स्वरूप विस्तार से बताया। देशना को सुनकर पर्षदा संविग्न बनी? ब्रह्मदत्त स्वभाव से इस प्रकार बोला, 'भगवन्! जैसे आपसे मिलकर हम खुश हुए वैसे राज्य स्वीकार करके हमें आल्हादित करो। फिर हम दोनों मिलकर तप करेंगे। यही तप का फल है।' मुनि ने कहा, 'उपकार करने वाले ऐसे तुम्हारे वचन उचित है। परन्तु यह मनुष्यता दुर्लभ है, आयु क्षीण हो रही है। लक्ष्मी चंचल है, धर्म बुद्धि

अनवस्थित है, विषयों के विपाक कटु है, विषयासक्त जीवों का निश्चय से नरक में पात है, दुर्लभ है, मोक्ष का बीज रूप विरतिरत्न, उसका त्याग नरक पात का कारण है। थोडे दिन रहने वाला राज्य का आश्रय पंडितों के चित्त को आनंदित नहीं करता।

'दुराग्रह को छोडकर पूर्वभव के अनुभूत दुःख को यादकर, जिनवचनामृत का पानकर, इस सन्मार्ग का अनुसरण कर मनुष्य जन्म को सफल कर।' उस चक्री ने कहा, 'भगवन्! अदृष्ट सुख की वाञ्छा से मिले हुए सुख का त्याग अज्ञानता है, इससे ऐसा मत कहो मेरा कहा हुआ करो।' मुनि ने कहा, 'संसार के सुख भोग परभव में अधिक दुःख के कारण होते हैं, अतः इसका त्याग करना चाहिए।' इस प्रकार मुनि के कहने पर भी जब चक्रवर्ती प्रतिबोधित नहीं हुआ, तब मुनि ने विचार किया, ओह! जाना! पूर्वभव में सनत्कुमार चक्रवर्ती की स्त्रीरत्न के केश के संपर्क से उत्पन्न अभिलाषा के अतिरेक से सम्भूत के भव में, मेरे द्वारा वारना करते हुए भी, चक्रवर्तीपद प्राप्ति का नियाणा किया है। उसका ऐसा ही फल है। इस कारण से यह दुष्ट अध्यवसायवान जिनवचन से असाध्य है। इस कारण यह उपेक्षणीय है। मुनि ने वहाँ से विहार किया। क्रम से मोक्ष गया। चक्री ने भी भौतिक चरम सुख का अनुभव करते हुए कितना ही काल व्यतीत किया। एक बार पूर्व के परिचित एक ब्राह्मण ने आकर कहा, 'भो राजाधिराज! मुझे आपका भोजन करने की इच्छा उत्पन्न हुई है।' चक्री ने कहा, 'भो द्विज! मेरा भोजन करने को तुम असमर्थ हो। क्योंकि मुझको छोडकर मेरा भोजन दूसरों को नहीं पचता।' तब द्विज ने कहा, 'धिक्कार है तेरी राज्य लक्ष्मी के महात्म्य को, जो अन्न मात्र देने के लिए विचार करता है।' तब चक्रवर्ती ने उसको भोजन देना स्वीकार किया। अपने घर पर निमंत्रित कर अपने भोजन से उसे भोजन करवाया। उसने अपनी पत्नी, पुत्र, पुत्रवधू, पुत्री, पौत्रादि के साथ भोजन किया और अपने घर गया। रात में अत्यन्त उन्माद उत्पन्न हुआ। माता और पुत्रवधू बहन आदि पर महा कामवेदना से नष्ट हो गई है जिसकी मति, ऐसा वह द्विज अकार्य में प्रवृत्त हुआ। दूसरे दिन काम की वासना उपशान्त होने पर, परिजन को अपना मुँह दिखाने में असमर्थ नगर से वह बाहर निकला, इस प्रकार विचारने लगा, 'बिना कारण वैरी बने इस चक्री ने मेरी विडंबना की है, ऐसा अमर्ष धारण करते उस वन में घूमते एक अजापालक को देखा। कंकरों से अश्वत्थ के पत्रों में छेद करते देख यह लक्ष्यवेधी है ऐसा ब्राह्मण ने सोचा फिर ब्राह्मण ने विचारा मेरे विचारणीय कार्य को करने वाला यह योग्य है। उस ब्राह्मण ने उसका दान सन्मान से सत्कार किया, और अपना गुढ अभिप्राय उसको बताया। उसने स्वीकार किया।

एक बार घर से निकले हुए चक्रवर्ती ब्रह्मदत्त की दोनों आंखे एक साथ उस अजापालक ने छूपकर अमोघवेधिता से कंकर मारकर फोड दी। उस वृतांत को पूरा जानकर,

कुपित चक्री ने उस द्विज को पुत्र, बान्धव सहित मरवा दिया। चक्री ने दूसरे ब्राह्मणों को भी मरवाया। अशान्त क्रोधवाले चक्रीने मंत्री को इस प्रकार कहा, 'ब्राह्मणों की आंखे निकालकर थाल भरकर मेरे सामने रखो, जिससे मैं मेरे हाथ से उन आंखो को मसलकर, वैर के प्रतिकार रुपी सुख का अनुभव करूँ। मंत्रीने चक्री के विकृष्ट कर्मो का उदय जानकर फल की गुठलियाँ थाल में भरकर अर्पण की। चक्री रौद्र ध्यान के वशीभूत, फल की गुठलियों को आंखे मानकर, उनका मर्दन कर सुख का अनुभव करता है। वह प्रतिदिन ऐसा करते हुए सात सौ सोलह वर्ष का आयुष्य पूर्ण कर, बढते रौद्रध्यान से सप्तम नरक में तैंतीस सागरोपम आयुष्यवाला नारकी हुआ।

इति द्वादशम चक्री चरित्र संपूर्ण।

- *भक्त की भक्ति में जरूरत का न रहना जितना आवश्यक है उससे कहीं अधिक मानसिक शांतता का होना आवश्यक है।*
- *संसार की असारता को ज्ञान सहित समझकर त्यागना ज्ञानगर्भित वैराग्य है। शास्त्रों में ज्ञान गर्भित वैराग्य का ही महत्त्व दर्शाया है। चाहे वे शास्त्र जैनों के हों या अजैनों के।*
- *दुःख गर्भित एवं मोह गर्भित वैराग्य में आत्मा को भोग्य पदार्थों पर आसक्ति आ सकती है। ज्ञान गर्भित वैराग्य में आसक्ति का कोई स्थान ही नहीं है।*
- *श्रमण (साधु) के जीवन में से स्त्री का विस्मरण हो जाना यह श्रेयस्कर है।*
  श्रमणी (साध्वी) के जीवन में से पुरुषों का विस्मरण हो जाना श्रेयस्कर है।
- *उपकार क्षमा, अपकार क्षमा, विपाक क्षमा, वचन क्षमा, धर्म क्षमा इन पाँच प्रकार की क्षमा में से वचन क्षमा एवं धर्म क्षमा को स्वीकृत करना और चिंतन करना कि मेरा स्वभाव ही क्षमा का है, क्रोधित बनने का स्वभाव मेरा है ही नहीं।*

- जयानंद

बुद्धि का उपयोग

परीक्षा :

राजगृही नगरी में प्रसेनजित राजा अपने सौ पुत्रों में राज्याधिकारी की परीक्षा लेना चाहता है। उनसे वह कहता है कि, 'तुम उस कमरे में जाओ। और तुम्हें वहाँ मिठाई की टोकरियोंको खोले बिना और पानी के घड़ों का ढक्कन खोले बिना मिठाई खाना और पानी पीना है।' सभी कमरे में गये। परंतु विचार करने लगे कि 'कैसे खाये? कैसे पीये?' श्रेणिक जो सबसे छोटा था, उसने कहा, 'इसमें क्या विचार करते हो? टोकरे के नीचे अपना उतरीय बिछाकर टोकरे को खूब हिलाओ। मिठाई बाहर आ जायगी फिर खा लेंगे। पानी के घड़े के ऊपर उत्तरीय बांधकर पानी से भीगने पर उसको नीचोड़कर पानी पी लेंगे।'

राजाने मन में सोचा कि राज्याधिकारी तो श्रेणिक ही है।

दूसरी बार राजाने सभी कुमारों को भोजन के लिये बिठाकर कुत्तों को छोड दिया। सभी कुमार उठकर चले गये श्रेणिक ने उन कुत्तों के सामने कुमारों के भोजन के थाल देते हुए निर्भयता से भोजन किया। राजाने श्रेणिक की बुद्धि की प्रशंसा मनही मन की।

तीसरी बार राजाने शस्त्र शाला में से अपने मनपसंद हथियार लाने को कहा। दूसरे सभी कुमार शस्त्रादि लेकर बाहर आये, और श्रेणिक विजय-डंका लेकर बाहर आया।

राजाने निर्णय कर लिया परन्तु श्रेणिक की प्रशंसा न की और तीनों बार क्रमशः कह दिया कि मिष्टान्न का चूरा बनाकर खाया, कुत्तों के साथ बैठकर खाया और लोहा उठा लाया। श्रेणिक नाराज होकर वहाँ से चल दिया।

नंदा से विवाह :

घूमते-घूमते श्रेणिक बेनातट नगर में गया। वहाँ धनावह श्रेष्ठि के दुकान के आगे बैठा। पुण्यवानों के कदमों का प्रभाव सभी जगह पडता है। उस दिन सेठ की दुकान पर ग्राहक अधिक आने लगे। सेठने सोचा 'कारण क्या?' बाहर नजर गयी। श्रेणिक को देखा। निर्णय किया कि इस पुण्यशाली पुरूष के कारण ही ग्राहक इतने आये हैं। श्रेणिक भी उठा और सेठ के काम में सहायक हुआ। मध्याह्न के समय सेठने पूछा, 'आप कौन हैं? कहाँ से पधारे हैं?' श्रेणिक ने कहा, 'मैं राजगृही का रहनेवाला हूँ, मेरा नाम गोपाल है।' सेठने अपने यहाँ अतिथि बनने के लिए आग्रह किया और श्रेणिक वहाँ रह गया। थोडे ही दिनों में शेठ को वह प्रिय हो गया। सेठ को कोई पुत्र था नहीं। एक नंदा नामक कन्याथी। जो यौवनावस्थामें आ गयी थी। उसने पत्नी के साथ विचार विनिमय कर नंदा की शादि श्रेणिक से करदी। एक दिन श्रेणिक सेठ का पुराना घर देख रहा था, तब एक कमरे में धूल का ढेर रखा देखा। श्रेणिक ने उस कमरे को ताला लगा दिया। सेठ ने पूछा, तब उसने कहा, 'कभी कारण बताऊँगा।'

तेजंतूरी :

कुछ दिनों के बाद एक सेठ उस नगर में आया। राजा के पास गया और कहा, मैं तेजंतूरी लेने आया हूँ। आपके नगर में किसीके पास हो तो मैं मेरा सारा माल दे दूँगा। मैं अनेक नगरों मे घूमा हूँ, परंतु मुझे अभी तक तेजंतूरी नहीं मिली।' राजाने नगर में पटह बजवाया। उस पटह को श्रेणिक ने ग्रहण किया। धनावह शेठ तो विचार में पड गये। मेरी आबारूं को यह मिट्टीमें मिला देगा। कहा भी, 'जमाईराज! तेजंतूरी कहाँ से दोगे?' गोपाल ने कहा, 'पिताजी! आप चिन्ता न करें। अपने घर में तेजंतूरी का भंडार है।' अमात्यादि के साथ व्यापारी वहाँ आया। नगर के लोग भी कुतूहलवृत्ति से साथ आये। वे सभी इसी विचार में थे कि इसका जमाई इसकी आबरू को मिट्टीमें मिला देगा।

गोपाल व्यापारी को उस पुराने मकान में ले गया। उस धूल भरे कमरे को खोला। व्यापारी की आंखें चकाचौंध हो गयी। विस्मित होकर बोला, 'इतनी तेजंतूरी!' गोपालने कहा, 'शेठजी! आपके माल की कींमत में जितनी तेजंतूरी आती हो उतनी आप ले लो।' व्यापारी ने कहा, 'मैं वर्षों से घूम रहा हूँ। आज मेरी खोज पूरी हुई है। मैं आपको लाख-लाख धन्यवाद देता हूँ।' इतना कहकर उसने नीतिपूर्वक जितनी तेजंतूरी लेनी थी, उतनी ले ली। और सब माल धनावह को दे दिया। राजा ने भी धनावह का सम्मान कर नगर सेठ की पदवी से विभूषित किया। नंदा तो अपने ऐसे बुद्धिशाली, धीरगंभीर पति को पाकर अत्यंत खुश थी।

राज्याभिषेक :

अल्पावधि में नंदा गर्भवती हुई। इधर प्रसेनजित राजा को अपनी अंतिम अवस्था दिखाई दी। श्रेणिक को ढूंढने हेतु चारों ओर आदमी भेजे हुए थे, पर अभी तक कोई पता नहीं चला था। घूमता घूमता एक आदमी बेनातट नगरमें आया। उसने नगर में गोपाल की प्रशंसा सुनी और वह धनावह सेठ की दुकान पर आया। श्रेणिक ने ईशारे से चुप रहने को कहा। फिर एकान्त में पिताजी की अंतिम अवस्था सुनकर उसे यह कहकर भेजा कि मैं शीघ्र ही आ रहा हूँ।

नंदा को एक श्लोक देकर कहा कि, 'इसमें मेरी पहचान है। मैं मेरे नगर में जाकर तुझे शीघ्र बुलाऊंगा।'

श्रेणिक को देखकर राजा खुश हुआ। उसका राज्याभिषेक किया। श्रेणिकने शाम, दाम, भेद और दंड द्वारा दूसरे भाइयों का पता साफ कर दिया। राज्य की व्यवस्था में श्रेणिक नंदा को भूल गया।

अभय का जन्म :

इधर नंदा को पुत्र उत्पन्न हुआ। नाम 'अभय' दिया। क्रमशः समय बीता। आठ वर्ष का अभय अध्ययनरत था। तीव्र बुद्धि होने से अध्ययन में प्रथम रहता था। एक बार एक बच्चे ने अभय को उलहना दिया कि, 'तेरा बाप कहाँ है? ये तो तेरी माता के बाप हैं, तेरे नहीं।' इस पर अभय ने माँ से पूछा, 'ये तो तेरे पिता हैं। मेरे पिता कहाँ है?' तब माँने श्लोक दिया उसने पढ़ा और कहा, 'माँ! राजगृही चलो, वहाँ मेरे पिता के पास रहेंगे। यहाँ नहीं।' दोनों राजगृही आये। माँ को पांथशाला के एक कमरे में ठहराकर स्वयं राजमार्ग पर चलने लगा।

मंत्री की परीक्षा :

इधर राजाने ४९९ मंत्री तो बना दिये थे। एक अत्यंत बुद्धिशाली प्रधानमंत्री की आवश्यकता थी। अतः एक खड्डा खुदवाकर उसमें एक रत्न जडित स्वर्ण मुद्रिका डालकर पटह बजवाया था कि बाहर खडे खडे यह मुद्रिका अपने बुद्धिबल से जो निकालेगा उसे प्रधानमंत्री बनाया जायगा। अभय ने यह पटह सुना और खड्डे पर गया। राजसेवकों से गोबर मंगवाकर उस अंगूठी पर डाला। फिर थोडा घास मंगवाकर उसे सुलगाकर गोबर पर फेंका। गोबर सुख गया। फिर जल से वह खड्डा भरवाया। सुखे कडे परसे अभय ने मुद्रिका ले ली। राजकर्मचारी उसे राजा के पास ले गये। राजा के हृदयमें उसे देखकर स्नेह उमड पडा। राजा ने पूछा, 'काहाँ से आये हो?' उसने कहा, 'बेनातट नगर से।' राजा को नंदा की बात याद आ गयी। राजाने पूछा, 'वहाँ धनावह शेठ को पहचानते हो?' 'हाँ!' 'उनकी पुत्री नंदा को?' 'हाँ।' उसको कोई संतान है क्या?' 'हाँ, एक पुत्र है। वे यहाँ आये हैं।' राजाने पूछा, 'कहाँ हैं?' अभय बोला, 'पांथशाला में। उसका पुत्र भी साथ में है, और मेरे जैसा ही है।'

नंदा का मिलना :

राजा ने उसी समय आदेश दिया, 'मगध की महारानी को लेने जाना है, सारी तैयारी कर लो।' थोडे ही समय में राजा की सवारी अभय दर्शित मार्ग से पांथशाला की ओर चली। नगर भर में समाचार फैल गये। लोग महारानी के दर्शन के लिए व्याकुल थे। पांथशाला की ओर राजा को आते देख पांथशाला के कर्मचारी विचार में पड़ गये। राजा के स्वागत की तैयारी की। इधर नंदा चिन्ता में थी। 'अभय गये कितनी देर हो गयी। अभी तक नहीं आया?' बाजों की आवाज ने उसे भी आकर्षित किया। वह कमरे के बाहर आयी। उसे समाचार मिले कि राजाजी आ रहे हैं। वह भी कमरे के द्वार पर राजा के दर्शन के लिए खड़ी रही।

अभय राजा को मार्ग बताता हुआ आगे चल रहा था। लोग विस्मित थे। महारानी और इस पांथशाला में। नंदा ने अभय के साथ गोपाल को देखा। लज्जा से मुख नीचाकर लिया। अभय ने कहा, 'राजन्, यह नंदा।' नंदा ने पति का चरणस्पर्श किया। राजाने पूछा, 'अभय

कहाँ है?' नंदा ने विस्मित होकर कहा, 'आपके साथ तो है।' राजाने हंसकर अभय को गले लगाया। नंदा को राजरानी के योग्य वस्त्रादि से अलंकृत करवाकर, हाथी पर बिठाकर, महोत्सव पूर्वक नगर प्रवेश करवाया।

दूसरे दिन श्रेणिक ने अभय को प्रधानमंत्री पद पर प्रतिष्ठित किया।

चेलणा से विवाह :

इधर चेटक राजा की सुज्येष्ठा पुत्री की चाहत श्रेणिक ने दूत द्वारा की। चेडा राजाने यह कह कर मना किया कि, 'मेरे कुल से तुम्हारा कुल नीचा है। अतः मैं कन्या नहीं दूंगा।' अभय ने एक युक्ति की। वह विशाला नगरी में इत्र का व्यापारी बनकर राजमहल के पास दुकान लेकर रहने लगा। सस्ते में इत्र बेचने लगा। दासियाँ वहाँ आने लगीं। उनके आने के समय श्रेणिक के चित्र की भक्ति करने अभय बैठता था। एक दासीने पूछा, 'ये कौन हैं?' अभय ने कहा, 'ये मेरे स्वामी हैं। राजगृही के राजा हैं।' दासी सुज्येष्ठा की थी, उसने सुज्येष्ठा से श्रेणिक के रूप की बात की। सुज्येष्ठा ने चित्र मंगवाया। श्रेणिक पर वह मोहित हो गयी। अभय को सूचना मिल गयी। अभय ने सुरंग खुदवाकर, सुज्येष्ठा का अपहरण करना तय किया। सुज्येष्ठा ने अपहरण के दिन चेलणा जो अपनी छोटी बहन थी, उसे सारी बात की। उसने भी साथ आने का विचार कर दिया। संकेतानुसार दोनों बहनें आयी। इतने में सुज्येष्ठा को अपने आभूषण की पेटी याद आयी, और चेलणा से यह कहा कि, मैं अभी आभूषण लेकर आती हूँ, वह गयी। अंगरक्षकों ने कहा, 'शत्रु के घर में अधिक रहना ठीक नहीं।' श्रेणिक ने भी चेलणा को ही सुज्येष्ठा समझ ली। उसे रथ में बिठायी। रथ चलने लगा। सुज्येष्ठा आयी, तब तक तो रथ बहुत दूर चला गया था। सुज्येष्ठा ने ईर्ष्या के वश पुकार की, सैनिक पीछे गये। अंगरक्षकों के साथ युद्ध किया। सुलसा के बत्तीस पुत्र अंगरक्षक के रूप में साथ थे। वे रणमें मृत्यु को प्राप्त हुए। श्रेणिक सकुशल पहुँच गया।

दोहदपूर्ति :

एकबार चेलणा को पति का माँस खाने का दोहद उत्पन्न हुआ। अभय ने श्रेणिक के हृदय पर कृत्रिम माँस बांधकर दोहद पूर्ण किया। फिर कोणिक का जन्म हुआ।

भेदनीति :

एक बार चंडप्रद्योत अपने चौदह राजाओं के साथ युद्ध करने आये, तब अभय ने उनके ठहरने के स्थान पर राजगृही में प्रचलित मुद्रा भूमि में गाड़कर, चंडप्रद्योत को (मौसाजी के संबंध से) पत्र लिखकर सूचना दी कि आपके मित्र राजा सभी फूट गये हैं। आप पकडे जाओगे। चंडप्रद्योत ने भूमि से धन निकलवाकर देखा। वह यह समझकर प्रातः अतिशीघ्र वापिस लौटा कि ये मेरे साथीदार चौदह राजा विश्वासघाति हो गये हैं। यहाँ रहूँगा तो मारा

जाऊँगा। चंडप्रद्योत को भागते देख अन्य राजा आश्चर्य में आकर वे भी भागे और श्रेणिक के सैनिकों ने उनके हाथी अश्व आदि छूटी हुई सामग्री को अपने आधिन कर ली। नगरीमें जाकर साथी राजाओं ने भागकर आने का कारण पूछा। राजा ने कहा तुम सबने विश्वासघात किया और अभय के पत्र की बात और भूमि में गाड़े हुए धन की बात की। तब राजाओं ने कहा, 'यह अभय की चाल थी। और आप उस चाल में फंस गये। (तब चंडप्रद्योतने सोचा अब तो अभय को किसी भी प्रकार पकडवाकर यहाँ ले आऊँ तब मेरा नाम चंडप्रद्योत)

धर्मछल :

दूसरे दिन सभा में उसने कहा कि, 'है कोई ऐसा व्यक्ति जो अभयकुमार को पकडकर ले आये।' तब सभी मौन हो गये। यह पटह नगर में भी घूमा। तब एक वेश्या ने धर्मछल से उसे ठगकर लाने का निर्णय कर राजसभा में राजा से कहा, 'मैं अभय को ले आऊँगी।' फिर उसने किसी साध्वी के पास श्रावक की करणी समझ ली।

वह राजगृही में एक श्राविका बनकर आयी। एक मकान किराये से लेकर प्रतिदिन जिनमंदिरों में भक्ति करने लगी। एक दिन अभय के मंदिर में भक्ति करने गयी। अभय जब मंदिर में आया तब उसकी प्रभु भक्ति देखकर प्रसन्न हो गया। उसने उसे भोजन के लिए निमंत्रण दिया तब उसने कहा, 'मुझे आज तो उपवास है।' फिर अभय ने पारणे के लिए अत्याग्रह किया। उसने स्वीकारा। पारणे के समय पर भी त्यागवृति अधिक बतायी। अभय अधिक प्रसन्न हुआ। दो दिन बाद श्राविका ने अभय को भोजन के लिए आमंत्रण दिया। धर्म जनित विश्वास से अभय भोजन के समय पर गया। और उस मायावीनिने दही के साथ चंद्रहास मदिरा पिला दी। अभय बेहोश हो गया। उसने विद्युत्वेगी अश्ववाले रथ में अभय को डालकर रथ चलाया। थोडी-थोडी दूरी पर नये-नये रथ तैयार रखे थे। इस प्रकार अभय को लाकर चंडप्रद्योत के सामने रखा। नशा उतरने पर उसने अपने आपको अपरिचित स्थान पर देखकर विस्मित हुआ। चंडप्रद्योत ने कहा, 'अभय! कहाँ गया तेरा बुद्धिनिधानपना? तुझे एक स्त्री पकड़कर ले आयी।' अभय को धर्मछल का ख्याल आ गया। उसने कहा, 'राजन्! इसमें तो मेरी प्रशंसा और आपकी निन्दा है। धर्मछल करना यह राजनीति नहीं है। हाँ इस बहाने मुझे मेरी मौसी और मौसाजी के दर्शन हो गये।' अब अभय को राजा अपने पास रखता है और अभय भी राजा को प्रसन्न रखता है।

अभय की बुद्धि :

राजा चंडप्रद्योत के पास चार पदार्थ अमूल्य हैं। (१) लोहजंघ नामक दूत (२) अनलगिरि वेगवान हस्ति (३) अग्निभिरू नामक रथ (४) शिवादेवी पटरानी।

लोहजंघ दूत एक दिन में सो योजन जाता है। मार्ग में उसकी भोजन की व्यवस्था

मार्गस्थ लोगों को करनी पडती थी। मार्गस्थ लोगोंने उस दुःख से मुक्त होने के लिए उसको मारने की योजना बना ली। और मोदक में ऐसा विष मिश्रीत किया कि मोदक खाने के बाद पानी पीये तब अंदर द्रष्टि विष सर्प उत्पन्न हो जाय और व्यक्ति मर जांय। लोहजंघ को मार्गस्थ लोगों ने मोदक दिये। जब वह खाने बैठा तो अपशुकन हो गया। वह आगे बढ़ा। दूसरी बार, तीसरी बार भी अपशुकन ही हुए। तब उसने मोदक खाने का विचार ही छोड दिया। कार्य कर वापिस आने पर उसे क्षुधा से पीडित देखकर राजाने पूछा। तब उसने अपशुकन की बात की। राजा ने मोदक देखे। अपने मंत्रियों को बताये। सबने कहा इसमें विष की कोई संभावना नहीं है। फिर अपशुकन की बात कैसे हुई! राजाने अभय को पूछा। अभय ने मोदक देखकर कहा, 'इसमें दृष्टि विष सर्प है।' राजा चंडप्रद्योत ने कहा, 'कैसे?' तब अभयने जंगल में एक दीवार बनवायी और उस दिवार के उस ओर मोदक तोडकर रखे और दीवार के उपर से उस पर पानी छिडकवाकर दीवार के छिद्रों में से सभी देखने लगे। थोडी देर में ही पानी के संयोग से दृष्टि विष सर्प उत्पन्न हुआ और जिस वृक्ष पर उसकी नजर पड़ी वहाँ आग लग गयी। थोडी देर में चार-पांच वृक्षों पर उसकी नजर पडी वे सब जल उठे और उसी आग में वह सर्प भी भस्म हो गया। राजा ने उसकी बुद्धि से प्रसन्न होकर कहा, 'राजगृही जाने के अलावा कोई वरदान मांग ले।' तब अभय ने कहा, 'इसे धरोहर रूप में आपके पास रखें।'

राजा को वासवदत्ता नामकी पुत्री थी। उसे संगीत का शिक्षण लेना था। संगीत सम्राट उस समय शतानीक पुत्र उदयन था। वह युवा था और गज संग्रह का शौकीन था। उसे लाने के लिए यंत्र युक्त हाथी के अंदर अपने सैनिकों को भेंजकर जब उदयन उसे असली हाथी समझकर पकडने आया तब उसे अकेला देख यंत्र हाथी मेंसे सैनिकोंने बाहर आकर उसे पकडकर हाथी के अंदर ले लिया और चंडप्रद्योत के सामने खडा किया। राजाने 'अपनी पुत्री एक आंख से हीन है, उसे संगीत कला सिखाने के लिए तुमको बुलाया है' ऐसा कहा। और अपनी पुत्री से कहा 'संगीत के लिए शिक्षक लाया है पर वह कुष्टी है अतः तुम दोनों के बीचमें जवनिका (पडदा) रखना आवश्यक है।' अब संगीत का शिक्षण प्रारंभ हुआ। एक दिन वासवदत्ता को कोई बात तीन चार बार बताने पर भी समझ में न आयी तब उदयन ने उसे काणाक्षी के नाम से संबोधित कर उपालंभ दिया। तब उसने कहा कर्मोदय से आप कुष्टी बनें अब असत्य दोषारोपण कर आगे क्या बनना चाहते हो। तब राजा की माया खुल गयी। और पडदा दूर कर के एक दूसरे से दोनों मिले। और दोनों में प्रेम हो गया। अब वे दोनों अध्ययन में रूचि कम लेते थे और प्रेम में रूचि अधिक लेने लगे थे। गांधर्व विवाह कर पति-पत्नी का संबंध प्रारंभ हो गया था।

एक बार राजा का हस्ति मदोन्मत्त होकर नगर में घूमते हुए लोगों को मारने लगा। उसे

पकडने का उपाय न मिलने पर अभय से पूछा तब अभय ने कहा, 'उदयन संगीतपूर्वक गायन करे तो हाथी वश में आ सकता है।' तब राजाने उदयन को कहा तब उदयनने वासवदत्ता केसाथ संगीत-गीत गायन पूर्वक हाथी को वश में कर लिया। उस समय भी राजा अभय पर प्रसन्न हो गया और अभय को अभिष्ट मांगने के लिए कहा तब अभय ने यह दूसरा वर भी धरोहर रखा।

इधर उदयन के मंत्री ने अपने राजा की खोज की तो अवंती में है कर सूचना प्राप्त हुई। मंत्री वहाँ आया। गुप्त रूप से राजा से मिला। योजना बनायी। एक दिन चंडप्रद्योत ने वासवदत्ता की परीक्षा लेने का कहा और उद्यान में आने का कहा। स्वयं उद्यान में गया। इधर योजनानुसार वेगवती नामक हाथिणी पर वासवदत्ता, महावत, कंचनमाला धावमाता, उदयन राजा और वसन्तक ये सभी वेगवती पर आरूढ होकर चले। उदयन राजाने नगरी के बाहर जाकर जहाँ चंडप्रद्योत बैठा था उससे कुछ दूरी पर से आवाज दी। यह उदयन राजा वासवदत्ता को ले जा रहा है। बाद में मुझ पर चोरी का आरोप न दे। वेगवती ने वेग पकड लिया। राजाने उसका पीछा करने के लिए अनलगिरि पर अपने पुत्र को भेजा। अनलगिरि दौडा जहाँ वेगवती दृष्टि पथ पर आयी कि मुत्र का एक घडा वसन्तक ने फोड दिया। अनलगिरि रूक गया। वेगवती आगे बढ गयी। इस प्रकार चार बार बना। चारों बार मुत्र की सुगंध लेने अनलगिरि रूका। चौथीबार राजा के पुत्र ने बाण छोडना चाहा, पर वासवदत्ता सामने आ गयी। राजपुत्र ने बाण न छोडा। वासवदत्ता के साथ उदयन अपने नगर में सकुशल पहुँच गया। चंडप्रद्योत ने युद्ध करना चाहा तब मंत्रियोंने समझाया कि वासवदत्ता अपनी इच्छा से गयी है अब वह वापिस आयगी नहीं और आप ले आओगे तो अब उसे कोई सज्जन पुरुष तो नहीं ले जायगा। अतः आप के लिए उदयन से उसके विवाह की अनुमति देकर संबंध बढाना ही अच्छा है। राजा ने वैसा ही किया।

एक बार नगर में आग लग गयी। तब उस आग के निवारण का उपाय अभय से पूछा तब अभय ने कहा विष का औषध विष वैसे, इस अग्नि का औषध अग्नि है। आप उस आग के सामने दूसरी आग सुलगाइये वह आग शांत हो जायगी। और वैसा ही किया तब आग शांत हो गयी। राजाने एक ओर वर दिया। अभय ने उसे भी धरोहर के रूप में रखा।

एक बार नगर में मरकी का उपद्रव हुआ। किसी भी उपाय से उपद्रव शांत होते न देखकर अभय से पूछा। तब अभयने कहा आप शिवादेवी के हाथों से शांतिकर्म करवाइये। और नगर में जल धारा दिलवाइये। उपद्रव शांत हो जायगा। और शीलव्रत धारिणी शिवादेवी ने शांति पूजा कर जलधारा की। उपद्रव शांत हो गया। राजाने चौथी बार भी वरदान दिया।

अभय की प्रतिज्ञा :

तब अभयने कहा राजन्! मैं चारों वरदान चाहता हूँ। राजाने आनंदित होकर कहा, मांगो। तब अभय बोला, 'अनलगिरि हाथी पर शिवादेवी के साथ मैं बैठूं, आप महावत बनो और अग्निभिरू रथ के काष्ठ से आग लगायी जाय उसमें मैं जल जाना चाहता हूँ।' चंडप्रद्योतने कहा, 'अभय! तेरी बुद्धि के आगे हमारी बुद्धि का कोई मूल्य नहीं, तूं जीता मैं हारा। मैं यह तेरी इच्छा पूर्ण नहीं कर सकता। अन्य इच्छा हो सो मांग। तब अभय ने घर जाने का कहा। राजाने उसे अलंकारादि, रथ आदि दिया। तब अभय ने कहा, 'आप तो मुझे धर्मछल से लाये थे। मैं आपको अवंती के बजार मेंसे आपको बांधकर दिन में आपके नगरजनों के सामने से आप बोलते रहोगे मैं चंडप्रद्योत हूँ, यह अभय मुझे ले जा रहा है। इस प्रकार मैं आपको ले जाऊंगा तब मेरा नाम अभय जानना।' राजाने कहा, जा-जा, मेरे राज्य मेंसे मुझे ले जाने का तेरा विचार एक स्वप्न है स्वप्न। जा अभी तो घर जाकर सो जा।

गोभद्र सेठ का संकट टला :

अभय राजगृही आया। राजाने स्वागत किया। अभय ने अपना वृतांत कहकर राजगृही के समाचार पूछे, तब राजाने कहा, 'एक बार एक काणे धूर्तने गोभद्र सेठ के वहाँ आकर एक आँख धरोहर रूप में रखी हुई है सो वह मुझे दीजिये ऐसा कहा। गोभद्र सेठने कहा मेरे यहाँ तेरी कोई आंख रखी हुई नहीं है। उसने मेरे पास फरियाद की। मैं विचार में पडा। कोई मंत्री उस समस्या को सुलझा न सका, तब नगर में पटह बजवाया। उस समय धन्य सेठने आकर उस धूर्त से कहा, 'देख! गोभद्र सेठ के वहाँ धरोहर का धंधा है। और तूने आंख धरोहर के रूप में रखी है यह सत्य है न!' तब उसने कहा, हाँ सत्य है इसलिए तो मैं लेने आया हूँ।' धन्य ने पूछा, 'दूसरे लोगोंने भी आंखें तो रखी होगी न?' उसने कहा, 'हाँ, दूसरेने भी रखी हो सकती हैं।' धन्य ने कहा, देख गोभद्र सेठ की नोकर की भूल से सभी आंखे एक संदूक में रख दी गयी हैं। अब तेरी आंख ढूंढने के लिए यह तेरी आंख निकालकर दे जिससे तेरी आंख से आंख का मिलान कर तुझे देदी जायगी।' वह धूर्त क्षमा मांगने लगा। उससे दोषारोपण का दंड वसुल किया। गोभद्र सेठ ने अपनी सुभद्रा नामक कन्या धन्य को दी। मैंने उसे प्रतिदिन राजसभा में आने का निमंत्रण दिया।

सोमश्री का विवाह :

एक बार हाथी आलान स्तंभ तोडकर भाग गया। नगर में उपद्रव करने लगा। तब मैंने नगर में पटह बजवाया कि जो हाथी को वश में करेगा, उसे राज्य की ओर से पांचसौ ग्राम और एक राजकन्या दी जायगी। उस समय धन्य सेठ ने उस हाथी को वश में किया और मैंने सोमश्री की शादि उससे की। धन्य औत्पातिकी बुद्धि का धनी होने से तेरा विरह राजकार्य में

विघ्नकर्ता न बना।

अभय की प्रतिज्ञा पूर्ति :

अब अभय ने सोचा मुझे मेरी प्रतिज्ञा का पालन करना है। उसने दो षोडशी वेश्याओं को बुलाकर अपनी सारी योजना उनको बता दी। फिर एक चंडप्रद्योत के डीलडौल और आकार से मिलता जुलता व्यक्ति खोजा। वह भी मिल गया। उसे भी अपनी योजना बता दी। इसके पश्चात् उसने एक सार्थवाह का रूप लिया। शकट घोडे आदि साथ में लिए। कई दास-दासी नौकर-चाकर साथ में लिए। फिर शुभ दिन में उसने सार्थवाह बनकर प्रयाण किया। अति शीघ्र वह अवंती पहुँचा। अभय ने एक घर न अतिगुप्त, न अतिबाहर ऐसा राजमार्ग के निकट भाडे से लिया। और उसी दिन उसका सिखाया वह व्यक्ति बाजार में घूमता भागता दिखाई दिया। उसके पीछे अभय और उसके आदमी उसे पकडने दौडते, भागते दिखाई दिये। महा मुश्किल से उसे पकडा वह चिल्लाता था। मैं प्रद्योत हुँ। चंड हूँ यह अभय मुझे पकडकर ले जा रहा है अरे कोई तो बचाओ। मुझे छुडवाओ। मैं तुम्हारा राजा हूँ। पूरे बाजार में वह चिल्लाता रहा, लोगोंने अभय सेठ से पूछा तब उसने कहा, 'क्या करूं? मेरा छोटा भाई है, उसका इलाज चल रहा है। इसकी सुरक्षा के लिए अनेक नौकर रखे हैं, फिर भी यह समय मिलते ही भाग जाता है।' प्रतिदिन का यह क्रम चलने लगा। कुछ दिन तो अन्य श्रेष्ठि लोग उसको पकडने में सहायक हुए। अपने कार्य को छोडकर आना उन्होंने भी बंद कर दिया। नगर के लोगों को सैनिकों को, राजकर्मचारियों को भी ख्याल आ गया कि यह अभय सेठ का भाई पागल है। जो अपने आपको राजा चंडप्रद्योत मान रहा है। अब अभयने उसे मंचपर बांधकर वैद्यराजजी के घर ले जाना प्रारंभ किया। पूरे नगर के लोगों में उस अभय सेठ के प्रति सद्भावना प्रकट हो गई थी। वह नगर के प्रत्येक कार्य में भाग लेता था। कम दाम में माल देता था। सबसे हिलमिलकर चलता था। वैद्यराजजी भी राजगृही से ही लाये गये थे। अतः सब कार्य व्यस्थित चल रहा था। इसके बाद उन दो षोडशी कन्याओंको झरोखे में बैठने का निर्देश दिया। और उन्होंने राजा के वहाँ से जाने के समय उस पर कटाक्ष बाणों की वर्षा की। राजा उनके रूप, सौंदर्य एवं हावभाव से आकर्षित हुआ। अब वह क्रम प्रतिदिन का हो गया। और राजा के हृदय में उनको प्राप्त करने के भाव उत्पन्न हो गये। और उसने एक दिन एक चालाक दूती को भेजी। बहुत महेनत के बाद दूती को उन स्त्रियों के पास जाने को मिला। और राजा की बात उन दोनों ने सुनी। अपनी भी विरह वेदना व्यक्त की। कुछ दिनों के बाद दूती को पुनः आने का कहा। इधर राजा का प्रतिदिन उस मार्ग से जाना होता था। दोनों वेश्याएँ उसको कटाक्षों से घायल करती थी। दूती पुनः आयी। अभय ने जाने की तैयारी कर ली थी। सभी से विदाय ले ली थी। हिसाब सभी का चूकता कर दिया था। दूती को उन दोनोंने राजा को

आज प्रातः भेजने का कह दिया। राजा समय पर आया। और अभय ने कहा पधारो। अपने सैनिकों के द्वारा राजा को उसी मंच पर बंधवाया और बाजार में से आदमियों द्वारा उठाकर ले जाने लगा। राजा चिल्लाता रहा कि मैं इस नगरी का राजा चंडप्रद्योत हुँ। यह अभय मुझे पकडकर ले जा रहा है। मेरे बंधन छुडवाओ। अरे श्रेष्ठिलोग, राजकर्मचारी आप क्या देख रहे हो? यह अभय मुझे ले जा रहा है। परंतु लोग रोज के उस पागल को ही अभय ले जा रहा है, ऐसा मानते रहे किसीने उस ओर ध्यान नहीं दिया। नगर के बाहर जाकर चंडप्रद्योत को एक रथमें बंधन छोडकर बिठाया और राजगृही में ले आया।

दोनों राजाओं में मैत्री :

श्रेणिक राजा ने भावभीना स्वागत किया। दोनों सिंहासन पर बैठे। अभय की बुद्धि की पेट भर कर चंडप्रद्योत ने प्रशंसा की। बहुत दिन के बाद प्रद्योतने जाने की आज्ञा मांगी। तो भी श्रेणिक ने उनको आग्रहपूर्वक रखा। फिर पुनः आज्ञा मांगने पर अनेक हाथी, अश्व, रथ आदि के साथ बहुमूल्य वस्त्राभूषण और अनेक सैनिकों के साथ दूर तक पहुँचाने साथ साथ गये, फिर श्रेणिक अभय आदि राजगृही आये और चंडप्रद्योत अवंति गया। उस समय से दोनों राज्यों में अतीव सद्भावपूर्वक मैत्री संबंध स्थापित हुआ। पत्र व्यवहार, भेट-सौगाद देना-लेना प्रारंभ हुआ।

सुलस धर्मी बना :

राजगृही नगरी में काल सौकरीक नामक एक कसाई जो प्रतिदिन पांचसौ भैंसे (पाडे) मारने का अभिग्रहवाला रहता था। उसका एक पुत्र 'सुलस' नाम का था। एक बार अभय कुमार से उसका मिलना हुआ। और वह अभय का मित्र बन गया। अब वह धर्मकार्य में रूचि और पापकार्य प्रति अरूचि धारक हो गया। उसके पिता की अंतिम स्थिति थी। सुलस उनकी सेवा में हाजिर था। रूई की मुलायम गद्दी पर सुलाने पर भी उन्हें कांटे चूभते थे। चंदन का विलेपन गर्मी का अनुभव कराता था। सुलस ने अभयकुमार से पूछा कि मैं क्या करूं? जिससे मेरे पिता को शाता का अनुभव हो? अभय ने विचार कर कहा, 'देख! तेरे पिताजी दुर्गति में जानेवाले हैं, अतः उनको तू काँटे की शय्या पर सुलाना और विष्टा का शरीर पर विलेपन करना। जिससे उन्हें शांति का अनुभव होगा।' सुलसने वैसा ही किया। तब कालसौकरिक बोला, 'हाँ अब मुझे कुछ ठीक लगता है।' वह आयु पूर्ण कर सातवीं नरक का अतिथि बना। पिछे परिवारने सुलस पर बाप का धंधा करने के लिए दबाव डाला। तब अभय की सलाहानुसार उसने अपने पैरों पर कुल्हाडी से घाव करके कहा, 'मेरा पाप लेने का कहनेवाले पहले मेरे दुःख को लेकर बताओ।' सब मौन हो गये। सुलस अभयकुमार की सलाहानुसार वर्तन कर सन्मार्ग पर चला।

अनार्य बना आर्य :

आर्द्रदेश में आर्द्रक राजा का आर्द्रककुमार ने अपने पिता की मित्रता श्रेणिक राजा से है तो मुझे उनके पुत्र के साथ मित्रता करनी चाहिए। ऐसे विचार से एक बार आर्द्रदेश से मगध देश जानेवालों के साथ बहुमूल्य पदार्थ अभयकुमार को भेट रूप में भेजे। अभय ने सोचा 'मेरे साथ मित्रता की इच्छा करनेवाला निकटभवी होना चाहिए। यह आर्द्रककुमार पूर्वभव में आराधक होगा। इसने कुछ विराधना की होगी जिससे अनार्य देश में जन्मा है। अब मुझे उसे प्रतिबोध हो ऐसा कुछ करना होगा। और उसने सोचविचार कर स्वर्णमय जिन प्रतिमा और पूजन सामग्री किसी सार्थवाह के साथ भेजी और कहलवाया कि यह भेट एकान्त कमरे में आप अकेले ही खोलकर देखे। आर्द्रककुमार ने भेट मिलने पर अभय के कथनानुसार किया। प्रतिमा देखकर चिन्तन किया। जातिस्मरण ज्ञान हुआ। अपने पूर्वभव को देखा और जाना कि पूर्वभव की चारित्र की विराधना का यह अनार्य देश में जन्मरूप फल मिला है। अब मुझे आर्य देश में जाकर चारित्र ग्रहण करना है। प्रयत्न कर आर्यदेश में आया। और चारित्र ग्रहण कर मोक्ष सुख को प्राप्त किया।

शासन प्रभावना :

सुधर्मास्वामी के उपदेश से प्रतिबोधित होकर एक कठियारेने दीक्षा ली। राजगृही के लोग उसकी मजाक करने लगे। अभय को मालुम होने पर अभय ने नगर में पटह बजवाया कि तीन पदार्थ छोडनेवाले को रत्नों के तीन ढेर दिये जायेंगे। दूसरे दिन मैदान में बहुत से लोग आये। अभय ने घोषणा की 'अप्काय, अग्नि एवं अंगना' इन तीनों को छोडनेवाला इन तीनों ढेरों को ले जा सकता है। पर कोई तैयार न हुआ। तब अभय ने पूछा, 'उस लकडहारे ने तीनों चीजें छोडी हैं?' प्रजा ने कहा, 'छोडी हैं।' अभय ने कहा, 'फिर भी वह लेने नहीं आया तो वह त्यागी है या नहीं?' लोगों को अपनी भूल का भान हुआ। वे सभी मुनि की प्रशंसा और अभयकुमार की बुद्धि की सराहना करते हुए शासन की जय-जयकार करते अपने घर लौट गये।

विद्यागुरू :

एक बार चेल्लणा ने एक स्तंभीय महल की इच्छा व्यक्त की। राजाने अभय से कहा। अभय उत्तम कारीगरों के साथ काष्ट लेने के लिए वन में गया। वहाँ एक सुन्दर वृक्ष को देखकर उसकी पूजा कर ले जाने की आज्ञा मांगी। तब उस वृक्ष के अधिष्ठायक व्यंतर ने अभय की इच्छा देखकर एक स्तंभीय महल बनाने का आश्वासन दिया। अभय राजगृही में आ गया। एक रात में व्यंतर ने महल बना दिया और उद्यान में एक नित्य फल देने वाला आम्र वृक्ष लगा दिया। एक बार एक मातंग की पत्नि को बिना ऋतु आम खाने का दोहद उत्पन्न

हुआ। मातंग उस उद्यान से अवनामिनी और उन्नामिनी विद्या के बल से फल ले आया। प्रातः फल रहित वृक्ष देखकर पहरेदारों ने राजा से निवेदन किया। राजाने अभय से कहा। अभय ने नगर में घूमकर कथा कहने के द्वारा चोर को पकडा। राजा के पास लाया। राजा ने मृत्यु दंड दिया। अभय ने कहा, 'इसके पास दो विद्याएँ हैं वे आप ग्रहण कर लो।' राजा ने मातंग से विद्या देने को कहा। राजा सिंहासन पर बैठा और मातंग नीचे। विद्या कैसे आये? अभय ने कहा, 'विद्या चाहिए तो मातंग को उच्चासन पर बिठाकर आप सामने बैठें, तब विद्या आयगी।' राजाने वैसा ही किया। विद्या आ गयी। अभय ने कहा, 'अब यह आपका विद्यागुरू है, इसका क्या करना?' इस प्रकार बुद्धि बल से मातंग को अभय दिला दिया।

रोहिणिया चोर :

एक बार रोहिणिया चोर को अभयने पकडा। पर वह चोर रूप में सिद्ध न हुआ। तब उसका सम्मान करने के लिए उसे अपने घर ले जाकर चंद्रहास मदिरा द्वारा बेहोश कर देव विमान के समान रचना कर फूलों की सेज पर सुलाया। जागृत होने पर देवताओंने उसका सम्मान कर पूर्वभव बताने को कहा। उसने सोचा, 'क्या मैं वास्तव में देव बना हूँ?' ऐसा सोचते सोचते उसे अनिच्छा से सुने हुए वीर परमात्मा के चार वचन याद आये। उसने देवों के सामने देखा। (१) यहाँ दृष्टि अनिमेष नहीं है (२) पसीना हो रहा है। (३) पुष्पमाला कुमला रही है। (४) पैर जमीन पर हैं। देव के स्वरूप में ये लक्षण नहीं होते। यह अभय की माया है। जब अभय को मालुम हुआ कि मेरी माया का उसे अनुमान हो गया है तब अभयने प्रेमपूर्वक पूछा। उसने सब सत्य बताकर सारा माल राजा को दे दिया। राजा एवं अभय से क्षमा याचना कर रोहिणियाने प्रभु के पास चारित्र ग्रहण किया। यह भी अभय की बुद्धि का फल है।

मेघ कुमार :

धारिणी रानी को मेघ वर्षा का दोहद उत्पन्न हुआ। तब अभय ने पूर्व के देव मित्र को याद कर अट्ठम तप किया। देव के सानिध्यसे कृत्रिम वर्षा करवाकर माता का दोहद पूर्ण किया। पुत्र का नाम मेघकुमार दिया। आठ कन्याओं से उनका विवाह हुआ। कुछ समय बाद मेघकुमारने दीक्षा लेकर आत्म कल्याण किया।

दुर्गंधा रानी :

एक बार श्रेणिक को कूडे में एक दुर्गंधमय बालिका दिखाई दी। प्रभु से पूछा। प्रभु ने कहा, 'पूर्व में इसने मुनिदान दिया था। पर मुनि भगवंत के देह की दुर्गंध से मुँह मोड़ लिया था। इसलिए यह वेश्या के उदर से जन्मी है। जन्मते ही असह्य दुर्गंध युक्त होने से वेश्या ने यहाँ छोड दी है।' आगे की बात पूछने पर प्रभु ने कहा, 'यह तेरी रानी बनेगी।' श्रेणिक ने पूछा, 'कैसे पहचानूंगा?' प्रभु ने कहा, 'तेरी पीठ पर चढ़े तब पहचान लेना। फिर यह चारित्र

लेगी।' उस बालिका को चरवाहन ले गयी। बालिका यौवन वय में आयी तब कौमुदी महोत्सव में गयी। राजाने उसे देखी और उसके उत्तरीय वस्त्र में अपनी अंगूठी बाँध दी। फिर अभय को खोज करने को कहा। अभय ने सब की तलाशी ली। उस कन्या के पास अंगूठी मिली। अभय ने पिता की इच्छा समझकर उसका विवाह राजा से करवा दिया। एक दिन चौपट की हारजीत में वह श्रेणिक की पीठ पर बैठ गयी। श्रेणिक को प्रभु वचन याद आया, हँसी आ गयी। रानी के पूछने पर सारी बातें कीं। रानी ने चारित्र ले लिया।

माँस सस्ता या महँगा :

एक बार सभा में 'माँस सस्ता मिल रहा है' ऐसे वचन अनेक सामंतों के मुख से निकले। तब अभय ने कहा, 'राजन् माँस अधिक महंगा है।' थोडे दिन बात रात को अभय माँस सस्ता कहनेवाले सामंतों के घर गया और कहा, 'राजा को अचानक रोग उत्पन्न हुआ है। वैद्यजी ने दो तोला हृदय का माँस लाने को कहा है। आप राजा के भक्त हैं। ये दो लाख रूपये लो, और दो तोला माँस दो।' उस सामंत ने अभय के पैर पकडकर दो लाख मोहरें देकर, दूसरे घर से कार्य सिद्ध करने को कहा। इस प्रकार अभयकुमार रात में मांस सस्ता कहनेवाले सभी सामंतों के घर जाकर स्वर्ण मोहरें ले आया। प्रातः सभी सामंत राजा को शाता पूछने लगे। राजा ने अभय के सामने देखा। अभय ने रात की सारी बात कही, 'राजन्! दो तोला माँस तो न मिला पर इतनी स्वर्ण महोरें मिलीं'। सभी सामंतों ने अहिंसा के महत्व को समझा। यह था अभय की बुद्धि का चमत्कार।

बुद्धि का उपयोग :

अभय ने प्रभु से पूछा, 'प्रभु! अंतिम राजर्षि कौन होगा?' प्रभुने कहा, 'उदयन राजर्षि।' तब अभय ने श्रेणिक से दीक्षा हेतु आज्ञा माँगी। श्रेणिक ने कहा जब मैं तुझे मेरी नजरों से दूर हो जा, ऐसा कहूँ तब दीक्षा ले लेना। अभय ने स्वीकार किया।

एक बार पोष मास की शीत ऋतु में देशना श्रवणकर चेलणा व श्रेणिक आ रहे थे। मार्ग में एक स्थल पर एक मुनि खूले बदन ध्यान में मग्न थे। चेलणाने मन ही मन वंदन किया। रात को उसका हाथ रेशमी रजाई में से बाहर आया। सर्दी का अनुभव होते ही मुँह से निकला, 'उसका क्या होता होगा?' श्रेणिक ने ये शब्द सुन लिये। उसे शंका हो गयी। प्रातः अभय को पूरे अंतःपुर को जलाने की आज्ञा दे दी। राजा प्रभु वंदन को गया। अभय ने अंतःपुर के पास के मैदान को साफ करवाकर काष्ट और घास डलवाकर आग लगवा दी। और प्रभु वंदन को चला। श्रेणिक ने प्रभु से पूछा। प्रभु ने कहा, 'तेरा अंतःपुर सतीत्व की सुगंध से भरपूर है।' श्रेणिक शीघ्र आया। अभय मिला। 'आज्ञा का पालन किया' ऐसा कहा। राजाने आवेश में कह दिया 'चला जा मेरी नजरों से दूर'। अभय ने प्रभु के पास दीक्षा ले ली। श्रेणिक

को अंतःपुर देखने पर अभय की बुद्धि का पता लगा। वह पुनः प्रभु के पास आया। श्रेणिक अभय मुनि को वंदन कर घर आया। चारित्र पालन कर अभय स्वर्ग में गया। अभयकुमार के रासमें श्रेणिक ने दीक्षा दिलाने का विधान किया है।

- *अंतरंग शत्रुओं को खत्म करने में स्वशक्ति का उपयोग करने वाले श्रमण (साधु) केवल दिखने मात्र में शत्रु, वास्तविकता से मित्र पर कैसे खर्च करेगें स्वशक्ति को ?*
- *चर्मचक्षु से द्रष्टिगोचर पदार्थ नाशवंत है अतः नाशवंत पदार्थों पर ममत्त्व भाव लाना यह अज्ञानता है। जहाँ अज्ञानता है वहाँ ज्ञान नहीं, ज्ञान नहीं तो चारित्र आयेगा कैसे?*
- *काष्ट की नौका जो स्वयं तिरती है एवं उसका सहारा लेने वाला भी समुद्र पार करता है वैसे ही सुगुरु भगवन्त स्वयं संसार समुद्र से पार उतरे एवं उनका सहार लेने वाला भी संसार समुद्र से पार हो जाता है।*
- *कुछेक श्रमणोपासक गच्छीय वातावरण में इतने निमग्न हो जाते हैं कि हमारे गच्छ के गुरु जो भी करें वह शास्त्रानुसार अन्य गच्छ के गुरुओं का वर्तन शास्त्र विरुद्ध। ऐसी धारणा जो प्रचलित है वह अनुचित है एवं कर्मबन्ध का कारण है।*
- *'जो श्रेष्ट हो, उत्तम हो, हितकारी हो, इस लोक एवं परलोक में परम्पराएँ परिपूर्ण आत्मिक सुख की प्राप्ति कारक हो उसी वचन को स्वीकृत करो' यही सुधर्म है।*
- *पूज्य पुरुषों का आदर सत्कार करना, उनके वचनों का पालन करना, लघु व्यक्ति से विनयपूर्वक वर्तन रखना, दूसरों को सुख पहुंचाने का प्रयत्न करना, गुणानुवाद में निमग्न रहना अवर्णवाद को तप्त सीसे का रस समझ कर्णेन्द्रिय में प्रवेश न होने देना आदि संक्षेप में विनय का स्वरूप है।* - जयानंद

उत्कृष्ट अणगार

धान्यपुर नगर में पाराशर नामक एक ब्राह्मण रहता था। वह राजा का प्रीतिपात्र था। उसको राजाने पांचसौ खेतों की व्यवस्था का अधिकारी बनाया था। उन खेतों के पास में ही उसका खेत था। एक बार पांचसौ हल चलानेवालों के भोजन के समय, बैलों के घास चरने के समय, उसने अपने खेत में एक चास (एक बार हल चलाने का) दिलवाकर बाद में भोजन दिलवाया। उस समय वे सभी क्षुधा से पीड़ित थे। उसने आहार में विलंब करवाकर अंतराय कर्म का उपार्जन किया। [एक कथा में उसने ऐसा कई बार किया, ऐसा भी लिखा है।] आयुष्य पूर्ण कर अनेक भवों में भ्रमणकर, कुछ पुण्योपार्जनकर, वह कृष्ण की ढंढणा नामक पत्नी की कुक्षी में पुत्र रूप में जन्मा। नाम 'ढंढणकुमार' दिया। यौवनावस्था में अनेक राजकन्याओं के साथ उसका विवाह हुआ। उसके बाद एक बार प्रभु की देशना श्रवणकर उत्कृष्ट विराग भावसे माता-पिता की अनुमति लेकर उसने चारित्र लिया। स्थविरों के पास आसेवन एवं ग्रहण शिक्षा ग्रहण की। तप-जप में रत रहने लगा।

प्रभु के साथ विचरते विचरते पूर्व कर्म उदय में आया, और आहार का अंतराय होने लगा। प्रतिदिन गोचरी जाते, पर शुद्ध गोचरी न मिले। विहार करते-करते ढंढणमुनि पुनः द्वारिका आये। अठारह हजार साधुओं को गोचरी मिले, पर इनको गोचरी न मिले। प्रभु ने अन्य का लाया आहार लेने का कहा, तब इन्होंने जवाब दिया, 'प्रभु मेरा अंतराय कर्म टूटेगा, तभी आहार करने की मेरी भावना है।' प्रभु ने अनुमति दी। एक बार एक साधु उनके साथ गोचरी गया, तो उसे भी आहार न मिला। आकर प्रभु से पूछा, तब प्रभु ने ढंढण ऋषि का पूर्वभव बताया। और कहा कि इसने ऐसा ही अंतराय कर्म बांधा है कि इसे और इसके साथ जानेवाले को भी आहार नहीं मिलता। इस प्रकार छः महिने बीत गये।

कृष्ण ने पूछा, 'भगवन्! आपके अठारह हजार शीलांग रथ में बिराजमान अठारह हजार साधुओं में सर्वोत्तम कौन है?' प्रभु ने कहा, 'वैसे तो सभी सर्वोत्तम हैं, परंतु भावों की अतीव निर्मलता से प्रकाशित ढंढण ऋषि हैं। जो अदीन भाव से छः महिनों से अलाभ परीषह को सहन कर रहा है।' कृष्णजी अपने संसारी पुत्र की प्रशंसा प्रभु मुख से श्रवणकर हर्षित हुए। दर्शन वंदन के भाव मन में उत्पन्न हुए। प्रभु ने कहा, 'नगर में जाते ही प्रथम वे तुझे मिलेंगे।'

कृष्ण वंदन करने नगर में चले। थोडी देर में गोचरी के लिए घूमते मुनि भगवंत दिखाई दिये। हाथी पर से उतरकर, तीन प्रदक्षिणा देकर, भूमि पर मस्तक नमाकर पंचांग प्रणाम किया। भावभरी वंदना कर कृष्ण अपने महल की ओर चले। इस दृश्य को एक गृहस्थने देखा। सोचा कि, ये कोई महापुरूष हैं, जिससे राजा कृष्ण ने इन्हें वंदन किया है। इनको

आहार दूं। उनके पास जाकर, निमंत्रित कर, सिंह केसरिया मोदक वहोराये। मुनि प्रभु के पास आये। पूछा, तब प्रभुने कहा, 'यह हरि की लब्धि है। तेरी लब्धि से आहार नहीं मिला।' ढंढण ने आहार परठने की आज्ञा लेकर, इंट के भट्टे पर आकर मोदक को चूर-चूर कर परठते हुए आहार लोलुपता की निंदा करते हुए संसार की असारता में रमण करने लगे। शुद्ध भाव से ध्यान धारा में कर्मों का भी चूरा होने लगा। क्षपकश्रेणि, शुक्ल ध्यान के द्वारा केवलज्ञान प्राप्त किया। देवों ने दुंदुभिनाद कर, स्वर्ण कमल की रचना की। ढंढण केवलीने देशना में आहार के अंतराय की बात और परिणाम को दर्शाया। प्रभु के पास आकर केवली पर्षदा में बिराजमान हुए।

ढंढणऋषि अनेक भव्यात्माओं को प्रतिबोध देकर मोक्ष में पधारें।

- *व्यक्ति अन्याय मार्ग से निवृत्त तभी हो सकता है जब उसके मस्तिष्क में से धनमूर्च्छा, धनतृष्णा, धनलोभ एवं अधिकाधिक संग्रह वृत्ति दूर हो जाय। स्वात्महितेच्छुओं को इन रोगों को दूर करने का प्रयत्न करना ही चाहिए।*
- *वासना की पूर्ति हेतु ही लोग विजाति के साथ विवाह सम्बन्ध करते हैं। वासना की पूर्ति हेतु किये हुए विवाह सम्बन्ध में जहाँ दोनों में से एकाध रोग ग्रस्त हो जाय कुरूप हो जाय, या एक दूसरे के शौख में परिवर्तन हो जाय तो विवाह सम्बन्ध विच्छेद होते देर नहीं लगती।*
- *सम्मान वे ही नारियाँ अनादि अनंतकाल से पा रही हैं जिन नारियों ने मर्यादा का उल्लंघन कभी नहीं किया। विकटातिविकट परिस्थितियों में भी नारी जाति ने अनेकानेक कष्टों को सहनकर स्वमर्यादा का पूर्ण रूपेण पालन कर सम्मान के साथ सद्गति भी पायी।*
- *आज के युग में सुधारवादी मानवों में स्त्री को स्वतन्त्र करने की जो भावना उद्बुद्ध हुई है उसके पीछे स्त्री को बन्धन में से छुडाने के प्रयत्न के फलस्वरूप वह नये-नये कितने बन्धनों में फँस गयी है उसे तो अनुभवी व्यक्ति ही बता सकता है।* - जयानंद

भाग्याधीन दान—पुण्य

महापुर नगर में विश्वभूति ब्राह्मण रहता था। वह कृपणता का पुजारी था। उसके पास अपार लक्ष्मी थी। पर न स्वयं पूरा खाता था,. न परिवार को खाने देता था। घर के सभी कार्यों में कृपणता का साम्राज्य था। एक दिन प्रातः उसे याद आया कि देवभद्र सेठ के पांच हजार रूपये दिये थे उसका हिसाब नहीं करवाया। आज जाकर हिसाब करवा लूँ। व्याज सहित लाकर उनमें या किसीमें जमा करवा लूंगा। ऐसा सोचकर मध्याह्न में घर से निकला। घर के द्वार पर बैठे सेठ के पहरेदारने उसे रोका। अंदर जाकर सेठ से पूछकर उसे अंदर जाने दिया।

विश्वभूति का चिंतन चला कि यह तो दिवालिया है। लक्ष्मी को व्यर्थ में खर्च कर रहा है। मैं ठीक समय पर आया हूँ। रकम सब ले जाना ही उचित है। सोचते-सोचते सेठ के पास आया। सेठने उसे देखते ही खड़े होकर आदर पूर्वक बुलाया। उसे अपने पास बिठाया। कुशल समाचार पूछकर आने का कारण पूछा। उसने हिसाब की बात की। सेठने मुनीम को बुलाकर हिसाब करने को कहा। साथ में सूचना दी कि ये भूदेवजी हैं, अतः इनको एक पैसा भी कम न दें। ये लेने के अधिकारी हैं। पूरा हिसाब बताया। रकम सामने रखी। ब्राह्मण ने ले ली और चलने की तैयारी की। तब सेठने रूकने का आग्रह किया, और 'प्रातः पधारना' ऐसा कहा। विश्वभूति ने भी मान लिया। उसे भोजन सामग्री दी गयी। ब्राह्मणने भोजन किया। सेठ के कमरे में सोने की व्यवस्था की। वह सोने वहाँ गया। वहाँ फूल, धूप, रेशमी चंदरवे, और दीवारमें कांच के चित्र आदि की सजावट देखकर उसे वहीं चिंतन चला कि यह लक्ष्मी को उड़ा रहा है। फिजुल खर्ची से सेठ निर्धन हो जायगा। इधर दो घड़ी रात बितने पर सेठ आये। भूदेवजी को जागते देखकर पूछा, तो उसने कहा कि तुम्हारी चिंता से नींद नहीं आयी। तुम इतना व्यर्थ खर्च कर रहे हो, तो यह लक्ष्मी जाते देर नहीं लगेगी। तब सेठने उसे समझाया कि लक्ष्मी उद्यम से नहीं मिलती, न रक्षा करने से रहती है। यह तो धर्म से मिलती है, धर्म से बढ़ती है और धर्म से रहती है। इसका भोग तो फलरूप में ही है। जैसे वृक्ष उगाया, उस पर फल आये, वे फल खाने से वृक्ष का नाश नहीं होता। वैसे ही धन का फल जो भोगोपभोग है। उससे धन नाश नहीं होता। इस कारण आप निश्चिंत होकर नींद लें। सेठ सो गये। पर भूदेव को नींद कहाँ? वे तो सेठ की बात पर विचार करने लगे।

मध्यरात्रि में लक्ष्मी देवी सेठ की रक्षा के लिए आयी। भूदेव कुविकल्प में पडे। देवी सेठ का उत्तरीय धूपदान में गिर गया था, उसे उठाकर हाथ से आग बुझाकर स्वस्थान पर रखकर, पलंग का एक चक्कर लगाकर जाने लगी। तब विश्वभूति ने उसे बुलाकर पूछा। उसने कहा 'मूर्ख! कुविकल्प न कर, मैं लक्ष्मी हूँ। इसकी व्यवस्था हेतु मैं आती हूँ। मेरा स्वामी है, अतः मुझे आना जरूरी है।' विश्वभूति ने कहा, 'मेरे घर क्यों नहीं आती?' देवी ने कहा, 'तू

लक्ष्मी की तिजोरी भरकर रखने का ही कार्य कर। मैं तो ऐसे दान पुण्य करनेवालों के घर ही जाती हूँ।' भूदेव ने कहा, 'तब तो मैं भी दान पुण्य करूंगा।' लक्ष्मी ने कहा, 'तू दान-पुण्य करेगा तो तेरे नौ अंगों पर दाग दिलवाऊंगी।' भूदेव ने कहा,'मैं दान पुण्य करके तुझे मेरी दासी न बनाऊँ, तो देखना तू मुझे कैसे रोकेगी?' देवी ने कहा, 'मेरी बात ध्यान में रखना।' प्रातः विश्वभूति बाजार में गया। नये वस्त्र लिये। मार्ग में याचकों को बुलाकर दान देने लगा। नगरमें यह भी एक आश्चर्य था। लोग बातें करने लगे। 'अरे! देख! विश्वभूति दान देता है।' किसीने पूछा, तो उसने कहा, 'हाँ, भाई! इतने दिन मैं अज्ञ था। अब मुझे ज्ञान हुआ कि लक्ष्मी का भोग करना, एवं दान-पुण्य करना। लोगोंने उसके लड़कों से बात की। वे सभी चौंके। आये, देखा और सोचा। 'इनको कुछ हो गया है।' किसीने सलाह दी। इनके नौ अंगों पर दाग दो, तब ये ठीक होंगे। घर आने पर घर के लोगोंने पकडकर, नौ अंगों पर गरम-गरम सलाखों से दाग दीये। किसीने कहा, 'इससे भी ठीक न हो तो बेडियों से जकडकर कमरे में बंद रखना।' विश्वभूति ने सोचा, 'देवी का वचन सत्य हुआ। अब मैं आगे भी ऐसे कार्य करूंगा तो ये मुझे बंद कर देंगे।' वह मूर्च्छित हो गया। थोडी देर में उठकर बोलने लगा, ये नये वस्त्र मुझे किसने पहनाये। तब घर के लोगों ने उसे सारी बात कही। वह झूठमुठ रोया, और लोगों ने माना कि अब यह ठीक हो गया। फिर वह पूर्व के समान कृपण ही रहने लगा। इसी प्रकार जीवन पूर्ण कर दुर्गति का अतिथि बना।

- *जहाँ जहाँ जयणा वहाँ धर्म,*
  जहाँ जहाँ अजयणा वहाँ अधर्म।
- *विशिष्ट भिन्न-भिन्न आचरण वाले धर्मी मानवों का सर्व साधारण अनुष्ठान यह है गृहस्थ का सामान्य धर्म।*
- *व्यवहारिक ज्ञान को कार्यान्वित करने से पहले तत्त्वज्ञान का शिक्षण लेना अत्यावश्यक है। व्यवहारिक ज्ञान को किस समय किस प्रकार उपयोग में लेना यह तत्त्वज्ञान सिखलाता है।*
- *जहाँ वास्तविक चित्तशुद्धि होगी तो क्रियाशुद्धि होगी ही एवं जहाँ सुविशुद्ध क्रिया होगी वहाँ चित्तशुद्धि रूप फल होगा होगा ही इसमें शंका को स्थान नहीं।* - जयानंद

अल्पदान महाफल

पृथ्वीभूषणनगर अपने जमाने में उत्तम नगरों में गिना जाता था। वहाँ न्याय प्रिय राजा राज्य करता था। उस नगर में गुणों का भंडार न्यायनीति युक्त व्यापार करने वाला, दानादि चारों प्रकार के धर्म में उद्यमवंत, सदाचारी गुणसार नामक श्रेष्ठि रहता था। उसकी गणना उस नगर के उत्तम श्रेष्ठियों में थी। प्रत्येक धर्मकार्य एवं व्यवहारिक कार्यों में सेठ का स्थान प्रथम पंक्ति में रहता था। लक्ष्मी की चंचलता के ज्ञाता होने से वे सातों क्षेत्रों में वित्त का विनियोग विशुद्ध भाव से करते थे।

अनादिकाल से आत्मा अनुचित कार्यों द्वारा अशुभ कर्मोपार्जन करता रहा है। वे कर्म स्टोक में भी रहते हैं। समय परिपक्व होने पर कर्म अपना प्रभाव दिखा देते हैं। उस समय वे व्यक्ति को नहीं देखते। वे तो अपनी वसूली करने आ जाते हैं। गुणसार के भी पूर्व के किसी भव के उपार्जित अशुभ कर्म ने आक्रमण कर दिया और चंद दिनों में ही लक्ष्मीने अपनी चंचलता का चमत्कार दिखा दिया। सेठ निर्धन हो गये। वैभव तो गया ही, पर परिस्थिति ऐसी पल्टी, कि दो समय भोजन का प्रबंध भी मुश्किल होने लगा।

जगत का नियम है कि पास में है, तो सब पास में है। पास में नहीं, तो पास में कोई नहीं। धन एवं स्वजन की यही स्थिति है। गुणसार को अब कोई सहायक नहीं हो रहा था। फिर भी सेठ दानादि धर्मकार्य में देने के भाववाले ही थे। निर्धनावस्था में भी दान देने की मति में कोई अंतर नहीं आया।

इधर पत्नी पति से नित्य कहती रही थी, कि 'आप एक बार मेरे पिता के पास पधारें। वे आप पर पूर्ण प्रीति वाले हैं। आप के वहाँ पधारते ही आपको सहायक हो जायेंगे। वहाँ से धन लाने में कोई एतराज भी नहीं। यह आपका घर है, वह मेरा घर है। अतः आप पधारो।'

'मेरे पिताजी की उदारता तो आप से छूपी नहीं है। हम इन वर्षों में जितनी बार गये, उतनी बार कितना दिया है।' गुणसार का कहना था कि, 'भोली! दरिद्रावस्था में ससुराल जाना उचित नहीं है। वे देते थे। अपने पास था, इसलिए देते थे। हमारे पास अब एक पैसा भी नहीं है अतः उनके रूपये को हम आकर्षित नहीं कर सकते। मुझे वहाँ जाना ठीक नहीं लगता।' परंतु पत्नी ने कहना न छोडा! एक दिन स्त्री के हठाग्रह के आगे गुणसार को झुकना पड़ा।

गुणसार ने गुरूदेवों के सम्पर्क में आकर नियम लिया हुआ था एकांतर उपवास करने का। वह वर्षों से उस व्रत का पालन करता था। ससुराल जाने का निर्णय कर उपवास के दिन चला। मार्ग में पारणे के लिए 'सत्तू गुड' ले लिया। मार्ग में एक रात किसी नगर की पांथशाला में व्यतीत कर आगे चला। पारणे के समय पर मुनि भगवंत की राह देखने लगा। चिन्तन

चला, 'मेरा पापोदय कैसा कि पारणे के समय किसी को दिये बिना खाना पडेगा। आज तो बहुत देर राह देखनी है। कोई न कोई मुनि भगवंत विहार करते या गोचरी जाते मिल जायँ, या कोई साधर्मिक भाई मिल जाय तो उनको देकर बाद में पारणा करूँ।' इसी विचार में चारों ओर देखने लगा। राह देखते मध्याह्न का समय हुआ। एक मुनिराज आते दिखाई दिये। उनको देखते ही हर्षान्वित होकर सामने गया। चिंतन चला, 'अहो, अभी मेरे भाग्य जागृत हैं! इस अरण्य में मुनि दर्शन हुए। मैं पुण्यवान हूँ। मेरी भावना सफल हुई।' मुनि भगवंत के पास जाकर गुणसार ने हाथ जोडकर विनति की 'पधारो लाभ देकर कृतार्थ करो।' मुनि भगवंत मास खमण के पारणे के लिए गोचरी गये थे। ग्राम में शुद्ध जल मिला, पर आहार न मिला। जल लेकर आ रहे थे। उन्होंने भी भक्त की भावना को देखकर पात्र धरा और गुणसार ने सारा 'सत्तू और गुड' वहोरा दिया। उस समय उसको इतना हर्ष हुआ कि शरीर का रोम रोम पुलकित हो गया। दान की पांचों शुद्धियाँ मिल गयी। ग्राहक शुद्ध, आहार शुद्ध, दाता शुद्ध, समय शुद्ध और भाव शुद्ध। गुणसार का आनंद द्विगुणित हो गया। मुनि भगवंत को थोडी देर पहुँचाने गया। फिर सत्तू की थैली लेकर आगे चला। रह रहकर मुनि को दिया हुआ दान याद आ रहा था। 'आज मेरा भाग्य खूल गया। मेरा प्रबल पुण्योदय हुआ। ऐसे मुनिराज के पात्र में मेरा दान सफल हो गया।' अमृत क्रिया का अपार आनंद था। मार्ग पसार हो रहा था। श्वसुर का ग्राम आ गया। ग्राम में प्रवेश करते समय शकुन अच्छे नहीं हुये। उसने सोचा कि श्वसुर के घर स्वागत भी पूरा नहीं होगा। ऐसी अवस्था में यहाँ आना ठीक नहीं था। बाजार में होकर मार्ग था। दुकान पर श्वसुर और सालाजी बैठे थे। दोनोंने जमाई राज को देखा, और मुँह फेर लिया। सोचा, 'यह निर्धन मांगने आया है। इनको कितना भी देंगे तो भी यह दान पुण्य में उडा देगा।' गुणसार ने उन्हें देख लिया था। वह मुँह नीचाकर, घर की ओर चला। सासुने सिर्फ 'आओ, मेरी बेटी सकुशल है' इतना ही पूछा। भोजन के लिए भी न पूछा। वह चारपाई पर बैठा। शाम को श्वसुर भोजन के लिये आये। उनके साथ सामान्य भोजन कर लिया। श्वसुर दुकान पर चले गये। चार घडी रात जाने पर घर आये। श्वसुर ने पूछा, 'कैसे आये?' गुणसार ने कहा, 'यों ही मिलने।' 'ठीक, कितने दिन रहोगे?' 'नहीं, कल प्रातः जाना है।' 'तो फिर कुछ रात शेष रहे तब चले जाना, जिससे मार्ग अच्छा कटेगा।' इतना कहकर श्वसुर सो गये। वह भी चारपाई पर सो गया। प्रातः जल्दी उठकर रवाना हो गया। मार्ग में सोचने लगा पत्नी के हठाग्रह से आया, पर निष्फल गया। ज्ञानियों ने संसार को स्वार्थमय इसी कारण तो कहा है। परंतु मुझे तो मुनि दान का महाधर्म मिल गया। पत्नी के कहने से आना एकदम निष्फल नहीं हुआ। ऐसे विचार करता हुआ पुनः उसी स्थान पर आया, जहाँ मुनिराज को दान दिया था। उसके मन में पुनः हर्षोल्लास उत्पन्न हुआ। दान की बात याद करते ही रोमांच हो गया।

हृदय में आनंद का सागर उमड़ रहा था। फिर उसको विचार आया (पास ही नदी में कुछ चमकिले गोल पत्थर देखकर) कि खाली हाथ घर जाऊंगा तो पत्नी निराश होगी और घर पर कुछ कर्ज भी चढा हुआ है। अतः इन पत्थरों को ले जाऊँ। कोई भी व्यापारी तौल के लिए लेगा तो मूल्य मिलेगा, और कोई न लेगा तो मुनिदान की याद तो आती रहेगी। इस भावना से गोल-गोल बडे छोटे पत्थरों से थैली भर दी। उसे मस्तक पर उठाकर चला। रात उस गाम में व्यतीत कर प्रातः पुनः चला। मध्याह्न तक घर पहुँचा। पत्नीने पति को थैली उठाकर आते देख सोचा मेरे पिता ने शीघ्र ही बहुत कुछ दिया। थैली उठाकर अंदर के कमरे में रखकर, दुकानदार के पास जाकर रसोई का सामान लाकर, रसोई बनाकर भोजन परोसकर थैली देखने जाने लगी तब गुणसार ने कहा, तूं भोजन करले। फिर हम दोनों देखेंगे। पर वहाँ धीरज कहाँ थी? वह तो न मानी और गयी। थैली में से माल बाहर आते ही कमरा प्रकाश से भर गया। बोली, 'देखो! मेरे पिताने करोडों के रत्न दिये। आपको कितने दिन से कह रही थी। पहले चले गये होते तो इतने दिन दुःख में नहीं जाते। कितने रत्न दिये हैं।' गुणसार ने सोचा, 'यह भोली रत्न और पत्थर के भेद को क्या समझे।' दो तीन बार पिताने दिया ऐसा सुनकर उसने कहा, 'मुझे मालुम है तेरे पिताने क्या दिया है।' वह बोली, 'इतना दिया तो भी आपको तृप्ति नहीं हुई। इसका अर्थ ही यह है कि यम और जमाई कभी तृप्त नहीं होते-यह कहावत सत्य है। आप चलकर देखो। कितने रत्न हैं। पूरा कमरा प्रकाश से भर गया है।' भोजनोपरांत वह अंदर गया और वहाँ का दृश्य देखकर विचाराधीन हो गया। मैंने पत्थर लिये यह जितना सत्य है उतना ही सत्य यह है कि अब ये रत्न हो गये हैं। यह कैसे हुआ? सोचते-सोचते उसे मुनिदान की बात याद आयी। और अनुभव हुआ कि उग्र पुण्य का फल शीघ्र मिलता है। यह कथन सत्य सिद्ध हुआ। मैंने जो मुनिदान दिया, उस समय जो अमृत क्रिया हुई उस पुण्य का फल यह मिला है। पति को विचाराधीन देखकर पत्नीने पूछा, 'आप इतने विचार में क्यों पड़े? क्या मेरे पिताने बिना बताये ये रत्न नहीं दिये हैं, सो आप इतना विचार कर रहे हैं?' गुणसार ने कहा, 'मुग्धे! ये तेरे पिताने नहीं दिये हैं, पर पुण्य ने दिये हैं।' उसे सारी बातें बतायी। गुणसार श्रेष्ठि अपनी धनाढ्यता से एवं दान प्रियता से पुनः प्रख्यात हो गया। दान पुण्य कर अपना समय धर्म कार्य में व्यतीत करने लगा। आयु पूर्ण होने पर वह सद्गति में गया और अल्पावधि में शिव सुख प्राप्त करेगा।

● *परनिन्दा का अर्थ है सामने वाले प्रकट अप्रकट दोषों का अन्य व्यक्ति के सामने प्रकटीकरण करना।* - जयानंद

राग से विराग

पाटलीपुत्र में नौवें नंद का शकडाल नामक मंत्री था। उसके दो पुत्र और सात पुत्रियाँ थी। स्थूलिभद्र और श्रीयक दो पुत्र, यक्षा, यक्षदिन्ना, भूता, भूतिदिन्ना, सेणा, वेणा और रेणा ये सात पुत्रियों के नाम थे। शकडाल प्रथम नन्द के कल्पक महामात्य का वंशज था। राजा की वफादारी, राज्य सुरक्षा के भाव रोम रोममें बसे थे। जैन धर्म के प्रति उसका पूरा परिवार समर्पित था। स्थूलिभद्र कौशा वेश्या के परिचय में आया, और उसीके घर रह गया।

सातों बहनों का क्षयोपशम इतना तीव्र था कि यक्षा एकबार जो भी सूत्रादि श्रवण करती, वह याद हो जाता था। उसी प्रकार दूसरी तीसरी आदि दो तीन बार क्रमशः रेणा सात बार सुनने पर सूत्र उसे याद रह जाता था। उनकी शक्ति से पूरा परिवार प्रसन्न था।

एक बार वररूचि नामक ब्राह्मण ने राजसभा में नये श्लोक बनाकर राजा की स्तुति की। राजा ने अमात्य के सामने देखा। शकडाल ने प्रशंसा न की। राजाने पारितोषिक नहीं दिया। वररूचि प्रतिदिन आने लगा। पर इनाम न मिला। वररूचि शकडाल की पत्नि लाछलदेवी से मिला और उसे मीठे वचनों से खुशकर महामात्य के द्वारा प्रशंसा करवाने का आग्रह किया। लाछलदेवी ने स्वीकार किया और पति से कहा। गरीब और बिचारा है। पुण्य होगा। आदि कई बातें की। शकडाल ने पत्नी के आग्रह को स्वीकार किया। अब राजा प्रति दिन पारितोषिक देने लगा। मंत्री ने सोचा यह तो अनुचित हो रहा है। मिथ्यात्व की अभिवृद्धि के साथ राजभंडार खाली होने की आशंका है। कोई उपाय करना होगा। सोचते-सोचते उसे अपनी पुत्रियों की स्मरण शक्ति याद आयी। वह घर आया। चेहरे पर उदासी छायी हुई थी। चिन्ता के चिह्न देखकर यक्षा ने पूछा। शकडालने सारी बात बतायी। यक्षा ने कहा कोई उपाय? मंत्री ने कहा उपाय तुम पर आधारित है। यक्षाने पूछा, 'कैसे?' मंत्री ने कहा, 'तुम्हारी स्मरणशक्ति तीव्र है। तुम सातों बहनें क्रमशः एक दो से सात बार श्रवण करने पर याद रख लेती हो। सो वररूचि के श्लोक सभा में उसके बोलने के बाद बोलना है। शेष मैं संभाल लूंगा।' यक्षा ने कहा, 'हमारी स्मरणशक्ति का यह दुरूपयोग नहीं है?' शकडाल ने कहा, 'नहीं। दिखाई देनेवाला दुरूपयोग वास्तव में सदुपयोग है।' पिता की आज्ञा सभी बहनों ने स्वीकृत की।

वररूचि ने एक सौ आठ श्लोक प्रति दिन के अनुसार बोले। महामात्य ने कहा, 'ये तो पूराने श्लोक हैं। इस सभा में पूराने श्लोक बोलना सभा का अपमान है। अतः नये श्लोक बनाकर लाना।' वररूचि ने कहा, 'मैं प्रतिदिन नये श्लोक ही बोल रहा हूँ। यह पूराने नहीं हैं।' राजा ने पूछा, 'ये पूराने है इसका सबूत।' महामात्य ने कहा, 'ये श्लोक मेरी पुत्रियों को भी याद हैं।' राजा की आज्ञा से पुत्रियाँ सभा में आयी। वररूचि के बोलने के बाद क्रमशः सातों

ने वे श्लोक क्रम के अनुसार बोल दिये। वररूचि अपमानित हुआ। उसने शकडाल का प्रतिशोध लेने का निर्णय किया।

इधर वररूचि ने एक चाल चली। उसने एक यंत्र बनाया और उस यंत्र को गंगा किनारे जल में लगा दिया। उसकी कल किनारे रेत में रखी। रात को उसमें एक सौ आठ मोहरों की एक पोटली रख देता था और प्रातः गंगा की स्तुति कर कल दबाता था। पोटली उछलती उसे वह ले लेता था। देखनेवालों ने बात प्रसारित की। वररूचि को गंगा मैया पारितोषिक देती है। बात उडती उडती राजा के कानों आयी। राजाने महामात्य को कहा। महामात्य ने कहा, 'कल जायेंगे।' शकडाल ने गुप्तचर वररूचि के पीछे लगा दिया। गुप्तचर ने पोटली रखते देखा। महामात्य की आज्ञानुसार गुप्तचरने पोटली लाकर शकडाल के हाथ में दे दी। प्रातः राजा, शकडाल और अनेक राजमान्य लोगों के साथ प्रजा भी अत्यधिक संख्या में गंगा किनारे उपस्थित थी। वररूचि आनंद में आकर उच्च स्वर से स्तुति करने लगा। लोग वाह-वाह करने लगे। स्तुति पूर्ण होते ही पैर से कल दबायी, पर पोटली न आयी। दो-तीन-चार बार दबायी पर पोटली कहाँ से आये? वररूचि खिन्न हो गया। एन अवसर पर यंत्र ने धोखा दे दिया। राजा प्रजा सब आश्चर्य चकित थे। प्रति रोज गंगा मोहरें देती थी, आज क्या हुआ? राजा एवं प्रजा की शंका का समाधान करने के लिए एवं वररूचि की माया प्रकट करने के लिए महामात्य बोले, 'भूदेवजी! गंगा मैया ने रात को मेरे पास आकर, यह पोटली मुझे देकर कहा था कि आप यह पोटली उसे देकर, मेरे साथ माया करने का निषेध कर दें। गंगा मैया तो परम पवित्र है। गंगा मैया के नाम का आपने दुरूपयोग किया है। भविष्य में ऐसी माया कभी न करें। पोटली दे दी गयी। परंतु सम्मान मिट्टी में मिल गया। अपमानित होकर वररूचि चला गया। उसके मन में महामात्य के प्रति और भी ज्यादा रोष उत्पन्न हो गया।

कुछ दिनों के बाद श्रीयक के विवाह का प्रसंग आया। शकडाल ने सोचा श्रीयक महाराजा का अंगरक्षक है। उसके विवाह के प्रसंग पर राजा को हथियारों की भेंट दी जाय। शकडाल ने गुप्त रूप से शस्त्र बनवाने प्रारंभ किये। वररूचि ने शकडाल की एक दासी को रिश्वत देकर अपनी ओर कर ली थी। उससे ये समाचार मिले। उसने एक श्लोक बालकों को सिखाया और बालक राजमहल के आसपास, इस श्लोक को बोलने लगे।

''ए हु लेवु नवि जाणइ जं सयडाल करेइ।
राय नंदु मारविउ सिरियउ रज्जि ठवेसइ।।
राजा नन्दो न जानाति, शकडालस्य दुर्मतिम्।
हत्वैनं निजपुत्राय, राज्यमेतप्रदित्सति।।''

शकडाल की दुर्बुद्धि नंद राजा नहीं जानता है। शकडाल राजा को मारकर अपने पुत्र

श्रीयक को राज्य दे देगा।

नन्द राजा ने गुप्तचरों के द्वारा खोज करवाई तो शस्त्र बनाने की बात मिली। राजा महामात्य पर कुपित हुआ। राजा की कुपित नजर से शकडालने मामला समझ लिया। राजा पूरे परिवार की हत्या करवाने जा रहा है, ऐसा जानकर घर आकर श्रीयक से कहा, 'पूरे परिवार के, एवं राज्य के नाश से बचने के लिए तुम कल राजा को प्रणाम करते समय मेरा शिर काट डालना। उस समय मैं मुंह में विष रख दूँगा। तुझे पितृ हत्या का पाप नहीं लगेगा।' चर्चा विचारणा के बाद श्रीयक ने स्वीकार किया। प्रातः महामात्य के प्रणाम के समय तलवार चमकी। राजा कुछ सोचे इसके पहले ही महामात्य का मस्तक भूमि पर गिर पडा। राजा ने तलवार चलानेवाले श्रीयक का हाथ पकडा। श्रीयक ने कहा, 'आपके अहित चिन्तक का तो नाश होना ही चाहिए। अब आप कहें, तो मेरा मस्तक भी हाजिर है।' राजाने सब बातें पूछी। सत्य सामने आया। राजाने शकडाल के मस्तक को छाती से लगाया। अन्त्येष्टि क्रिया की गयी।

राजा ने श्रीयक को मंत्री मुद्रा के लिए कहा तब श्रीयक ने कहा, 'इसका अधिकार मेरे ज्येष्ठ भ्राता स्थूलिभद्र को है, अतः उन्हें दीजिए।' राजा ने स्थूलिभद्र को बुलाया। स्थूलिभद्र ने विचारकर जवाब देने का कहा। स्थूलिभद्र राजोद्यान में गया। सोचा, 'यह कैसा संसार है मैं पिता की मृत्यु से भी अनभिज्ञ रहा! पिता की अकाल मृत्यु हुई। ऐसी मंत्री मुद्रा से क्या लाभ है? मैं उच्च कुल में जन्मा, वेश्या के घर बारह वर्ष का वास किया। यहाँ क्या है? सुख कहाँ है? मुझे यहाँ नहीं रहना है।' बचपन के संस्कार स्थूलिभद्र में जागृत हो गये। एक झटके में मोह को मार भगाया और लोच कर दिया। देवप्रदत्त वेश पहनकर राजसभा में आकर धर्मलाभ का आशीर्वाद दिया। राजा ने पूछा, 'यह क्या?' मुनि ने कहा, 'यही उचित लगा।' धर्मलाभ का आशीर्वाद देकर मुनि संभूतिविजय के पास गया। राजाने यह सोचकर गुप्तचर भेजा कि यह कोशा के घर जायगा। परंतु राजा को स्थूलिभद्र के आचार्य के पास जाने के समाचार मिले। राजा ने श्रीयक को मंत्रीपद दिया।

श्रीयक राज्य के महामात्य पद को पाकर भी अपने पिता की मृत्यु को भूला नहीं था। वह कभी-कभी कोशा वेश्या के पास उसे सांत्वना देने जाता था। कोशा ने स्थूलिभद्र को पति एवं श्रीयक को देवर के रूप में ही माना था। वह बाजारू वेश्या नहीं थी। एक बार बात-बात में श्रीयक ने कहा, 'तुझे वियोगाग्नि में तपानेवाला नीच ब्राह्मण वररूचि है।' कोशा के पूछने पर श्रीयक ने सारी हकीकत बता दी। कोशा ने कहा, 'अब क्या करें?' श्रीयक ने कहा, 'मैंने सुना है, यह तेरी छोटी बहन उपकोशा के घर आता है। उपकोशा को कहकर उसे मद्यपान करवाना प्रारंभ करवा दे। फिर मैं बदला ले लूंगा।' वररूचि मद्यपी हो गया। वह

राजसभा में भी आता था।

एक बार राजा ने महामात्य की प्रशंसा की और कहा, 'मेरे हाथों में से एक अनमोल रत्न निकल गया।' तब श्रीयक ने कहा, 'राजन्! इसका मूल कारण मद्यपान करनेवाला वररूचि है।' राजाने पूछा, 'क्या वररूचि मद्यपान भी करता है?' श्रीयक ने कहा, 'कल आपको सभा में बताऊँगा।' दूसरे दिन मंत्रीने सभी सभासदों को नौकर के द्वारा कमल का फूल दिलवाया। वररूचि को फूल सूँघते ही वमन हो ऐसी औषधि से मिश्रित फूल दिया। वररूचि ने फूल सूँघा। थोडी देर में उसे वहीं वमन हुआ और चन्द्रहास मदिरा की गंध का अनुभव सभी सभासदों ने किया। सबने उसे फटकारा। 'विप्र होकर मदिरापान करता है।' वररूचि सभा से अपमानित होकर निकला। उसने पंडितों से मदिरापान का दण्ड मांगा। पंडितोंने गरम सीसा पीने को कहा। उसने गरम सीसा पीया और मर गया।

कुछ दिनों के बाद श्रीयक एवं सातों बहनें संसार से विरक्त होकर दीक्षित हुए। श्रीयक शारीरिक रूप से कमजोर होने से नौकारशी से अधिक तप नहीं कर सकता था। कुछ वर्षों के बाद श्रीयक अपने गुरुदेव के साथ, एवं सातों साध्वियाँ अपनी गुरूणी के साथ एक नगर में चातुर्मास हेतु स्थित थे। पर्युषण में संवत्सरी के दिन यक्षा की प्रेरणा से श्रीयकने नौकारशी से पोरसी, पुरिमड्ढ अवड्ढ किया। पुनः प्रेरणा की। 'अब तो एक रात ही है।' उसने उपवास कर लिया। मन मजबूत था। तन निर्बल था। मन की मजबूती टीकी रही। अंशमात्र भी दुर्भाव मनमें नहीं आया, परंतु तन न टिका। प्राण प्रयाण कर गये। श्रीयक मरकर देव हुआ। प्रातः यक्षा ने सुना। पश्चाताप हुआ। 'मैंने मुनि की हत्या की। प्रायश्चित दीजिए।' गुरूदेव ने कहा, 'तुमने उसका हित किया है। इसका कोई प्रायश्चित नहीं है। उसने समाधिपूर्वक प्राण त्यागे हैं।' परंतु यक्षा के मन का समाधान न हुआ। उसने संघ के साथ काउस्सग्ग किया। देवी आयी। और यक्षा को सीमंधर स्वामी के पास ले गयी। वहाँ भगवान के मुख से अपनी निर्दोषता सुनी, तब संतोष हुआ? देशना में उसने वहाँ जो भी सुना, उसे आकर संघ को समर्पित किया और वह वर्णन चार चूलिकाओं के रूप में आगमों में आज भी निबद्ध है। दो चूलिकाएँ आचारांग में और दो चूलिकाएँ दशवैकालिक में।

इधर स्थूलिभद्रजी तप-जप के साथ ज्ञानार्जन में निमग्न थे। चातुर्मास का समय आ रहा था। सभी मुनि चातुर्मास की विचारणा में थे। तपस्वी मुनिराज कहीं एक स्थान पर चारमहिने की स्थिरता करते थे। उस समय स्थूलिभद्र सोचते थे, जिसके साथ बारह वर्ष व्यतित किये, उस कोशा को धर्म मार्ग में प्रेरित करना मेरा कर्तव्य है।

एक मुनि ने गुरूदेव श्री संभूतिविजयजी से कहा, 'भगवंत! मैं सिंह की गुफा के पास चातुर्मास करना चाहता हूँ।' दूसरे ने कहा, 'मैं सर्प के बिल के पास चातुर्मास करना चाहता

हूँ।' तीसरे ने कहा, 'मैं कुएँ पर चातुर्मास करना चाहता हूँ।' गुरूदेव ने तीनों को अनुमति दी। स्थूलिभद्र ने कहा, 'गुरूदेव! मैं कोशा की चित्रशाला में चातुर्मास करना चाहता हूँ।' उनको भी आज्ञा प्रदान की। चारों अपने गन्तव्य स्थान की ओर चले। दोनों मुनिवरों के जप-तप से सिंह और सर्प शान्त हो गये। कुएँ पर आनेवाली पनिहारनें भी मुनिवर के तप त्याग से प्रभावित हुईं।

इधर कोशाने मुनि को अपने घर की ओर आते देखकर, वह अत्यंत प्रमुदित होकर द्वार पर आयी। मुनि को पधारने हेतु निमंत्रण दिया। मुनि ने आज्ञा मांगी, चातुर्मास के लिए। कोशा बोली, 'आपके घर में आज्ञा कैसी?' मुनि ने कहा, 'मैं मुनि हूँ।, मेरा कोई घर नहीं। मुनि आज्ञा के बिना कहीं ठहर नहीं सकते।' कोशा ने आज्ञा दी। मुनि अंदर गये और चित्रशाला में आसन बिछाया। कोशा नित नये श्रृंगारकर सज-धज कर आने लगी। कामोत्तेजक आहार वहोराने लगी। हाव-भाव, नृत्य आदि होने लगा। मुनि एक शब्द भी नहीं बोले। जो करना है, उसे करने दिया। आये उसी दिन कह दिया था कि मुझसे तेरह हाथ दूर रहना होगा। और कोशा भी तेरह हाथ दूर रह कर मुनि को अपनी ओर आकर्षित करने हेतु उद्यम करती थी। कुछ ही दिनों में कोशा की आशा निराशा में पलटने लगी। उसे लगने लगा कि ये मुझ पर प्रीति धारण करें, ऐसा नहीं लगता।

मुनि ने देखा कि अब लोहा गरम हो गया है, तब मुनि ने कहा, 'कोशा! मैं बारह वर्ष तेरे पास रहा, तूने और मैंने क्या पाया? इस पर विचार कर। मानव जन्म मिला और गंदी काया में गंदे सुखों में, गंदे कार्यों में आयुष्य के वर्ष पर वर्ष व्यतित कर दिये। खोया कितना? पाया कितना? इसपर विचार कर। क्या यह काया अमर है? क्या सुखोपभोग से तृप्ति होती है? तूने बारह वर्ष मेरे साथ सुखोपभोग किया, क्या तू तृप्त हुई? शांत चित्त से सोच। पूर्व भवों में देव-देवांगनाओं के अनेक भोग भोगे। आत्मा तृप्त हुई? भौतिक भोगों में सुख कितना और उसके फल रूप में दुःख की परंपरा कितनी? क्या यहाँ से नरकादि दुर्गतियों में भ्रमण करने जाना है? नीचे गिरना है? या ऊपर चढना है? सुख एवं दुःख की वास्तविक व्याख्या को समझ।'

कोशा विचाराधिन हुई। उसे मुनि के एक एक वाक्य में सत्य का अनुभव होने लगा। उसका चिन्तन सत्य के समीप जाने लगा। उसकी आत्मा पर से वासना के पडल हटने लगे। अब वह अंतर से मुनि के समीप आने लगी। आहार निर्विकारी होने लगा। वस्त्रों में मर्यादा का प्रवेश हुआ। बोलने में समता की सुगंध आने लगी। अब वह मुनि की बातें ध्यानपूर्वक सुनने लगी। मुनि धर्मोपदेश के नीर से उसके कर्म मल को धोने लगे। फल स्वरूप कोशा सम्यग्दर्शन पूर्वक व्रतधारिणी श्राविका बन गयी। चातुर्मास का शेष समय तत्त्व ज्ञान को प्राप्त करने में पूर्ण किया। उसने चतुर्थ व्रत में राजा द्वारा प्रेषित व्यक्ति के अलावा पूर्ण ब्रह्मचर्य

स्वीकार किया। राजवेश्या जो थी। कोशा उत्कृष्ट श्राविका बन गयी।

चातुर्मास पूर्ण होते ही सिंह गुफावासी आदि मुनि आचार्य भगवंत के पास आये। आचार्य ने तीनों को 'दुष्कर कारक' कहकर स्वागत किया। स्थूलिभद्र मुनि आये। गुरूदेव ने तीनबार दुष्करकारक कहकर स्वागत किया। सभी आनंदित हुए। परंतु सिंह गुफा पर ध्यान मग्न रहनेवाले मुनि को यह सम्मान मंत्री पुत्र होने का कारण लगा। गुरूदेव पर पक्षपात का आरोप अपने मनमें लगा दिया। आठ महिने पूर्ण हुए। सिंह गुफावासी मुनि ने गुरूदेव से कोशा वेश्या के घर चातुर्मास की आज्ञा मांगी। गुरूदेव समझ गये कि ईर्ष्या के कारण आज्ञा मांग रहा है। गुरूदेव ने कहा, 'वत्स! यह काम स्थूलिभद्र का ही था अन्य का नहीं।' बहुत समझाया पर न माना। गुरू की इच्छा नहीं होते हुए भी वह मुनि गया। कोशा समझ गयी कि ईर्ष्या से आये हैं। मुनि के आज्ञा मांगने पर उसने आज्ञा दी। परंतु सामान्य स्थान दिया। आहार भी सामान्य वहोराया। शिष्टाचार के नाते एकाध बार जाती थी। थोडे दिनों में मुनि की मनोवृत्ति चंचल हो गयी। उसे देखते ही विकार आने लगा। निष्कारण उसे बिठाने लगे और बातें करने लगे। कोशा सब समझ गयी। पर श्राविका जो थी। वह अपनी ओर से कोई निमित्त बनना नहीं चाहती थी। विपरीत चिंतन से मुनि को बचाना चाहती थी। पर मुनि बचना नहीं चाहते थे। एक दिन मुनि की वासना प्रकट हो गयी, और कोशा से देह की भिक्षा मांगी। कोशा ने उपदेश का अवसर न देखकर कहा, 'हम तो द्रव्य से देह बेचने वाली हैं। आपके पास द्रव्य हो, तो कहो।' मुनि बोला, 'मैं साधु हूँ, मेरे पास द्रव्य कहाँ?' तो महाराज हमारी देह भी कैसे मिलेगी?' मुनि के मन पर वासना ने कब्जा कर लिया था। मुनि ने पूछा, 'द्रव्य का कोई उपाय?' कोशा ने कहा, 'एक उपाय है। नेपाल देश का राजा नये साधु को सवा लक्ष की रत्न कंबल देता है। वह ले आओ तो कार्य हो सकता है।' वासना की गुलामी ने चातुर्मास में नेपाल की ओर दौडाया। अनेक संकटों का सामना कर, कष्ट सहन कर, जीव विराधना कर नेपाल गया। रत्न कंबल मिली। मार्ग में चोरों का स्थान आया। पोपट ने आवाज दी। लक्ष मूल्य जा रहा है। चोरों ने रत्न कंबल छीन ली। पुनः गया। अनुनय कर रत्नकंबल प्राप्त की, और एक बांस में भरकर चला। मार्ग में उसी पोपट ने आवाज दी। चोर आये। धन न मिला। चोरों ने कहा, 'हमारा यह पक्षी झूठ नहीं बोलता। आपके पास धन हो तो बता दो, हम नहीं लेंगे।' साधु ने सत्य कहा, चोरों ने साधु को जाने दिया।

साधु ने रत्नकंबल कोशा को दी। कोशा ने कहा, 'मैं अभी स्नान कर के आती हूँ।' स्नान करके, उसने रत्न कंबल से पैर पौंछकर नाली में फैंक दी। साधु चिल्लाया, 'यह क्या किया? कितने कष्ट सहनकर मैं तेरे शरीर की शोभा के लिए ले आया और तुझे इसकी कोई किंमत नहीं जो तूने इसे गंदी नाली में फैंक दी।' कोशा बोली, 'महाराज! मूल्यवान पदार्थ

खराब न होना चाहिए इतना ख्याल तो हैं न?' मुनि बोला, 'इसलिए तो तुझे कह रहा हूँ, कि तूने यह क्या किया?' कोशा बोली, 'मुनि! यह रत्नकंबल तो धोने से शुद्ध हो सकती है। पर आप इस नरभव रूपी रत्न एवं चारित्र रत्न को बारह द्वार से अशुचि निकालनेवाली इस गंदी काया रूपी नाली में फैंकने को तैयार हो गये हो, इसका विचार नहीं करते। मेरी काया के संग से क्षणिक नकली सुख के बदले मिलेगी नरक निगोद के अनंत दुःख। आप रत्न कंबल कितने कष्ट से लाये, कहते हैं, पर आपको यह नरदेह एवं संयम देह कितने कष्ट से मिला है, इस पर आप सोचो। आप यहाँ स्थूलिभद्रजी के समान बनने के लिए आये हैं। उस समय मैं उनकी आशिक थी। मैंने उन्हें लुभाने के लिए हर संभव प्रयत्न किये, पर मैं हारी, और वे जीते। पर आप तो मुझे सामान्य वस्त्र में देखकर ही मोहित हो गये। विचार करो।'

मुनि की ज्ञानदृष्टि पर जो अज्ञानता के पडल आये थे वे कोशा के सदुपदेश रूपी पवन से दूर हो गये। मुनि शीघ्र ही स्थिर हो गये। कोशा को धन्यवाद देकर चलने लगे। तब कोशा ने क्षामायाचना की कि, 'मैंने आपको नेपाल तक भेजने का जो कष्ट दिया, एवं जो शब्द कहे उसके लिए क्षमा करावें।' मुनि ने कहा, 'तुमने मुझ पर महान उपकार किया है।' मुनि पश्चाताप की आग लेकर गुरू के पास आये। स्थूलिभद्रजी से क्षमायाचना की। गुरू से प्रायश्चित लेकर शुद्ध हुए।

उस समय द्वादश वर्षिय दुष्काल पडा। श्रमण जीवन दुर्धर तो है ही। आहार का अंतराय और आहार की दुर्लभता से अनेक मुनि भगवंतों ने अनशन कर लिया। कई मुनि भगवंत आहार के अलाभ के कारण स्वाध्याय में लीन न रह सके। ज्ञान विस्मृत होने लगा। सुकाल के समय में श्रमण संघ एकत्रित हुआ। सूत्रार्थ का विचार हुआ। एकादशांग तो व्यवस्थित हो गये, परंतु दृष्टिवाद विस्मृत हो गया था। किसीको याद नहीं था। विचार करते हुए मुनि मंडल को श्री भद्रबाहु स्वामी की याद आयी। वे नेपाल देश में तप कर रहे थे। संघने दो साधुओं को उनको बुलाने भेजा। साधुओं के आने पर श्री भद्रबाहु स्वामीने कहा, 'मैं प्राणायामध्यान सिद्ध कर रहा हूँ, अतः मैं नहीं आ सकूंगा।' संघाटक मुनि ने संघ को कहा। संघने विचार कर निर्णय किया कि वे न आऐं तो उन्हें संघ बाहर करना। पुनः दो मुनियों को भेजा। संघ की आज्ञानुसार पूछा जो व्यक्ति संघ की आज्ञा न माने उसे कौनसा दंड देना चाहिए? श्री भद्रबाहु स्वामीजी ने कहा, 'दंड तो गच्छ बाहर करना है, पर संघ से मेरा निवेदन है कि अध्ययन पात्र साधुओं को मेरे पास भेज दें। मैं उनको वाचना दूंगा। मेरा भी काम होगा और शासन का काम भी होगा।' संघाटकने आकर संघ से कहा और संघ ने स्थूलिभद्र की मुख्यता में पांचसौ साधुओं को भद्रबाहु के पास भेजा। साधुओं ने अध्ययन प्रारंभ किया। पूर्वो के श्लोक लेना और याद करना दुष्कर कार्य था। अल्पावधि में ही साधु वहाँ से विहार

करने लगे। अंत में एक स्थूलिभद्रजी रहे। इधर दश पूर्व पूर्ण हो रहे थे। और ध्यान भी पूर्ण हो गया। श्रीभद्रबाहु स्वामीजी ने वहाँ से विहार किया, पाटलीपुत्र आये। दशपूर्व का अध्ययन पूर्ण हो गया था।

सातों बहनों को समाचार मिले। वे भाई मुनि को वंदनार्थ पाटलीपुत्र आयी। श्री भद्रबाहु स्वामी की आज्ञा लेकर स्थूलिभद्रजी एक गुफा में अध्ययन कर रहे थे। स्थूलिभद्रजी सातों बहनों को आती देखकर ज्ञान का चमत्कार बताने के लिए सिंह का रूप लेकर बैठ गये। सातों बहनें सिंह को देखकर आचार्य महाराज के पास गयी। गुरूदेवने ज्ञान से स्थूलिभद्र के ज्ञान के दुरूपयोग को देखा। साध्वियों से कहा, 'पुनः जाओ, वहाँ तुम्हारा भाई मुनि मिलेगा। साध्वियों ने दर्शन किये। श्रीयक की आराधना की सारी बात बतायी। वंदनादि कर अपनी जगह गयी।

स्थूलिभद्र मुनि वाचना लेने आये। भद्रबाहु स्वामी ने मना किया। तुममें योग्यता नहीं है। स्थूलिभद्र स्वयं की भूल देखने लगे। याद आया कि सिंह का रूप किया था। क्षमायाचना करने लगे। परंतु भद्रबाहु स्वामी ने वाचना देने का स्पष्ट निषेध किया। अपात्र को ज्ञान देकर मैं ज्ञान का एवं तेरा अहित करना नहीं चाहता। मुनि में ज्ञानार्जन की तीव्र इच्छा थी। उन्होंने श्रमणसंघ से निवेदन किया। संघने भद्रबाहु स्वामी को आग्रह किया। भद्रबाहु स्वामीने कहा, 'शासन के हित के लिए ही मैं यह ज्ञान मेरे साथ ले जाना चाहता हूँ। भविष्य के मुनि इस ज्ञान को पचा नहीं सकेंगे। शासन की अवहेलना होगी। अतः आप मुझे आग्रह न करें।' फिर भी संघने स्थूलिभद्रजी की ज्ञानपिपासा को शांत करने के लिए अत्याग्रह किया। तब भद्रबाहु स्वामीजीने दो शर्तें रखी।

(१) शेष चार पूर्व मूल ही सिखाऊँगा। उसका रहस्य नहीं बताऊँगा।

(२) यह ज्ञान किसीको न देना। तुम्हारे तक ही रहना चाहिए।

चार पूर्व सीखकर स्थूलिभद्रजी चौदहपूर्वी बनें। आचार्य भद्रबाहुस्वामीने स्थूलिभद्रजी की योग्यता देखकर उन्हें आचार्य पद दिया।

एकबार आचार्य श्री स्थूलिभद्रजी श्रावस्ती नगरी में आये। वहाँ उनको अपना पूर्व का मित्र धनदेव दिखाई न दिया। उसके घर गये। पूछा तो धनेश्वरी ने निर्धनावस्था की बात की। उस समय आचार्यश्री की नजर बार-बार एक स्तंभ की ओर जा रही थी। इस बात को धनेश्वरीने कुछ संकेत समझा। आचार्यदेव विहार कर गये। धनदेव परदेश से आया। तब धनेश्वरीने सारी बात बताई। धनदेवने स्तंभ दूर करवाया तो नीचे धनभंडार मिला।

आचार्य श्री स्थूलिभद्रजी ने ग्राम,नगर विहार कर अनेक भव्यात्माओं को प्रतिबोध दिया। उनके पट्टधर आर्य महागिरि और आर्य सुहस्तिसूरि हुए।

स्थूलिभद्रजी ३० वर्ष गृहस्थावस्था में, २४ वर्ष साधु पर्याय में और ४५ वर्ष युगप्रधान आचार्यपद पर रहे। वीर निर्वाण संवत २१५ में वे स्वर्गवासी हुये।

- *अनादि अनंत काल से गुणी व गुण पूजे जा रहे हैं और इनकी प्रशंसा द्वारा कितने ही गुणी बने हैं। भविष्य में जितने गुणी बनेगें वे इसी प्रक्रिया द्वारा ही अर्थात् गुणी बनने हेतु शिष्टाचार प्रशंसा का गुण आत्मसात् अति आवश्यक है।*
- *किसी के मानने न मानने से पाप पुण्य नहीं हो जाता और पुण्य पाप नहीं हो जाता। पाप पाप ही रहेगा, पुण्य पुण्य ही रहेगा।*
- *सर्प से, सर्प के बिल से, विष से विषैले पदार्थों से लोगों को जितना भय होता है उससे कई गुना अधिक भय पापकारी कार्यों से होना चाहिए।*
- *पाप का डर हृदय में बिठाने हेतु हर कार्य करते समय सोचो इस कार्य से मुझे क्या लाभ? क्या हानि? प्रतिदिन प्रति समय सोचो पाप का डर आत्म मंदिर में प्रवेश हो जायगा।*
- *परनिंदा करने वाला तो पापी है ही अपितु परनिंदा श्रवण कर्ता तो महापापी है। सुननेवाला न होगा तो निंदक निंदा सुनायेगा किसको? निंदा सुननेवाला निंदक को निंदा करने हेतु अपरोक्ष रूप में उत्साहित कर लेता है और वह बार-बार अन्य की निंदा करता रहता है।*
- *बुराई को दूर करने की दृष्टि से यदि आलोचना की जाय तो उसे निंदा नहीं कहते।*
- *जिस व्यक्ति में हमने कोई दोष देखा वह व्यक्ति परिचित है शांत स्वभाव धारी है तो उसे विनयपूर्वक कहा जाता है। पिता पुत्र को, गुरु शिष्य को, पति पत्नि को समय-प्रसंगानुसार कठोर शब्दों में भी आलोचना कर कह सकते हैं। मुख्यता उस व्यक्ति के दोषों को निकलवाने की भावना की हो तो निंदा नहीं और उसे नीचे दिखाने हेतु से कहा जाय वह निंदा है।*

– जयानंद

अल्पज्ञान महाफल

भरतक्षेत्र में विशाला नगरी थी। धन, धान्य, जनता और गुण समृद्धि उस नगरीमें भरपुर थी। लोग चिन्तनशील थे। उस नगरी की शोभा यव नामक राजा से और भी ज्यादा थी। राजा न्यायनिष्ठ और संतोषी था। शक्ति संपन्न होते हुए भी उसने कभी पडौस के छोटे राजाओं की ओर आंख उठाकर नहीं देखा। जिससे आस-पास के सभी राजा यव राजा के मित्र बनकर यदा कदा उससे मिलने आया करते थे। वह भी सब का यथोचित सम्मान करता था। उसके गर्दभिल्ल नामक पुत्र, अणुमल्लिका पुत्री और दीर्घपृष्ठ नामक मंत्री था। राज्य की व्यवस्था सुचारू रूप से चल रही थी। राजा को जैनधर्म पर अत्यंत श्रद्धा थी। वह धर्म जागरिका करता रहता था।

एक दिन प्रातः धर्म जागरिका में स्वयं की उम्र का विचार आया, और सोचा कि पुत्र राज्य के योग्य हो गया है, पुत्री की शादी का कार्य कर ही देगा। मुझे अब आत्महित करना चाहिए। संसार की माया ममता को छोडकर चारित्र ग्रहण करना ही मेरा परम कर्त्तव्य है। इस प्रकार के विचारों के द्वारा अपने विराग को पुष्ट कर रात्रि पसार की। प्रातः अपने मंत्रियों को बुलाकर अपना विचार प्रकट किया। और पुत्र का राज्याभिषेक कर सद्गुरू भगवंत के पास चारित्र ग्रहण किया।

यव राजर्षि ग्रहण शिक्षा और आसेवन शिक्षा के द्वारा अपनी आत्मा को भावित करते थे। उसमें उनका ध्यान तप-जप में अधिक होने से अध्ययन की इच्छा अधिक नहीं होती थी। गुरूदेव ने प्रेरणा दी तो कहा, 'गुरूदेव! मेरी वृद्धावस्था में अधिक ज्ञानार्जन नहीं हो सकेगा, अतः मुझे तप-जप में ध्यान लगाने दीजिए।' फिर भी गुरूदेव ज्ञान की महत्ता समझाते, पर अपनी उम्र के कारण अपने आपको योग्य न समझकर अधिक अध्ययन नहीं किया।

एक बार गुरूदेवने उनको गर्दभिल्ल को प्रतिबोधित करने का आदेश दिया। यव राजर्षिने सोचा, 'मैं क्या उपदेश दूंगा? कैसे प्रतिबोध दूंगा?' परंतु गुर्वाज्ञा का भंग करना भी उचित नहीं, ऐसा सोचकर गुरू का आशीर्वाद लेकर विहार किया। मार्ग में एक खेत के पास मुनि रूके, तो वहाँ एक किसान एक गधे को खेत में घुसते देख बोला,

''ओहावसि पहावसि मम चेव निरखसि

लखिओ ते अभिप्पाओ जवं भखेसि गद्हा।।''

हे गर्दभ! तूं शीघ्रता से आता है, मुझे देखता है। पर, मुझे तेरे मन की बात समझ में आ गई है कि तुझे 'यव' का भक्षण करना है।

यव मुनि ने उस गाथा को ध्यान से सुना और सोचा कुछ न कुछ काम में आयगी, अतः इसे याद करलूँ। विहार में उस गाथा को याद कर ली। आगे एक स्थान पर बालक गुल्ली डंडा से खेल रहे थे। एक बालक ने गुल्ली को जोर से डंडा मारा। गुल्ली दूर खड्डे में गिर गयी। बच्चोंने ढूंढी, पर न मिली। एक बच्चा वहाँ शांत खडा था। उसने कहा,

'अओ गया तओ गया जाइज्जति न दीसई।

अम्हे न दिट्ठि तुम्हे न दिट्ठि अगडे छुडा अणुल्लिया।।'

अर्थ-यहाँ से गयी, वहाँ से गयी, ढूंढने पर भी न मिली। हमने न देखी, तुमने भी न देखी, पर वह अणुल्लिका (गुल्ली) खड्डे में है।

यव मुनि को आनंद आया और वह गाथा भी याद कर ली। आगे चलते हुए विशाला नगरी के पास में आये, रात हो गयी। वहाँ एक कुंभार के घर ठहरे। कुंभार चूहे को इधर-उधर दौडते देखकर बोला,

'सुकुमालय कोमल मुद्दलया तुम्हे रत्ति हिंडणसीलणया।

अम्ह पसायोनत्थिते भयं दिह पिट्ठाओ तुम्हे भयं।।'

हे सुकुमार अंगवाले! तेरा स्वभाव रात को चलने का है। परंतु तुझे हमारा भय रखने की जरूरत नहीं। तुझे तो दीर्घपृष्ठ (साँप) से भय है। उस गाथा को सुनने में आनंद आने से उसे भी याद करने लगे, और रात को तीनों गाथाएँ क्रमशः बोलने लगे।

इधर दीर्घपृष्ठ मंत्री के मन में पाप समा गया। उसने अणुल्लिका (राजा की बहन) का अपहरण कर उसे अपने घर के तहखाने में रख दी थी। वह राजा गर्दभिल्ल को मारने की योजना बना रहा था। खुद राजा बनना चहता था। राजा बहन को खोजने का अथक प्रयत्न कर रहा था।

इधर मंत्री को समाचार मिले कि यव राजर्षि आये हैं। वह घबराया। मुनि ज्ञानी बने होंगे। वे सारी बातें बता देंगे। अतः वे नगर में आवें उसके पूर्व ही उन्हें राजा के हाथों से ही यम लोक भेज दूँ। पापी एक पाप में प्रवृत्त होता है, तब उसे विचार ही नहीं रहता कि पाप की परंपरा प्रारंभ हो जायगी। दीर्घपृष्ठ रात को राजा के पास गया, और कहा, 'राजन्! यव मुनि आये हैं और वे आपका राज्य लेना चाहते हैं।' गर्दभिल्लने कहा, 'यह तो अत्युत्तम है। मैं खुशी से राज्य देकर उनकी सेवा करूंगा।' मंत्री ने कहा, 'आप तो भोले हैं। वे आपका राज्य लेकर किसी दूसरे पुत्र को देना चाहते हैं। अतः आप विचारें।' इस बात से राजा को क्रोध आ

गया और वह अकेला पिता मुनि की हत्या करने चला। दीर्घपृष्ठ आनंदित होकर घर लौटा। वह भविष्य के सुंदर सपनों में खो गया। पर उसे मालूम नहीं था, कि जो दूसरों के लिए खाई खोदता है, उसमें खोदनेवाला खुद ही गिरता है।

गर्दभिल्ल कुंभार के घर आया और एकांत में यव राजर्षि जो बोल रहे थे उसे सुनने लगा। यवराजर्षि उन तीन गाथाओं का पुनरावर्तन करते थे।

ओहावसि पहावसि ममं चेव निरखसि।

लखिओ ते अभिप्पाओ जवं भखेसि गद्हा।।

गर्दभिल्ल चमका, सोचा ये कितने ज्ञानी हैं। उसने इस गाथा का अर्थ इस प्रकार किया, 'हे गर्दभिल्ल ! तू इधर उधर देखता है, मैंने तेरा अभिप्राय जान लिया है, तू यवराजर्षि को मारना चाहता है।'

गर्दभिल्ल ने सोचा मैं यहाँ जिस आशय से आया हूँ, इसका इनको ज्ञान हो गया, अब ये आगे क्या बोलते हैं, वह भी सुन लूँ।

मुनि ने दूसरी गाथा बोली,

अओ गया तओ गया जाइज्जति न दीसई।

अम्हे न दिट्ठि तुम्हे न दिट्ठि अगडे छुडा अणुल्लिया।

गर्दभिल्ल ने इसका अर्थ इस प्रकार किया कि, 'यहाँ वहाँ से गई पर जाती हुई किसीने न देखी। न हमने देखी न तुमने देखी। परंतु वह अणुल्लिका तहखाने में है।'

ये कितने ज्ञानी हैं मेरी बहन तहखाने में किसीने रखी है इसका पता भी इन्हें है। अब ये आगे का पता बता ही देंगे। अतः यहाँ चुपचाप खड़ा रहूँ।

मुनि ने तीसरी गाथा भी बोली,

सुकुमालय कोमल मुद्दलया तुम्हे रत्ति हिंडण सीलणया।

अम्ह पसायो नत्थि ते भयं दिहपिट्ठाओ तुम्हे भयं।।

हे सुकुमार, तुम्हारा स्वभाव रात को घूमने का है। परंतु तुझे हम से कोई भय नहीं है। तुझे भय दीर्घपृष्ठ से है। ऐसा अर्थघटन गर्दभिल्लने किया और उस गर्दभिल्ल को अपने पास आकर उकसाने का कारण समझ में आ गया। गर्दभिल्ल पिता मुनि के उपर अत्यंत स्नेहसिक्त हुआ। उसी समय चरणों में गिरकर सारी बातें बता दी। और क्षमायाचना की। मुनिराज को

ऐसी कोई कल्पना भी नहीं थी। पर वे समयज्ञ थे, अतः मौन रहे।

गर्दभिल्ल ने उसी समय नगर में जाकर सैनिकों को भेजकर, मंत्री को और उसके परिवार को कैद कर तहखाने में से अपनी बहन को लायी। मंत्री की सारी संपत्ति जप्त कर, उसे देश निकाले की सजा सुना दी।

राजा ने प्रातः मुनिराज का धाम-धूम पूर्वक नगर प्रवेश करवाया। मुनिराज ने मन में निर्णय किया कि इन सामान्य श्लोकों से मेरे प्राण बचे, जिनशासन की प्रभावना हुई, मेरे पुत्र-पुत्री के प्राण बचे। ज्ञान का प्रभाव कितना अधिक है। अब मुझे शीघ्र ही गुरू भगवंत के पास जाकर अधिक ज्ञानार्जन करना है। वहाँ गर्दभिल्ल को श्रावक बनाकर धर्म में दृढ रहने की हितशिक्षा देकर, अपने गुरू के पास आकर अध्ययन में तल्लीन हो गये।

- *सदाचारी मानवों का संग मानवी को मानवता सह मानव एवं दुराचारी मानवों का संग मानवी को दानवतावान् मानव (दानव) बना देता है।*
- *माता प्रसंगानुकूल कटु शब्द भी कह दे तब भी हृदय में वात्सल्य का सागर तो हिलोले ले ही रहा होता है। पर जन समुदाय मुख पर मीठे बोलेगें उनसे अंतस् में आप पर वात्सल्य की बूंद हो और न भी हो।*
- *मलमूत्र साफ करने वाली माँ संस्कारों से संस्कृत करने वाली माँ सारा कार्य छोडकर रोते हुए बाल को लेकर पुचकारने वाली माँ, जिसके हृदय में पुत्र के प्रति वात्सल्य भरा पडा है वह है माँ।*
- *दुर्गति के भव भ्रमण को रोकने वाला जो धर्म हो उस धर्म की प्राप्ति करवा देता हो जो पुत्र, वह माता पितादि उपकारियों के उपकारों का बदला चुका देता है, यह सुनिश्चित है।*
- *जिन शासन में माता पिता की आज्ञा का पूर्ण पालन करने का विधान है वह आज्ञा जिनेश्वर प्रभु की आज्ञा से आबाधित होनी चाहिए।* - जयानंद

विनय से विशुद्धि

जंबूद्वीप के भरतक्षेत्र की राजगृही नगरी में विहार करते हुए धर्मरूचि आचार्य सपरिवार पधारे। उनके साथ कई मुनि लब्धिवाले थे। और तपस्वी थे। एक बार आषाढाभूति नामके मुनि गोचरी चले। एक नट के घर का द्वार खुल्ला देखकर अंदर गये। धर्मलाभ की आवाज से नवयौवनवंती दो कन्याएँ उन्हें अंदर ले गयी। उन्हें एक मोदक वहोराया। मोदक की मादक सुगंध ने मुनि को मोहित कर दिया। मुनि रसनेन्द्रिय के वश होकर सोचने लगे, 'यह मोदक तो आचार्य महाराज ले लेंगे। मुझे इसका स्वाद नहीं मिलेगा। क्या करूँ?' रसनेन्द्रिय के पोषण के लिए अपनी लब्धि का दुरूपयोग कर दिया। बाहर आकर काने मुनि का वेश बनाकर धर्मलाभ देकर अंदर गये। उन नवयौवनाओंने और एक लड्डु वहोराया। विचार किया कि यह तो उपाध्यायजी ले लेंगे। एक कदम नीचे आनेवाला नीचे ही चला जाता है। उसे ऊपर चढना अत्यंत कठिन हो जाता है। वैसा ही अषाढाभूति के साथ हुआ। तीसरी बार वृद्ध साधु बनके गये, फिर बाल साधु बने, अति युवा साधु बने और किशोरावस्था का रूप लेकर छट्ठा मोदक वहोरा तब जाकर वहाँ से निकले। मुनि यही समझते रहे कि मेरी लीला मुझे ही मालूम है, अन्य को नहीं।

लेकिन उस समय नट झरोखे से अषाढाभूति की कपट लीला देख रहा था, पर कुछ बोला नहीं। मुनि के जाने के बाद नट का चिन्तन चला, 'यह मुनि रसगृद्ध है। रूप परावर्तन में दक्ष है। यह नटकला के योग्य है। इसे मेरी पुत्रियों द्वारा आकर्षित करवा दूँ, तो मेरे घर में धन की वृष्टि होगी।' उसने अपनी पुत्रियों को कहा, 'यह मुनि छः रूप कर तुम्हारे पास छः मोदक वहोर कर गया। यह युवा है, रस गृद्ध है। कल पुनः यहाँ आयगा। तुम अधिकाधिक मोदक वहोराना। रोज पधारने का निमंत्रण देना। उस समय श्रृंगार के साथ रहना और तुम्हारे हाव भाव उस पर कामबाणों की वर्षा करें वैसे करना।

दूसरे दिन भी मुनि आये। पुत्रियों ने पिता की आज्ञानुसार मोदक वहोराये। और निमंत्रण दिया। मुनि प्रतिदिन आने लगे। बातें होने लगी। कटाक्षों ने, कामबाणों ने, उत्तेजक वेश ने, और अंगोपांगों के प्रदर्शन ने मुनि की वासना जागृत कर दी। एक दिन कन्याओं ने विवाह का प्रस्ताव रख दिया। मुनि मन से वासना के सन्मुख हो गये थे। परंतु हृदय में गुरू के प्रति भक्ति थी। मुनि ने कहा, 'मैं गुरूदेव की आज्ञा लेकर आऊँगा।' ऐसा वादा कर मुनि गुरूदेव के पास आये। गोचरी हो जाने के बाद बोले, 'गुरूदेव! मैं नटकन्याओं पर मोहित हो गया हूँ। मैं इस संयम भार को वहन करने में असमर्थ हूँ। आपकी आज्ञा लेने ही मैं यहाँ आया हूँ।' गुरूदेव ने समझाने में कोई कसर न रखी। पर कोई असर न हुआ। भविष्य में इसे पुनः धर्म की प्राप्ति हो, इस हेतु कहा, 'जहाँ मदिरा मांस का सेवन होता हो, वहाँ नहीं रहूँगा। इतनी

प्रतिज्ञा तुम ग्रहण कर लो।' आषाढाभूति ने प्रतिज्ञा ग्रहण कर ली। आषाढाभूति ने कन्याओं को अपनी प्रतिज्ञा की बात कह दी। उन्होंने स्वीकार कर ली। शादी हो गयी। मुनि ने बरबादी अपना ली। अब नट के घर धन की वर्षा होने लगी। चारों ओर आषाढाभूति नट का नाम गूंज रहा था। बारह वर्ष बीत गये। एक नट को उसकी कीर्ति कांटे की तरह चूभ रही थी। वह प्रतिस्पर्धी के रूप में आया। दो दिन का प्रोग्राम था। आषाढाभूति अपनी नट मंडली के साथ गया। इधर दोनों बहनों ने सोचा, 'पतिदेव दो दिन नहीं आयेंगे। मदिरा पिये बारह वर्ष हो गये हैं। पतिदेव अब हम पर मुग्ध हैं। आज तो मदिरा की मस्ती में मग्न हो जायें।' दोनों बहनों ने मांस भोजन और मदिरा का आकंठ पान किया। दोनों एक दूसरी को बाहों में भरकर ओंधे मूँह पलंग पर पडी रही।

इधर रंग में भंग हो गया। राजा के दरबार में राज्य का दूत अत्यावश्यक कार्य लेकर आया। नाटक बीच में छोडकर राजा को जाना पडा। राजा के जाने से सभी नट अपने अपने स्थान पर गये। प्रतिस्पर्धा दो दिन टल गयी।

आषाढाभूति घर आया। वहाँ का दृश्य देखकर कांप उठा। कन्याओं के मुख पर मक्खियाँ भनभनाहट कर रही थी। कपडे अस्त व्यस्त थे। अर्द्धनग्न अवस्था में पडी थीं। उसने उसी समय अपने गुरूदेव के पास जाने का निर्णय किया। नट ने और नट कन्याओंने बहुत क्षमायाचना की। पर आषाढाभूति का पौरुष जाग उठा था। उसकी वासना विलीन हो गयी थी। वह अब विराधना से आराधना की ओर मुड गया था। अब दुनिया की कोई ताकात सिंह को बन्धन में नहीं डाल सकती थी। कोई उपाय नजर न आया तब नट से प्रेरित कन्याओं ने बहुत से धन की मांग की। आषाढाभूति ने एक नाटक की योजना की। राजा से पांचसौ राजकुमारों की याचना कर भरत चक्रवर्ती का नाटक प्रस्तुत किया।

भरत का राज्य ग्रहण, चक्ररत्न के साथ विजय के लिए प्रस्थान, भरत बाहुबली का युद्ध आदि हूबहू नाटक कर अंत में कांच के भवन में अंगूठी गिरने तक की कला में इतनी पारदर्शिता थी कि उस प्रसंग में अभिन्नता उत्पन्न हुई। आत्मचिंतन में निर्मलता आने लगी। क्षपकश्रेणी में चढे और उसी स्टेज पर घातिकर्मों का क्षय कर दिया, केवलि बने। अपने हाथों से लोच किया। देव प्रदत्त वेश धारण किया और देशना दी। पांचसौ राजकुमार प्रतिबोध पाकर दीक्षित हुए। उनके गुरूदेव को आषाढाभूति के समाचार मिले। गुरूदेव अति प्रसन्न बनें।

आषाढाभूति ने केवलिपने में वर्षों तक विचरकर, अनेक आत्माओं का कल्याण कर, निर्वाण पद प्राप्त किया।

एक दिन की दीक्षा

आचार्यदेव श्री स्थूलिभद्रजी के शिष्य आर्यमहागिरि एवं आर्यसुहस्तिसूरि पृथ्वी को अपने पदचिह्नो से पावन बनाते हुए विचर रहे थे।

काल की विकरालता ने लोगों को अपने सिकंजे में जकड लिया। दुष्काल की परिस्थिति सामान्य जन जीवन को अस्तव्यस्त किये हुए थी। विहार क्रम में आचार्यदेवों का कौशम्बी में आगमन हुआ। जनता को अन्न बडी मुश्किल से प्राप्त होता था। एक समय का भोजन भी भरपूर नहीं मिल रहा था। धन से समृद्ध जन अपने परिवार का पालन धन के बल से भोजन सामग्री प्राप्त कर, कर रहे थे। साधु संघ को येनकेन प्रकारेण आहार की प्राप्ति हो जाती थी।

एक बार दो साधु गोचरी वहोरकर एक घर से बाहर आये। वहाँ एक भिक्षुक अनेक दिनों का भूखा इन साधुओं के चेहरे की सौम्यता व करूणा देखकर आकर्षित हुआ, और सोचा, कि ये मेरे पेट की आग बुझा सकते हैं। इन्हें तो सेठ लोग बुला-बुलाकर वहोरा रहे हैं। वह साधुओं के पास आया और कहा, 'मैं बहुत दिनों से भूखा हूँ। आप दयालु हैं, आप को आहार बहुत मिलता है। कृपा कर मुझे आहार देकर मेरी क्षुधा शांत कीजिये।' मुनियों ने कहा, 'भाई! इस आहार पर हमारा अधिकार नहीं है। हमारे गुरूदेव के पास जाओ। वे जानें, और तुम जानो।' वह मुनियों के पीछे चला।

मुनियों ने गोचरी गुरूदेव के सामने रखी। आलोचना की। वह भिक्षुक गुरूदेव के सामने उपस्थित होकर आहार की याचना करने लगा। गुरूदेव ने उसके सामने देखा। उन्हें उस आत्मा में कुछ नया दिखाई दिया। यह भविष्य में शासन प्रभावक होगा, ऐसा जानकर कहा, 'भाई! हम आहार हमारे जैसे बननेवाले को दे सकते हैं।' उसने कहा, 'मैं मेरी क्षुधा शांत करने के लिए आप जैसा कहो, वैसा करने को तैयार हूँ। मेरी भूख दूर होनी चाहिए' गुरूदेव ने उसे दीक्षित किया और उसके सामने मोदक रखें। उसने उन मोदकों को पेटभर कर खाया। वह भिखारी मुनिवेश की प्रशंसा करने लगा। 'इस वेश ने आज मेरी अनेक दिनों की क्षुधा को शांत कर दिया है। ये मुनि कितने भले हैं। यह धर्म कितना सुंदर है! जो लोग मुझे धुत्कारते थे, वे ही आज मुझे हाथ जोड रहे हैं।' दिन पूर्ण हुआ। रात को नये मुनि के पेट में दर्द उत्पन्न हुआ। विशुचिका हो गयी। मुनि उसकी सेवा में उपस्थित थे। श्रावकों को समाचार मिले। श्रावक गण भी आये। उपचार प्रारंभ हुआ। यह सब देखकर दर्द तो विस्मृत हो गया, और अंतर में मुनियों की, श्रावकों की, वेश की और जैनधर्म की वे अनुमोदना करने लगे। न जान न पहचान, खाने के लिए मुनि बना, पर ये लोग मेरे परम आत्मीय हों वैसा मुझसे व्यवहार कर रहे हैं। ये श्रावक कितने भले हैं। मेरी कितनी सेवा कर रहे हैं। यह सब इस धर्म

का प्रभाव है, इस वेश का प्रभाव है। इसी विचारधारा में नये मुनि ने रातको प्राण त्याग दिये। मुनियों ने उसे समाधि रखवाने में अत्यधिक पुरुषार्थ किया, जिससे उसे आर्तध्यान न हुआ।

उस समय राजा अशोक पाटलीपुत्र में राज्य कर रहा था। उसका पुत्र कुणाल उज्जयनी में (विमाता के कारण) रहता था। कुणाल की अध्ययन योग्य आयु होने से अशोक ने एक पत्र में 'कुमारो अधियउ' लिखा था। पत्रवाहक को पत्र देने के पूर्व कोई आवश्यक कार्य से कहीं जाना पडा। पत्र वहीं पड़ा था। तभी कुणाल पर डाह रखनेवाली विमाता वहाँ आ गयी। पत्र खुला पडा था। उसने पढ़ा। उस कुबुद्धिवाली ने एक सलाखा से अपने आंख के अंजन से 'अ' के ऊपर अनुस्वार रख कर पत्र पूर्वानुसार मोडकर रख दिया। उस समय वहाँ कोई था भी नहीं। अशोक आया। पुनः पढे बिना पेक करके पत्र पत्रवाहक को दे दिया। पत्रवाहकने कुणाल को पत्र दिया। कुणालने पढ़ा। [किसी कथा में ऐसा भी लिखा है कि मंत्रियों के हाथ में पत्र गया। वे विचाराधीन हुये। कुणाल को सन्देह हुआ। उसने पत्र लेकर पढ़ा।] उसने कहा, 'इस आज्ञा का पालन शीघ्र होना चाहिए। इस वंश में पितृ आज्ञा का खंडन कोई नहीं करता।' उसने शीघ्र दो गरम गरम शलाका लेकर अपनी आंख में घूसेड दी। अशोक को समाचार मिले। अशोक को अपनी भूल की सजा मिल गयी-ऐसा लगा। अब हो भी क्या सकता था? अशोक ने कुणाल को महापुर नगर की जागीर देदी। अब वह वहाँ रहकर संगीत का अध्ययन करने लगा।

इधर उस भिक्षुक मुनि का जीव वहाँ से कुणाल की पत्नी की कुक्षी में आया। गर्भकाल पूर्ण होने पर पुत्र का जन्म हुआ। कुणाल पाटलीपुत्र में अपने संगीत से प्रजा का मन मोहने लगा। चारों ओर कुणाल की प्रशंसा हो रही थी। सम्राट अशोक के कर्णपटल पर भी कुणाल की कीर्ति पहुँची। अशोक ने उसे सूरदास के नाम से ही बुलाया। परदे की ओट में संगीत सम्राट बैठा और संगीत की ध्वनियों ने वातावरण को मन्त्र मुग्ध कर दिया। अशोक सम्राट, संगीत सम्राट पर वारी-वारी गया और बोला, 'सुरदासजी जो चाहिये सो मांग लो। जो मांगोगे वह दूंगा।' कुणाल ने कहा,'काकिणीं देहि।' राजाने सोचा, 'यह सम्राट के पास कैसी तुच्छ याचना कर रहा है।' एक रुपये का अस्सीवाँ भाग काकिणीं। उसकी याचना मेरे पास? अशोक ने कहा, 'भाई! मेरे पास तो बहुमूल्य रत्नादि पदार्थ या जागीर आदि मांगना था। यह काकिणीं क्या मांगी?' तब मंत्री ने कहा, 'राजन्! इस देश में काकिणीं का अर्थ राज्य भी होता है, अतः इन्होंने आपका संपूर्ण राज्य मांगा है।' सम्राट ने पूछा, 'आप आंख से रहित है आप राज्य लेकर क्या करेंगे?' कुणाल ने कहा, 'राजन्! राज्य आपके पौत्र के लिए मांग रहा हूँ।' तब राजाने कुणाल को पहचाना और उसे गोद में बिठाया। पूछा, 'बेटे! तेरा पुत्र कब हुआ?' उसने कहा, 'सम्प्रति।' राजाने संप्रति को सम्मानपूर्वक बुलाकर पाटलीपुत्र की

राजगद्दी पर उसका अभिषेक कर दिया। उसका नाम भी सम्प्रति ही रख दिया।

क्रमशः सम्प्रति युवावस्था में आया। उस समय आर्य महागिरि और आर्य सुहस्तिसूरि पाटलीपुत्र में एक रथयात्रा में आगे आगे चल रहे थे। राजमहल के पास से रथयात्रा जा रही थी। सम्प्रति गवाक्ष से रथयात्रा को देखने लगा। आगे चलने वाले आचार्यदेवों को देखकर उसे ऐसा अनुभव हुआ कि इनको मैंने कहीं देखा है। ऊहापोह करते हुए जाति स्मरण ज्ञान उत्पन्न हुआ। अपनी पूर्व की स्थिति देखी। और महसुस किया कि इस स्थिति में पहुँचाने का श्रेय इन आचार्यदेवों को है। वह शीघ्र दौडा हुआ नीचे आया और आचार्यदेव के चरणों में एक बालक की भांति नतमस्तक होकर उसने वंदन किया। गुरूदेवों ने धर्मलाभ की आशीष दी। राजाने पूछा, 'मुझे पहचानते हैं?' सूरिजी ने कहा, 'आपको कौन नहीं जानता?' राजाने कहा, 'मैंने इस रूप में पहचानने का नहीं पूछा।' आचार्यदेव श्रुतकेवलि दशपूर्वी थे। उन्होंने ज्ञान से उसका पूर्वभव देखकर कहा, 'तुम तो हमारे एक दिन के मुनि थे।'

राजा ने कहा, 'गुरूदेव! यह आपकी कृपा से मिला है, आप इसे ग्रहण करें।' गुरूदेव ने कहा, 'भाई! हम तो इस देह से भी निःस्पृह हैं, तो राज्य को लेकर क्या करें?' राजा ने कहा, 'गुरूदेव! मेरे लायक कोई सेवा?' गुरूदेव ने धर्म उन्नति की प्रेरणा दी। राजा का इस प्रकार आना और गुरूदेवों के चरणों में गिरना। राज्य देने के विचार व्यक्त करना, जैन संघ के लिए यह अपूर्व अवसर था।

तत्पश्चात् सम्प्रति राजा ने गुरूदेवों से जैन धर्म का विधिवत् स्वीकार एवं ज्ञान प्राप्त किया। अब उसने स्थान-स्थान पर धर्म प्रचार हेतु जिनमंदिर का निर्माण एवं पूर्व के मंदिरों का जीर्णोद्धार करवाना प्रारंभ किया। अपने आज्ञावर्ती राजाओं को भी जैन धर्म ग्रहण करने की प्रेरणा दी। द्रविडादि देशों में अपने सैनिकों को साधु क्रिया की शिक्षा देकर साधुवेश में भेजकर, आहार पानी कैसे वहोराना आदि क्रियाओं का ज्ञान वहाँ के लोगों को करवाया। अपने राज्य में भी दुकानदारों को, हलवाइयों को और लोगों को कहलवा दिया कि साधुओं को आहार दान बहुत देना और उसकी कीमत राज दरबार से ले जाना।

एक दिन राजा ने आचार्यदेवों को द्रविडादि देशों में मुनियों को धर्मोन्नति हेतु भेजने की विनति की। वहाँ की स्थिति साधुओं के विचरने योग्य है ऐसा कहा। आचार्यदेव ने मुनियों को द्रविड देशों की ओर विहार करवाया।

एक बार आर्य महागिरिजी ने मुनियों से पूछा, 'यह रोज गोचरी में स्निग्ध पदार्थ आ रहे हैं, क्या बात है? खोज करते हो या नहीं?' दूसरे दिन मुनियों ने बालकों के द्वारा सत्य बात जानकर, गुरूदेव से कहा, 'राजा के आदेश से सभी जगह मिष्टान्नादि वहोराया जाता है।' आर्य महागिरिजी ने आर्य सुहस्तिसूरिजी को पूछा, 'आप ध्यान नहीं दे रहे हैं, रोज राज पिण्ड

आ रहा है।' उन्हों ने कह दिया, 'राज पिण्ड कहाँ नहीं है?' आर्य महागिरिजी ने उनके इन वचनों को शिथिलाचार का प्रेरक माना और कह दिया, 'आपसे हमारा सम्भोगिकपना (आपस में गोचरी पानी स्वाध्याय वाचनादि देने-लेने रूप व्यवहार) पृथक् रहेगा। ऐसी शिथिलता सहन नहीं की जायगी।' आर्य सुहस्तिसूरि को अपनी भूल का अहसास हुआ, और क्षमायाचना की। सम्भोगिकपना पुनः प्रारंभ हुआ (एक कथा में तो सम्भोगिकपना प्रारंभ नहीं हुआ, ऐसा भी पढने में आया है)।

आर्य महागिरिजी अपना शिष्य समुदाय आर्य सुहस्तिसूरि की निश्रा में देकर, स्वयं जिनकल्पीकी तुलना करते, एकाकी विचरने लगे। एक बार आर्य सुहस्तिसूरि एक श्रावक के घर उपदेश दे रहे थे। उस समय आर्य महागिरि गोचरी हेतु आ गये। आर्य सुहस्तिसूरि ने उनका उठकर सम्मान किया। गृहस्थ के पूछने पर उन्होंने उनकी प्रशंसा की। आहार आदि की बात की। दूसरे दिन आर्य महागिरिजी गोचरी गये तो श्रावकों ने अच्छे-अच्छे पदार्थ (हमको इनकी जरूरत नहीं है हम तो इसे बाहर डालने जा रहे हैं, आपको लेना हो तो लो ऐसा असत्य वक्तव्य देकर) वहोराना चाहा। आर्य महागिरिजी उनकी माया को जान गये। और आर्य सुहस्तिसूरि को उपालंभ दिया। कहा, 'आपने मेरी गोचरी के विषय में उन्हें बताकर ठीक नहीं किया।'

साधु संस्था में गोचरी के विषय में शिथिलता का प्रवेश उस समय से प्रारंभ हुआ जो आज निःशंक होकर आधाकर्मी आहार तक पहुँच गया है। गोचरी तो इतनी अशुद्ध हो गयी है, कि जिसका कोई सुधार दिखायी नहीं देता।

आर्य महागिरिजी और आर्य सुहिस्तसूरिजी अंतिम आराधना कर स्वर्गगामी हुए।

सम्प्रति राजाने अपने जीवनमें ३६ हजार नये जिन मंदिर बनवाये, ८९ हजार मंदिरों का जीर्णोद्धार करवाया। सवा करोड नयी जिन मूर्तियाँ भरवायी। जिनशासन में एक महाप्रभावक राजा के रूप में सम्प्रति विख्यात हुआ। वह अपना आयुष्य पूर्ण कर स्वर्गगामी हुआ।

● *भयजनक स्थान में रहने से तन, मन, धन एवं धर्म हानि का प्रसंग किस समय उपस्थित हो जाय कोई निश्चित नहीं। अतः ऐसे स्थानों का त्याग विवेकी विचारवान् मानवों को अवश्य करना चाहिए।*

– जयानंद

आर्य वज्र

जंबूद्वीप के भरतक्षेत्र में तुंबवन नामक सन्निवेश था। वहाँ गुण समुद्ध, धन समृद्ध व सदाचारी 'धन' नामक श्रेष्ठि रहते थे। उनका 'धनगिरि' नामक पुत्र था। जो बाल्य काल से ही धर्म के प्रति आकर्षित हो गया था। वह युवावस्था में भी विकार रहित जीवन जी रहा था। धन ने उसे विवाह के लिए अनेक प्रकार से समझाया। एक दिन उसे पिता के सामने झुकना पडा। पर मन में विकार का प्रादुर्भाव न हुआ।

इधर उस नगर में अपारवैभवशाली धनपाल श्रेष्ठि रहता था। उसके एक शमितकुमार एवं सुनंदाकुमारी दो संताने थी। वैभव में पला शमित वैभव में अनुरक्त न हुआ। उसका मन मुक्ति की मंजिल प्राप्त करने की ओर था। वह सतत विरक्ति के भावों में रमण करता था। उसके पिताने उसे विवाह के बंधन में डालने के लिए अनेक प्रयत्न किये, पर वे सभी विफल हुए। एक दिन शमित माता-पिताकी आज्ञा पूर्वक आचार्य सिंहगिरि के पास दीक्षित हो गया।

धनपाल सुनंदा के लिए खानदानी वर की खोज कर रहा था। एक दिन उसकी नजर धनगिरि पर गयी। धनश्रेष्ठि से उसने बात की। धन श्रेष्ठि भी सुनंदा जैसी नारी को बहू रूप में पाकर अति आनंदित हुआ। विवाह हो गया। पर धनगिरिने सुनंदा को विरक्ति के पाठ पढाने प्रारंभ किये। सुनंदा भी कम न थी। उसने राग रंग की कई चर्चाएँ की। प्रति दिन दोनों में संसार की असारता एवं सुखमय संसार के विषय में चर्चाएँ होती थी। दोनों निर्मल मनवाले थे। आखिर सुनंदा के सामने धनगिरि पराजित हुआ, और संसारवास स्वीकार किया। पर अंदर में विराग का चिराग प्रज्वलित ही रहा। सुनंदा गर्भवती हुई।

धनगिरि खुश हो गया। अब इसके पुत्र उत्पन्न हो जायगा। इसका भरण पोषण वह करेगी। में इस संसार कारागार में अब क्यों रहूँ ? इस का स्वार्थ पूरा हो गया। अब मुझे मेरा स्वार्थ सिद्ध करना है। उसने सुनंदा को समझा बुझाकर सिंहगिरि आचार्य देव के पास चारित्र ग्रहण कर लिया। सिंह जब जागृत हो जाता है तब उसे कोई रोक नहीं सकता। शमित मुनि एवं धनगिरि मुनि आराधना में ओत प्रोत बन गये। अध्ययन एवं गुरू सेवा दोनों कार्य तन्मय हो कर करते थे। गुरूदेव के साथ विहार हो रहा था।

इधर सुनंदा को पुत्र रत्न प्राप्त हुआ। स्वजन संबंधियोंने जन्मोत्सव की तैयारी की। उस समय एक सखी ने सुनंदा और बालक के सामने यह कहा कि, 'आज यदि इस बालक के पिता ने दीक्षा न ली होती, तो जन्मोत्सव का मजा ओर आता, पर क्या करें वे तो दीक्षा लेकर चले गये।' सखी यह समझ रही थी कि यह अबोध बालक इस बात को क्या समझेगा? पर वह बालक सामान्य बालक न था। वह तो उत्कृष्ट पुण्य लेकर देवलोक से आया हुआ

महामानव था। उसने उन शब्दों पर चिंतन किया। दीक्षा शब्द तो अति परिचित शब्द है। उस पर ऊहापोह करते हुए उस बालक को मूर्च्छा आयी, और उसने अपना पूर्वभव देखा। जाति स्मरण ज्ञान से स्पष्ट हुआ कि 'मैंने त्रियंकजृंभक देव पना पाया था। अष्टापद पर्वत पर श्री गौतमस्वामिजी के भी दर्शन हुए थे। उनको वंदन कर उनसे पुंडरीक कंडरीक नामके दो भाइयों की कथा आराधक-विराधक भाव के प्रसंग में सुनी थी। इस मानव भव में सर्वोत्तम कार्य तो दीक्षा लेना है। मुझे भी मेरे पिता का अनुसरण करना है, पर यह कैसे संभव हो? माँ का मुझपर जो अनुराग है वह कैसे दूर हो? इसका विचार करना है।' बालक ने सोचते-सोचते निर्णय किया कि मैं माँ के लिए आपत्तिजनक हो जाऊँ तो माँ मुझसे विरक्त हो जायगी। तब मैं मेरा इच्छित सिद्ध कर सकूंगा। उसके लिए, उसने रोने का मार्ग चुना। वह दिन रात रोने लगा। स्तनपान किया न किया कि रोना चालु। सुनंदा ने उसे शांत करने के अनेक प्रयत्न किये, पर सभी विफल होने लगे। सोते को जगाया जा सकता है। परंतु जागते को कौन जगा सकता है? स्वाभाविक रोना उपायों से बंद हो सकता है, परंतु कृत्रिम रोना कैसे बंद किया जा सकता है? वह तो लगातार रोता ही रहा। दो-चार दिन नहीं, छः महिने तक रोता ही रहा। सुनंदा उस पुत्र से दुःखी हो गयी। जिस पुत्र पर उसने अपने भविष्य के सपने सँजोये थे, वे सभी धराशायी हो गये। वह पुत्र को दूर करने का विचारने लगी। उसने एक दिन सोचा कि इसके पिता विहार करते हुए इस ओर आ जायँ, तो उन्हें यह बालक देकर निश्चित हो जाऊँ। उनका भी इस बालक को पालने पोषने का अधिकार है। मैं अकेली दुःखी क्यों होऊँ? वे भी इस दुःख में भागीदार बनने चाहिए। बालक के पूर्व पुण्योदय से आकर्षित होकर आचार्य सिंहगिरि विहार करते हुए तुंबवन में पधारें।

मुनि धनगिरि और शमितमुनि गोचरी के लिए गुरूदेव के पास आज्ञा लेने आये। गुरूदेव ने कुछ सोचकर कहा, 'वत्स! आज गोचरी में सचित्त या अचित्त जो भी मिले, वह ले आना।'

मुनि युगल गोचरी के लिए ग्राम में गये। सुनंदा का घर खुला था। धर्मलाभ का आशीर्वाद देकर सुनंदा के 'पधारो' कहने पर अंदर गये। शमित एवं धनगिरि दोनोंको आये जान कर, पास पडोस की बहनें सुनंदा के घर आ गयी। सुनंदा ने क्षणभर विचार कर बालक को हाथ में लेकर धनगिरि से कहा, 'इस बालक ने मुझे तंग कर रखा है। इसे संभालने का दायित्व हम दोनों का है। मैं अकेली दुःखी क्यों होऊँ? आप इसे ले जाइये और इसे संभालिए।' मुनि द्वय को गुर्वाज्ञा का स्मरण हुआ और धनगिरि मुनि ने कहा, 'तुम इसे दे रही हो, सो क्षणिक आवेश में या सोच समझकर? क्योंकि हमें दिया हुआ पदार्थ वापिस लौटाया नहीं जाता। तू कल इसे वापिस लेने आयगी, तो नहीं मिलेगा। सोच लो, अभी तक बालक

तेरे हाथों में है।' सुनंदा छः महिनों से उसके रुदन से तंग आयी हुई थी। वह बालक से छूटकारा चाहती थी। ऐसे सतत् रोनेवाले बालक को कौन संभाले? अतः सुनंदा ने कहा, 'मैं मेरी इच्छा से दे रही हूँ। आप इसे ले जाइए।' मुनि धनगिरि ने कहा, 'तुम वापिस लेने नहीं आओगी। इसका साक्षी कौन?' सुनंदा ने कहा, 'ये मेरे भाई मुनि और ये मेरी सखियाँ साक्षी रूप में हैं। आप चिन्ता न करें। मैं इसे लेने नहीं आऊँगी। यह आपका है ले जाइए।' मुनि ने गुरूकी आज्ञानुसार और दाता की इच्छानुसार झोली फैलाई। सुनंदा ने रोते हुए बालक को उठाया और झोली में वहोराया। मुनि गोचरी आये, वहाँ रहे इतनी बातें हुई, तब तक बालक का रुदन चालु था। जहाँ बालक झोली में आया कि रोना बंद हो गया। मुनि धर्मलाभ देकर उपवन पधार गये। गुरूदेव ने झोली में वजन देखकर कहा, 'क्या आज झोली में वज्र लेकर आये हो?' धनगिरि मुनि ने झोली गुरू के सामने रखी। गुरूदेव ने बालक उठाया। उसकी वज्र जैसी देह देखकर नाम 'वज्रकुमार' दे दिया। वहाँ रही हुई साध्वियों के स्थान पर उसे पहुँचाया गया। वहाँ साध्वियों की शय्यातर श्राविकाओं ने उस बालक की व्यवस्था कर दी। बालक का लालन पालन होने लगा। जब साध्वियाँ अध्ययन करतीं, तो वज्र एकाग्र होकर सुनता और उसे स्मृति में बिठा देता था। इस प्रकार तीन वर्ष का हुआ तब तक उसने ग्यारह अंग याद कर लिये।

सुनंदा यदाकदा शय्यातर के घर जाती बालक को गोद में लेती, उस समय उसके मातृहृदय में वात्सल्य उमड पडता और पुत्र को घर ले जाने के लिए सोचती। शनैः शनैः वह पुत्र को घर ले जाने के प्रयत्न करने लगी। साध्वियों ने कह दिया, 'यह संघ की धरोहर है, हम तुझे घर ले जाने नहीं देंगे।' इस प्रकार पुनः बालक के लिए सुनंदा ने समस्या उत्पन्न कर दी।

आचार्य सिंहगिरिजी विहार करते हुए पुनः तुंबवन में पधारे। बालक आचार्य महाराज के पास रहने लगा। सुनंदा ने अपने पुत्र को घर ले जाने की बात गुरूदेव को बतायी। गुरूदेव ने स्पष्ट रूप से इन्कार किया। सुनंदा अपना वांछित कार्य सिद्ध न होते देख, राज दरबार में गयी। उसने राजा के सामने अपनी बात प्रस्तुत की। राजाने श्रावकों को पूछा। श्रावकों ने सत्य हकीकत राजा को बतायी। राजा विचार में पडा। माँ अपने पुत्र को ले जाना चाहती है, तो दूसरी ओर श्रमणोंने उसे वहोरकर लाया है। वहोरी हुई चीज वे लौटा नहीं सकते, यह अटल सिद्धांत है। राजाने थोडी देर सोचा। फिर उसने एक योजना सब के सामने रखी। इस बालक को दोनों पक्ष बुलायें। बालक जहाँ जाना चाहे, वहाँ जाने दिया जाय। दोनों पक्षों ने इसे स्वीकार किया।

सुनंदा ने राजा के सामने एक याचना की कि, 'मैं माता हूँ उसे बुलाने का प्रथम हक्क मुझे दिया जाय।' राजाने स्वीकार किया। श्रमण संघने कोई आपत्ति न की।

राज सभा में सभी आये। बालक भी लाया गया। बालक को बीच में खडाकर दोनों ओर दोनों पक्ष बैठे। प्रथम माँ ने बालक को अनेक प्रकार के खिलौने, मिठाई एवं मधुर वचनों से आकर्षित करने का प्रयत्न किया, परंतु बालक ने माँ के सामने भी नहीं देखा। वह तो नीचा मुख किये खड़ा रहा। माँ ने अनेक प्रयत्न किये, वे सभी विफल गए। सुनंदा थक गयी। तब राजाने मुनि भगवंत को बालक को बुलाने के लिए कहा। आचार्य सिंहगिरिजी ने रजोहरण दिखाकर कहा, 'वज्र! भव समुद्र से पार होना हो तो संयमरूपी नौका में बैठने के लिए यह रजोहरण ग्रहण कर लो।' एक बार में ही बालक दौडा और रजोहरण लेकर नाचा। फल स्वरूप बालक मुनियों के पास ही रहा।

सुनंदा ने सोचा, 'भाई दीक्षित हो गये, पति ने प्रव्रज्या ग्रहण कर ली, और पुत्र ने पिता का अनुसरण किया। अब मैं संसार में रहकर क्या करूँ। क्या यह संसार मेरा कल्याण कर सकेगा? मुझे भी अप्रशस्त मार्ग छोडकर प्रशस्त मार्ग को ही स्वीकार करना चाहिए।' और उसने भी सिंहगिरि आचार्यश्री के पास भगवती दीक्षा ग्रहण कर ली।

वज्र जब आठ वर्ष का हुआ, तब उसे दीक्षित किया गया। स्थविर मुनि उसे अध्ययन के लिए प्रेरित करते पर वह सुना-अनसुना कर देता था। कभी बैठता तो थोडी देर में उठ जाता। मुनि मनमें विचार करते। 'यह क्रियात्मक रूप से तो प्रवीण है, परंतु इसकी ज्ञानार्जन में रूचि दिखाई नहीं देती। यह आत्म उद्धार कैसे करेगा?'

विहार में एक बार एक मित्र देव ने वज्र मुनि को परीक्षा के लिए मार्ग में सार्थवाह का रूप लेकर गोचरी के लिए निमंत्रण दिया। वज्र मुनि गये, पर वहाँ का वातावरण उन्हें कुछ शंकास्पद लगा। सार्थवाह और उसके परिवार को देखा, और सोचा कि अनिमेष दृष्टिवाला यह देव ही होना चाहिए। उन्होंने कहा, 'भाई! साधुओं को देवपिण्ड नहीं कल्पता।' देव ने खुश होकर वैक्रिय विद्या अर्पित की। जिससे चाहे जैसा रूप बनाया जा सके। दूसरी बार देवने विहार में घेवर वहोराने चाहे, परंतु वहाँ पर भी, 'देव पिण्ड नहीं कल्पता' ऐसा कहा। देवने दूसरी बार 'गगनगामिनी' विद्या दी, जिससे मानुषोत्तर पर्वत तक जा सके। दोनों विद्याओं के स्वामी बन जाने पर भी वज्र का विनय तो कायम ही रहा। सब मुनियों का काम करने में वे तत्पर रहते थे। मुनियों को यह ज्ञानाधिक है, इसका ध्यान ही नहीं था।

एक बार मध्याह्न में ऐसा हुआ कि सभी साधु बाहर गये हुए थे। आचार्यदेव के साथ कुछ मुनि स्थंडिल गये थे। कोई गोचरी गये थे। कोई ध्यानारूढ होने हेतु गये थे। बाल मुनि वज्र बाल चेष्टा में आ गये, और सभी साधुओं के उपकरण सामने रखकर स्वयं बीच में बैठकर वाचना देने लगे। उनके लिए यह खेल था। उन्हें समय का भी ध्यान न रहा। बाहर से आचार्य महाराज सब से पहले आये। धर्मशाला में उन्हें व्याख्यान वाणी सुनायी दी। सोचा

कि क्या अन्य मुनि मुझसे पहले आ गये, और स्वाध्याय कर रहे हैं। पास में आने पर ध्वनि वज्र की लगी, और थोडी देर छिपकर सुना तो लगा कि इसने ग्यारह अंग का अध्ययन कर लिया है। वज्र मुनि को क्षोभ न हो इसलिए 'निसीहि' का जोर से उच्चारण किया। वज्र मुनि शीघ्रतापूर्वक सभी उपकरण यथा स्थान रखकर, आचार्यदेव के सम्मुख आये। दंड पात्र आदि लेकर रखे, उनके चरण धोये।

आचार्यदेव ने विचार किया कि दूसरे मुनि, वज्रमुनि की आशातना न करें, और सब को इसकी ज्ञानप्रतिभा का पता चल जाय इसलिए मैं यहाँ से थोडे दिन के लिए विहार कर लूँ। सब मुनियों से कहा, 'मैं कतिपय दिनों के विहार में जाना चाहता हूँ। कुछ मुनि मेरे साथ आयेंगे।' तब योगवाही मुनियों ने पूछा, 'गुरूदेव हमें वाचना कौन देगा?' गुरूदेव ने वज्र मुनि का नाम लिया। सब विस्मित हो गये। पर गुर्वाज्ञा के सामने नत मस्तक थे। आचार्यदेव ने विहार किया।

वाचना के समय मुनियों ने वज्रमुनि का आसन बिछाकर विनयपूर्वक वाचना देने हेतु पधारने को कहा। वज्र मुनि स्वस्थता पूर्वक बैठे और वाचना प्रारंभ की। मुनियों के मनमें आश्चर्य था। यह बाल मुनि इतना ज्ञानी। वाचना के समय उन्हें लगा कि वज्र मुनि के पास वह शक्ति है, जिससे हमारे हृदय में शीघ्र अर्थ उतर जाता है। जो-जो शंकाएँ थी वे भी पूछीं, तो सबका समाधान मिल गया। मुनि प्रसन्न हो गये। मुनियों ने विचार किया कि आचार्यदेव विहार कर देरी से आयें, तो हमारा यह श्रुत स्कंध भी शीघ्र पूर्ण हो जायगा।

कुछ दिनों के बाद आचार्य देव पधारें। मुनियों को स्वाध्याय के बारे में पूछा। मुनियों ने कहा, 'गुरूदेव हमारी इच्छा है, कि हमारे वाचनाचार्य वज्रमुनि बनें।' गुरूदेव ने अपने विहार का कारण दर्शाया। और कहा, 'अभी इसके पास ज्ञान अदत्त है। योगवहन करवाकर इसे वाचनाचार्य बना देंगे।' विधिवत् वज्र को अल्पदिनों में योगवहन करवाकर एवं वाचना देकर वाचनाचार्य बना दिया। आचार्यदेव ने अपने पास पूर्व का जितना ज्ञान था उसे वज्र को पढा दिया। उसकी बुद्धि प्रतिभा इतनी तीव्र थी कि उसने अध्ययन करते समय आर्य सिंहगिरि की शंकाओं का भी समाधान कर दिया।

आर्य सिंहगिरि ने एक बार वज्र मुनि से कहा, 'दशपूर्वी आचार्य भद्रगुप्त उज्जयनी में हैं। तुम उनके पास जाकर दशपूर्व का अध्ययन कर लो। अन्य तो कोई इतना ज्ञान प्राप्त करने की क्षमता वाला नहीं है।' तदनुसार वज्र मुनि ने कतिपय मुनियों के साथ विहार किया। उज्जयनी में प्रातः प्रवेश करना था। उस रात को आचार्य भद्रगुप्त को स्वप्न आया कि मेरे पास का क्षीर पात्र एक मुनि पूरा पी गया। प्रातः शिष्यों से बात की। शिष्यों ने पूछा, 'इसका फल?' गुरूदेव ने कहा, 'कोई अध्येता आयगा, और मेरे पास का संपूर्णज्ञान वह ग्रहण करेगा। मैं तो

समझता था कि दशपूर्व का ज्ञान मेरे साथ ही चला जायगा, पर नहीं अभी तक जैनशासन में नर रत्न मौजूद हैं।'

वज्र मुनि भद्रगुप्ताचार्य के पास आये। वज्र मुनि को देखते ही आचार्य पहचान गये कि यही स्वप्न में आया था, और क्षीर का इसने ही पान किया था।

वज्र मुनि ने वंदन कर कहा, 'मुझे आचार्य सिंहगिरि ने आपके पास अध्ययन के लिए भेजा है।' आचायश्री ने शुभ समय में अध्ययन आरंभ करवाया। अध्यापक अध्येता की ग्रहण शक्ति देखकर आनंदित होकर अध्ययन करवाता है। भद्रगुप्ताचार्य ने देखा कि इसने अति अल्पावधि में दशपूर्व सिद्ध कर लिये हैं। वज्र मुनि वहाँ से विहार कर पुनः आचार्य श्री के पास आये।

सिंहगिरिजी ने सोचा कि अब मैं वृद्ध हो गया हूँ। गच्छ का भार वज्र मुनि के स्कंध पर रखकर मुझे अब अंतिम आराधना करनी चाहिए। आचार्यदेव ने वज्रमुनि को आचार्यपद देने की घोषणा की। श्रमण संघ एवं श्रावक संघ में हर्ष छा गया। संघने महोत्सव किया। उस महोत्सव में उनके मित्र देव ने आकर चार चांद लगा दिये। अब मुनि वज्र आचार्य वज्र स्वामी बन गये। सिंहगिरिजी अनशन कर समाधिपूर्वक स्वर्गगामी हुए।

पांचसौ साधुओं का गुरूपदभार ग्रहणकर आचार्य वज्र स्वामी विहार में प्रवृत हुए। जहाँ जाते वहाँ धर्म की महिमा प्रसारित करते थे। व्याख्यान शक्ति, प्रशासनिक शक्ति एवं न्यायप्रियता के कारण वे जैन शासन की उन्नति कर रहे थे। शिष्यों के चार भेद में उनका स्थान 'अतिज्ञात' में हो गया था। आर्य सिंहगिरि से भी वे अधिक प्रभावक और ज्ञानी बन गये।

पाटलीपुत्र में धनश्रेष्ठि जो करोडों की संपत्तिवाला था, उसकी एक देवांगना के समान रूपवान रुक्मिणी नामक पुत्री थी। उसने साध्वियों के मुख से वज्रस्वामी के रूप-गुण के विषय में सुना तो वह उन्हें अपना मन दे बैठी। साध्वियों के समझाने पर भी वह न समझी और प्रतिज्ञा ले ली कि मैं वज्रस्वामी से ही विवाह करूंगी। उसने अपनी सखी के द्वारा अपने पिता को भी अपने विचार बता दिये।

एक बार विहार करते आर्य वज्र मुनियों सहित पाटलीपुत्र पधार रहे थे। संघ हर्षान्वित होकर सम्मुख गया। राजा को समाचार मिले। राजा भी सम्मुख गया। आर्य वज्र सपरिवार उद्यान में ठहरे। प्रतिदिन देशना होने लगी। लोग अत्यन्त प्रभावित हुये। जैन धर्म को राजाने भी स्वीकार किया। इधर रुक्मिणी ने सखियों को और अपने पिता को अपनी बात कहलवाई। पिता एक करोड के रत्न एवं रुक्मिणी को लेकर आर्य वज्र स्वामी के चरणों में उपस्थित हुआ। और रुक्मिणी की इच्छा व्यक्त की। आचार्य श्री ने रुक्मिणी को प्रतिबोध देकर साध्वी संघ में सम्मिलित कर दिया।

एक बार वज्र स्वामी ने उत्तरापथ की ओर विहार किया। उस समय भयंकर दुष्काल पड़ा। तब वज्रस्वामी वहाँ के संघ को महापुर (विद्या के बल से) एक पट पर बिठाकर ले आये। वहाँ का राजा बौद्ध धर्मी था। जैनों को प्रभु पूजा के लिए पुष्प लेने नहीं देता था। श्री संघ की इच्छा को पूर्ण करने हेतु विद्या के बल से संसारी अपने पिता के उद्यान में जाकर बीस हजार पुष्प एवं चूल्लहिमवंत पर्वत पर जाकर लक्ष्मीदेवी से हजार पंखुडियोंवाला कमल लेकर आये और संघ की भावना पूर्ण की। साथ में जैनों के ऐसे प्रभावशाली गुरू को देखकर राजा के साथ कई बौद्ध धर्मी भी जैन बने।

यहाँ जो लोग शंका करते हैं कि मुनि होकर पुष्प कैसे ले आये? उन्हें शास्त्र के रहस्यार्थ को समझना चाहिए। जैन शास्त्र में मुनियों के गीतार्थ-अगीतार्थ दो भेद हैं। उसमें गीतार्थ को सर्वाधिकार है। जो कार्य करने का शास्त्र में विधान न हो, उसे भी वे शासन रक्षा एवं शासनोन्नति के लिए कर सकते हैं। अगर स्वार्थ के लिए अधिकार का उपयोग करें तो गीतार्थता चली जाती है। अशुभ कर्मोपार्जन कर लेते हैं। अतः इस प्रसंग को शास्त्र सम्मत ही समझना चाहिए।

एक बार औषधि के लिए आर्य वज्र ने सूंठ का टुकडा कान पर रखा था। वह विस्मृत हो गया। तब उन्हों ने सोचा मेरा आयुष्य अल्प रहा है। तब वज्रसेन मुनि को आचार्य पद देकर पांचसौ मुनियों के साथ विहार करवाया। और स्वयं ने रथावर्त पर्वत पर जाकर अनशन किया। एक बाल मुनि को उन्होंने विहार करवाया था। पर उसने वापिस आकर पर्वत की तलहटी में अनशन कर उनके पूर्व ही स्वर्ग गया। देव ने उसके शव पर पुष्पवृष्टि की। उसे देखकर पांचासौ मुनियों के साथ वज्रस्वामी अत्यंत प्रसन्न हुए। वे अनशन में समाधिपूर्वक स्वर्गगामी हुए। उनके पास आर्य रक्षितने साडे नव पूर्व का अध्ययन किया था।

● *सत्संग का सामर्थ्य, महात्मय तो अवर्णनीय है। महापापी को धर्मात्मा, हिंसक को दयालु, अज्ञानी, अहंकारी को विनम्र, क्रोधी को क्षमावान्, मायावी को सरल, लोभी को निस्पृही-निर्लोभी, रागी को निरागी, द्वेषी को प्रेमी, मोही को निर्मोही, लुब्ध को अलुब्ध, दुर्जन को सज्जन एवं कामी को निष्कामी बना देते हैं सज्जन पुरुष।* - जयानंद

अंगारमर्दक आचार्य

जंबूद्वीप के क्षीति प्रतिष्ठित नगर में विजयसेन आचार्य भगवंत अपने शिष्य मंडली के साथ ज्ञान-ध्यान-स्वाध्याय में निमग्न थे।

एक बार प्रातः एक शिष्य ने आकर गुरूदेव से कहा, 'गुरूदेव ! आज रात को जागृत होने के कुछ समय पूर्व मैंने एक स्वप्न देखा। उसमें एक सुअर की पांचसौ सिंह सेवा कर रहे हैं। मैं शीघ्र जागृत हो गया। इस आश्चर्यकारी स्वप्न का फल क्या होगा?'

गुरूदेव ने कहा, 'वत्स! आज ही कोई अभव्य आचार्य, उत्तम पांचसौ शिष्यों के परिवार सहित यहाँ आयेंगे।' प्रथम पोरिसी पूर्ण होते होते तो एक आचार्य भगवंत पांचसौ शिष्यों सहित पधारे। अभ्युत्थानादि विनयोपचार के बाद देशना के समय अतिथि आचार्य महाराज को देशना के लिए कहने पर, उन्होंने देशना दी। देशना में मिथ्यात्व समकित एवं पदार्थों की सूक्ष्मातिसूक्ष्म व्याख्या समझायी। स्वप्नवाला शिष्य विचारमग्न हुआ कि, 'ऐसी देशना देनेवाला एवं निरतिचार चारित्र पालक अभव्य कैसे?'

उसने गुरूदेव से पुनः प्रश्न किया। तब गुरूदेव ने कहा, 'आज रात को बताऊँगा।' गुरूदेव ने एक श्रावक को बुलाकर कुछ बातें की। मांडला करने के पूर्व भूमि की दृष्टि पडिलेहण अतिथि मुनियोंने एवं स्थित मुनियों ने कर ली। संथारा पोरसी पढाने के बाद स्वप्नवाले शिष्य को अपने पास बुलाकर एक ओर ले जाकर दोनों खडे रहे। अतिथि मुनि लघु निवारण हेतु उठे तब जहाँ परठने की भूमि थी वहाँ पैर रखते ही कच-कच आवाज आयी और वे साधु समझे कि यहाँ जीव उत्पन्न हो गये हैं। हमने कितने जीवों की विराधना कर ली। वे वापिस लौट आये।

अतिथि आचार्य लघुशंका निवारणार्थ जाने लगे। उनके पैर तले भी कच-कच की आवाज आयी। उन्होंने कहा, 'ये अरिहंत के जीव पुकार कर रहे हैं।' और बिना भय से लघुशंका निवारण कर आ गये। शिष्यने सुना। विश्वास हो गया।

विजयसेनाचार्य के संकेतानुसार कोयले का कचरा हटा दिया गया। फिर सभी मुनि लघु शंका निवारणार्थ सुख पूर्वक गये।

दूसरे दिन उन पांचसौ शिष्यों में मुख्य शिष्य को विजयसेनाचार्य ने सारी बातें की, रात को उसी श्रावक से, वही प्रयोग करवाकर, निर्णय करवाया। उन पांचसौ शिष्यों ने उनका साथ छोड दिया। उस समय से वे आचार्य अंगारमर्दकाचार्य नाम से आगमों में लिपिबद्ध हुए।

इन जैसे जीवों में अन्य आत्माओं को प्रतिबोध देकर प्रव्रजित करने की क्षमता होती है। ऐसे जीव स्वर्ग सुख एवं यशकीर्ति के लोभ में बाह्य दिखावे की क्रिया शुद्ध करते हैं, जिससे अनेक आत्मा प्रतिबोध पाकर चारित्र ग्रहण करते हैं। इसी कारण आगमों में उन्हें दीपक समकित वाले माना है।

- *करकसर एवं कृपणता ये दोनों संपूर्णतया एक दूसरे के विपरीत हैं। करकसर उपयोगी एवं आवश्यक है एवं कृपणता अनुपयोगी, अनावश्यक एवं निन्दित गिनी गई है।*
- *आज के युग में फैशन के नाम पर, फिजूल खर्च इतना बढ़ गया है कि जिससे धर्म कार्य भी अछुते नहीं रहे।*
- *कहीं कहीं तो फैशन के नाम पर, नये युग के नाम पर, हजारों लाखों का व्यय करने वाले याचक को चार सरस्वती सुनाते हुए दिखाई दे जाते हैं, तब दिखता है कृपणता, अज्ञता का अनुठा नमूना।*
- *वेशभूषा की अश्लीलता की जननी फैशन एवं फैशन की जननी है सिनेमा। ये दोनों ही आर्य संस्कृति को नष्ट करने में महत्त्व का कार्य कर रही हैं।*
- *वस्त्र परिधान करना एक कला है। कला में सदा मर्यादा का पालन होता है।*
- *'सहशिक्षण, नृत्य, तलाक, विलासिता' इन चारों का प्रचलन अधिकाधिक रूप में हो रहा है और इसी से नारी सर्वनाश के मार्ग पर चल रही है। नारी का सर्वनाश अर्थात् मानव समाज का सर्वनाश, संस्कृति का सर्वनाश, धर्म का सर्वनाश।*
- *आज के युग में सामान्य गृहस्थियों के घर से फैशन निकल जाय तो जिन नारियों को मजबूरन नौकरियाँ करनी पड रही हैं उनमें अधिकांश मात्रा में नौकरी से छूट जाय, मुक्त हो जाय इसमें शंका को स्थान नहीं।*

– जयानंद

चोर बना देव

जंबूद्वीप के भरत क्षेत्र में मगध देश राजगृही नगरी से विशेष प्रख्यात था। उस नगर में धन्ना नामक सार्थवाह रहता था। वह धनी था। उसके घर कइ दास-दासी कार्यरत थे। उनमें एक दासी का नाम चिलाती था। उसे एक पुत्र हुआ, दासी पुत्र होने से उसका नाम चिलातीपुत्र प्रख्यात हो गया। इधर शेठ के चार पुत्रों के बाद अधिक वर्षों के पश्चात् एक पुत्री का जन्म हुआ और उसका नाम सुषमा दिया। सुषमा के बाल्यकाल में उसको रमाने का कार्य अधिकतर चिलातीपुत्र करता था। सुषमा का रूप लावण्य बाल्यकाल में भी अनुपम था। चिलातीपुत्र किशोरावस्था में था। उसे सुषमा के प्रति राग भाव उत्पन्न होने लगा। वह अब सुषमा के लिए अधिकतर इधरउधर जाने लगा। धीरे धीरे उसमें वासना का उद्‌भव हुआ और वह सुषमा के साथ दुश्चेष्टाएँ करने लगा। एक दिन शेठ की नजर उस पर गिर गयी। और धन्ना ने उसे फटकार कर घर से निकाल दिया। अब वह युवानी की दहेली पर पैर रख रहा था। वह घर से निकलकर जंगल में गया और एक चोरों की पल्ली में पहुँच गया।

विजय नामक पल्ली पति ने उसे अपने पास रखा। धीरे-धीरे वह चौर्यकर्म में प्रवीण ही नहीं अति प्रवीण बन गया। विजय का बहुत सा कार्य चिलातीपुत्र करता था। इधर विजय का आयुष्य पूर्ण होते ही चिलातीपुत्र पल्ली का मुखिया हो गया और पांचसौ चोरों के साथ चौयकर्म करता था। चारों ओर आतंक छा गया था। लोग घबराते थे। राजसैनिक उसे पकडने में असफल हो रहे थे।

एक दिन चिलातीपुत्र को सुषमा की याद आयी। और उसने अपने साथियों से कहा राजगृही नगरी में धन्ना सार्थवाह के घर जाना है। जितनी धन संपत्ति ले सको उतनी तुम्हारी। सुषमा नामक उसकी पुत्री को मैं ले आऊँगा। निर्णयकर रात को गये। अस्वापिनी निद्रा का प्रयोग किया। माल लिया। गठरियाँ उठायी। चिलातीपुत्र ने सुषमा को उठायी और चले।

धन्ना सार्थवाह की आंख खुल गई। उसने चोरों को निकलते देखा और अपने पुत्रों को उठाया। सैनिकों को साथ लेकर चोरों के पीछे पड़े। चोरों को आभास हो गया कि हमारा पीछा किया जा रहा है। वे वेग से दौड़ने लगे। उज्झड मार्ग से चलने लगे। चिलातीपुत्र आगे था, पीछे चोर थे। उनके पीछे धन्ना चारों पुत्रों सहित एवं सैनिक पुरे वेग से पीछे आ रहे थे। चोरों की हिम्मत टूट गई। धन की गठरियाँ छोडकर इधर-उधर जंगल में भाग गये। सैनिक वहीं रुक गये। धन्ना चारों पुत्रों सहित सुषमा के लिए पीछे गये चिलातीपुत्र ने सोचा मैं सुषमा का उपभोग न कर सकूं तो दूसरा भी न कर सके। अतः वह सुषमा का मस्तक काटकर अपने हाथ

में पकडकर भागा। धन्ना सेठ और चारों पुत्र इस दृश्य से कांप उठे। रुक गये। धन्ना सेठ पुत्रों सहित थक गया था। क्षुधा एवं प्यास से आक्रांत थे। धन्ना ने पुत्रों से अपना मांस एवं लोही पीकर जीवन बचाने की बात की। इस प्रकार चारों पुत्रों ने भी कहा। पर कोई किसीका लेने को तैयार नहीं था। सभी देने को तैयार थे। तब धन्ना ने कहा इस सुषमा के धड के मांस एवं लोही से जीव बचा दे। सभी ने स्वीकारा। ऐसा कर सभी ने जान बचाई।

आवश्यक टिका में यह दृष्टांत देकर कहा है कि पुत्री एवं बहन का मांस खाया वह कितने दुःखी दिल से खाया होगा। उसी प्रकार साधु अपनी आराधना रूपी प्राण बचाने हेतु एकेन्द्रिय जीवों के संहार से उत्पन्न अन्न पान को दुःखी दिल से वापरे। मुनि को खाने में खुशी अर्थात् चारित्र का नाश।

धन्ना एवं पुत्र घर आए। थोडे दिनों के बाद महावीर परमात्मा वहाँ पधारें। धर्मश्रवण कर सभी श्रावक हुए। और अंतमें शुभ गति गामी हुए।

इधर चिलातीपुत्र मस्तक लेकर भाग रहा था। पीछे देखा तो लगा कि अब कोई पीछा नहीं कर रहा है। वह मार्ग में बार-बार सुषमा का लोही से लिप्त मस्तक देखकर खुश होता था। प्रति समय सुषमा का मस्तक मुर्झा रहा था। एक बार तो वह मस्तक देखकर विचार में पड़ा। यह मैंने क्या किया?

इधर उसकी नजर सामने खडे एक मुनि भगवंत पर पडी। वह अभी तक आवेश में तो था। उसने उस मुनि से पूछा, 'अय मुंड! धर्म बता?'

मुनि कुछ सोचकर उपशम, विवेक, संवर ये तीन शब्द बोलकर 'नमो अरिहंताणं' कहते हुए आकाशमार्ग से चले गये।

चिलातीपुत्र चिन्तन में चला। उपशम-शांतता। कहाँ है मुझमें शांतता? तलवार हाथ में। सुषमा का मस्तक हाथ में। इसमें शांतता है ही नहीं। और मुनि ने उपशम में धर्म कहा है। तो मुझे ये क्रोध के प्रतिक छोड देने चाहिए। और उसने वे दोनों दूर फैंक दिये।

फिर संवर-रुकना। मैं तो क्रोधाग्नि से पापारंभ में अनुरक्त बन गया हूँ। मुझमें पाप से निवृत्त होने का विचार भी उत्पन्न नहीं हुआ। अब मुझे इन पापकार्यों से निवृत्त होना है। और उसने अपने मनमें से सुषमा प्रति का राग भाव नष्ट कर दिया।

तीसरी बात कही 'विवेक' मैंने तो जिसके घर का अनाज खाया उसे ही भिक्षुक बनाने का काम किया। उसीका घर लूटा। मेरे जैसा अविवेकी कौन? इस प्रकार इन तीनों शब्दों पर गहराई से चिन्तन करना प्रारंभ किया। मुनि जहाँ खडे थे वहाँ ही वह स्वयं खडा रह गया और

इन तीनों शब्दों पर चिन्तन करते-करते उसमें क्षमा के भाव उत्कृष्ट कोटि के उत्पन्न हो गये। इधर लोही की गंध से आकृष्ट लाल चिंटियाँ आकर उसके पैर को काटने लगी। इधर चिंटिया शरीर को काट रही थी। आर-पार निकल रही थी। पर वह उपशम भाव में रमण कर रहा था। थोडी देर पूर्व जिसने मस्तक काटा था। उसीको चिंटियाँ काट रही थी। पर वह शांत था। शरीर में कितने ही छिद्र चिंटियों ने बना दिये थे। चालणी जैसा शरीर बना दिया। पर वह निश्चल रहा और शुभ भाव में आयु पूर्ण कर वह चोर देव बना।

- *जिस वाहन में हम बैठे हैं वह वाहन छिद्र सहित है तो हम कभी समुद्र-नदी आदि पार नहीं कर सकते। बीच में ही डूबना पडेगा। बस वैसे ही सुगुरु रूपी वाहन है, जिसके सहारे हम हमारा जीवन संसार रूपी समुद्र से पार होने के लिए चलाते हैं। वह अगर छिद्र सहित अर्थात कुगुरु स्वरूप होगा तो हम उस पार, किनारे पर या इच्छित स्थान पर पहुंच नहीं सकते।*
- *न्यायोपार्जित वित्त जहाँ-जहाँ जायगा वहाँ-वहाँ शांति, सुलह एवं सरलता का साम्राज्य छाया रहेगा एवं अन्याय, अनीति का धन जहाँ जहाँ जायगा वहाँ-वहाँ कलह, कंकास, कुसंप,कपट कुविरोधादि का साम्राज्य छाया रहेगा।*
- *बाहर के कल कारखानों में माल निर्माण करने की अपेक्षा स्त्री स्वयं जिस कारखाने की संचालिका है उसी कारखाने में विशेष लक्ष्य देकर बच्चे का पालनपोषण आर्य संस्कृति से संस्कारी बनाकर भावी सच्चरित्रवान् मानव समाज का निर्माण कार्य करे यही स्त्री के लिए विशेष हितकर है।*
- *औचित्य धर्म का पालन, निन्दनीय कार्यों का त्याग, गुणियों के गुणों का एवं गुणगानों की प्रशंसा, लोकोपवाद का भय, परस्पर अविरोधी भाषा, कृतज्ञता, योग्य की योग्य प्रार्थना पूर्ण करना, आपत्ति में धीरता, आवश्यकतानुसार खर्च, लोकाचार सुकुलाचार पालन और शुभ कार्यों का शीघ्रता से पूर्ण करना इत्यादि सदाचारों का पालन।* - जयानंद

श्रवण से स्वर्ग

उज्जयनी नगरी धन-धान्य, ऋद्धि समृद्धि से भरपूर थी। वहाँ धन नामक श्रेष्ठि रहता था। उसके पास विपुल संपदा थी। आय के स्त्रोत भी अनेक थे। उसे भद्रा नामक सुशील, सदाचारिणी, मधुर भाषिणी पत्नी थी। मध्यमावस्था में एक पुत्र रत्न की प्राप्ति हुई। वह अति सुकुमार था अतः उसका अवंतिसुकुमार नाम दिया। पांच धाव माताओं से लालित पालित होकर, सह साथियों से धुली क्रीडा कर, पंड़ितों के पास किशोरावस्था में अध्ययन कर ज्ञान समृद्ध बना। कामदेव सम रूपवान देखकर बत्तीस श्रेष्ठियों ने अपनी एक-एक कन्या अवंतिसुकुमार को दी। अब वह बत्तीस पत्नियों के साथ भोगोपभोग में रत रहता था। पिता उसके विवाह के बाद स्वर्गवासी हो गये। उसके बाद व्यापार एवं गृहव्यवस्था भद्रा माता ही देखती थी। कुमार तो अपने भोग विलास में मस्त रहता था।

एक दिन आर्य महागिरिजी अपने श्रमण परिवार के साथ विहार करते उज्जयनी पधारें। और वसति की याचना के लिए साधु भद्रा के घर आये। भद्रा शेठानी ने दानशाला में वसति दी। जो दानशाला भद्रा के महल की दिवार से सटकर थी। रात को मुनि भगवंत स्वाध्याय कर रहे थे। स्वाध्याय में 'नलिनीगुल्म विमान' का वर्णन आया। और ऊपरी मंजिल में अपनी पत्नियों के साथ आमोद प्रमोद करते समय विमान वर्णन के शब्द कान में प्रविष्ठ हुए। उसे वह वर्णन कुछ परिचित लगा। सोचा ऐसा मैंने कहीं देखा है। सोचते-सोचते उसे जाति स्मरण ज्ञान हो गया। अब उसे अपनी पत्नियों में कोई रस न रहा। घी का स्वाद जबतक न चखा हो तभी तक तेल में आनंद आता है। अवंतिसुकुमार को देवलोक के सुखभोग याद आ गये। अब उसे अपनी पत्नियाँ तुच्छ निःसार लगने लगी। उसके हृदय में नलिनी गुल्म विमान में जाने की तीव्र भावना जगी। वह उसी समय आचार्यदेव के पास आया। पूछा, 'क्या आप नलिनी गुल्म विमान से आ रहे हैं?' गुरूदेव ने कहा, 'नहीं।' उसने पूछा, 'तो फिर वर्णन कैसे कर रहे हैं?' आचार्यदेव ने कहा, 'भाई! हमारे ज्ञानियों ने ज्ञान से देखकर जो कहा उसे हम याद कर रहे हैं।' कुमार ने पूछा, 'अब वहाँ कैसे जा सकते हैं?' आर्य महागिरिजी ने कहा, 'संयम से सभी कार्य सिद्ध हो सकते हैं।'

कुमार ने कहा, 'मुझे दीक्षा दो।' और भद्रा माता और पत्नियों को उसी समय समझाकर रात को गुरूदेव के पास दीक्षा लेकर वह श्मशान भूमि में काउस्सग्ग के लिये गया। वहाँ उसकी पूर्व कि किसी भव की वैरिणी पत्नी शियालिणी बनी थी। उसने और उसके बच्चों ने मुनि के देह को पैरों से काट खाना प्रारंभ किया। मुनि ध्यान से चलित न हुआ।

शुभ ध्यान में आयुष्य पूर्णकर नलिनीगुल्म विमान में देव हुआ।

प्रातः माता पत्नियाँ वंदन करने आयी। मुनि तो श्मशान में गये कर सुनकर वे भी वहाँ गयी। वहाँ का दृश्य देखकर वे सभी विरक्त बन गयी। एक गर्भवती पत्नी को छोडकर भद्रा माता एवं उसकी पत्नियों ने चारित्र ग्रहण कर लिया।

अवंतिसुकुमार की पत्नि ने एक पुत्र को जन्म दिया। उसका नाम महाकाल दिया। उसने बडे होने के बाद अपने पिता के स्वर्ग गमन के स्थान पर एक विशाल श्री अवंतिपार्श्वनाथ का जिनमंदिर बनवाया।

- *मिथ्यात्व हट जाय/दूर हो जाय पश्चात् लोभ की उपस्थिति से हिंसादि पाप होंगे वे आत्मा को दुर्गतियों में भवभ्रमण बढ़ाने में सहायक न होकर केवल दुःख प्राप्ति करवा सकते हैं।*
- *पाप से दुःख मिलता है यह निर्विवाद सत्य है। एवं पाप होता है आत्मा को सुख का राग है, इसलिये, सुख का राग दूर किया जाय, पाप नहीं होगा, दुःख नहीं मिलेगा।*
- *आज के युग में अधिकतर लोग क्रोध को दूर करने का प्रयत्न करते हुए दिखाई देते हैं पर चित्त में चोर सदृश बैठे हुए मान-माया-लोभ की ओर देखते नहीं हैं।*
- *हृदय के परिणाम कभी स्वयं से छिपे हुए नहीं रहते। अतः स्व को प्रथम टटोलो। स्वतंत्रता, प्राप्ति की यह भी एक महत्त्व की कडी है। जिसे शास्त्रीय भाषा में आत्म निरीक्षण करना कहा जाता है।*
- *स्वरूप हिंसा तो छकाय के पूर्ण रक्षक श्रमण भगवन्तों से विहार दरम्यान नदी उतरने के प्रसंगादि पर होती है। वहाँ हिंसा के भाव न होते हुए प्रमत्त योग होते हुए द्रव्य हिंसा तो है ही पर हिंसा कह नहीं सकते, या हिंसा के भय से विहारादि क्रिया का लोप नहीं हो सकता। अतः धर्म कार्य जो अन्त में आत्मोपकारी हो तो उपयोगी गिना गया है, अनुपयोगी नहीं।*

- जयानंद

अंतरंग स्नान

एक बार एक कुलपुत्र ने अपनी माता से तीर्थों में स्नानकर पाप खपाने के लिए जाने की आज्ञा मांगी। माँ समझदार थी। उसने सोचा अभी मैं उसे कुछ उपदेश दूंगी तो इसके हृदय में नहीं उतरेगा। सत्य हकीकत समझाने हेतु एक कटु तुंबी पुत्र को दी और कहा, 'तूं जहाँ-जहाँ तीर्थयात्रा करे और स्नान करे वहाँ मेरे तुम्बे को भी स्नान करवाना।' पुत्र ने माता की आज्ञा शिरोधार्य की। जहाँ-जहाँ पवित्र नदियों में स्नान करता वहाँ बडे प्रेम से माता की आज्ञा का पालन करता। अडसठ तीर्थों की यात्रा करके पुत्र आनंद उल्लास पूर्वक घर आया। माँ के चरणों में प्रणाम कर बोला, 'माता! मैं संपूर्ण पवित्र होकर आ गया। मेरे सभी पाप स्नान करने से चले गये। मैं शुद्ध हो गया।' माँ ने कोई प्रत्युत्तर न दिया। भोजन के समय पर बडे प्रेम से माँ ने उसे भोजन परोसा। जहाँ प्रथम ग्रास मुँह में रखा और थूं..थूं.. करने लगा। माँ ने पूछा, 'क्या हुआ बेटे?' पुत्र ने कहा, 'इतने दिनों से मैं घर आया और तूने यह कटु तुम्बें का साग मुझे परोसा?' माँ ने आश्चर्य दिखाते हुए कहा, 'क्या बेटा साग कटु है?' पुत्र ने कहा, 'हाँ! माँ! चखकर देख ले।' तब माँ ने कहा, 'बेटे! यह वही तुम्बे का साग है जिसको तूने पवित्र नदियों में तीर्थों पर स्नान करवाया है। इतने पवित्र जल से भी यह मधुर न हुआ। शुद्ध न हुआ।' 'माँ! बाहर से स्नान करवाने से अंदर की कटुता कैसे जायगी?' तब माँ ने कहा, 'बेटे! इस तुम्बें की कटुता नहीं गयी-तो क्या तेरे अंदर के पाप चले गये? तूं अंदर से शुद्ध हो गया?' कुलपुत्र समझ गया। और माँ के चरणों में गिरकर कहने लगा 'माँ तूने मेरी आंख खोल दी है। वास्तव में अंदर का कलिमल तो कठिन तपश्चर्या से ही जा सकता है। पर माँ एक शंका है यह तूं पहले से जानती थी तो मुझे पहले क्यों नहीं कहा?' माँ ने कहा, 'बेटे! अगर मैं कहती तो आज तुझे जितना विश्वास हुआ है उतना विश्वास उस समय नहीं होता!'

हम सब आत्मा के कलिमल को धोने का काम करें।

- *मानव भव में महा मानव बनने का प्रोग्राम बनाओ, महा दानव बनने का नहीं।*
- *जो शुद्ध स्फटिक रत्न सम स्वभाव वाली आत्मा को मलिन अदर्शनीय बना दे, वह है कषाय।* - जयानंद

अविचारित कृत्य

धनदत्त नामक एक शेठ वहाणों में सामान लेकर परदेशों में व्यापार के लिए बार-बार जाता था। शेठ उदार, दयालु एवं सदाचारी था। इससे जहाँ जाता वहाँ अपनी सुवास छोडकर आता। जब वहाँ पुनः जाना होता तो वहाँ की जनता उसे प्रेम भरी आंखों से देखती। उससे व्यापारी संबंध बनाए रखने के इच्छुक अनेक व्यक्ति उसे मिलते। वह परदेश में भी अपना धन दीन-दुःखियों की सहायता में खर्च करता था।

एक दिन उसके जहाज समुद्र में जा रहे थे। उसकी नजर आकाश में उडनेवाले पक्षियों की ओर थी। इतने में उसने एक पक्षी की स्थिति गिरने जैसी देखी और शीघ्र अपने नौकरों के साथ एक बडा वस्त्र फैलाकर खडा हो गया। वह पोपट भी गिरता हुआ उस वस्त्र में गिरा। सेठ ने उसे हवा की, शीतल जल छिडका, थोडी देर में उसे होश आया। उसकी चंचु में एक आम्रफल था। उसने शेठ का उपकार मानते हुए कहा, 'यह फल आप ग्रहण करें।' शेठ ने कहा, 'भाई! तूं भूखा है, तूं ही इस फल को खा ले।' पोपट ने कहा, 'सेठजी! यह फल साधारण नहीं है। यह फल अनेक गुणों से युक्त है। इसका वर्णन सुनो।'

मैं मेरे वृद्ध माता-पिता के साथ विन्ध्याचल में रहता हूँ। वहाँ विहार करते दो मुनिराज आये, वे वृक्ष के नीचे बैठकर बातें करते थे। उनकी बातों में प्रसंगानुसार एक वर्णन आया कि 'इस समुद्र के मध्य में कपि नामक द्वीप है, उसमें सदा फलवाला एक आम्रवृक्ष है। उसका फल खाने से सभी रोग तत्काल दूर हो जाते हैं। वृद्धावस्था युवावस्था में पलट जाती है, अकाल मृत्यु नहीं होती। मैं उस वर्णन को सुनकर मेरे माता-पिता की जरावस्था को दूर करने के लिए फल लेने गया था। फल लेकर आते मार्ग में मेरी हालत बिगड गई, मैं समुद्र में गिर पडने के पूर्व आपने मुझे ही नहीं मेरे माता-पिता को भी बचा दिए हैं। अतः यह फल आप ले, खाए और अनेक आत्माओं पर उपकार करें। मैं तो दूसरा फल ले आऊँगा। शुक फल देकर, आभार मानकर, चला गया।

इसके बाद शेठ ने सोचा, 'मैं यह फल खाकर क्या करूं? किसी राजा को दूंगा तो वे मुझसे भी विशेष उपकारक बनेंगे।' और वहाण किसी नगर के किनारे लाया। सेठ नगर में गये और राजा के सामने आम्र फल रखा। राजाने कारण पूछा। सेठ ने कहा, 'यह आम्रफल खानेवाला निरोगी बनता है। वृद्धावस्था में भी युवावस्था जैसा रूप एवं शक्ति आ जाती है।'

राजा ने सोचा 'मैं अकेला इसे खाकर क्या करूं? इसको जमीन में बोने से वृक्ष बनेगा और अनेक लोगों का हित होगा।' परोपकारी आत्मा इसी प्रकार परोपकार के लिए अपना सुखोपभोग छोडते हैं। यही उनकी उत्तमता, श्रेष्ठता एवं उदारता है।

वृक्ष भी अतिशीघ्र बडा हो गया और आम्रफल भी आ गया। सुरक्षा के लिए रखे गये

पहरेदार ने आम्रफल राजा को दिया। राजा ने सोचा प्रथम आम्रफल आया है अतः इसे मेरे पुरोहित को देदूं। धर्म का कार्य करनेवाले निरोगी एवं दीर्घायुवाले हो तो अच्छा। पुरोहितजी ने वह फल घर पर जाकर खाया और थोडी देर में सोये सो सोये ही रहे।

राजा ने सोचा किसी दुश्मन ने यह विषफल मेरे यहाँ भेजा था। मुझे मारने के लिए। बिचारे निर्दोष पुरोहितजी मारे गये। राजाने उस वृक्ष को विषवृक्ष समझकर उखडवा दिया। अब उस नगर में बात फैल गई कि वह आम्रवृक्ष विषवृक्ष है। तो जो लोग मरना चाहते थे वे कुष्टरोगी, वृद्ध, अतिरोगी वे सब आये और उस वृक्ष के पत्तों को डालियों को खाने लगे और जिसने खाये वे सभी रोगमुक्त एवं स्वरूपवान बन गये। राजा को समाचार मिले। राजा ने विचारा यह कैसे हुआ? पहेरेदार को बुलाकर पूछा। उसने कहा मैं निचे गिरा हुआ फल ले आया था। राजा को निर्णय हुआ कि उस फल को किसी विषैले जंतु ने खाया होगा। अब राजा ने उस वृक्ष की बात पूछी तो लोगों ने कहा राजन्! लोग तो उसकी जड भी उखेडकर ले गये हैं। वहाँ कुछ भी नहीं बचा। राजा ने सोचा अविचारी कृत्य का फल मुझे मिला।

- *बिना छाना पानी का उपयोग करना करवाना, रात भर भीगा चूना खुल्ला पडा रहना जिसमें अनेकानेक प्राणी अपने प्राणों की आहुति दे देते हैं ही, किसी का दिल दुःखाकर चन्दा लेना, मंदिरोपाश्रय में लाइटों की रोशनी कर करवाकर निर्दोष अनेकानेक प्राणियों की जीवनलीला धर्म के नाम पर समाप्त करने इत्यादि कारणों से हेतु हिंसा होती है।*
- *स्वरूप हिंसा के तात्पर्य को समझे बिना हिंसा के भय से धर्म क्रियाओं को त्यागना अहितकर हो जाता है एवं हेतु अनुबन्ध हिंसा को स्वरूप हिंसा का लेबल लगा देना भी अहितकारी है। अतः हिंसा के स्वरूप को समझकर कार्य का पूर्ण विचार कर फिर उसे कार्यान्वित किया जाय तो लाभ दाई, नहीं तो अहितकर होगा।*
- *पदार्थ के स्वामी से बिना पूछे पदार्थ उठा लेने से उस आत्मा को कितना दुःख होता है यह अनुभवी पूर्णतया कह सकता है। अरे कभी कभी तो उसके प्राणों का भी नाश हो जाता है।* - जयानंद

दीक्षा लेते ही देव

जंबूद्वीप के भरतक्षेत्र में विश्व विख्यात मगध नामक देश में धनधान्य से समृद्ध सुवप्रा नामकी नगरी थी। वहाँ नाम जैसे गुणवाला अरिदमन राजा राज्य करता था। उसके पृथ्वी के समान धैर्य धारण करने वाली धारिणी नामकी पटरानी थी। उस रानी की कुक्षी से जन्मा 'सुभानु' नामक भाग्यशाली पुत्र था। राजा ने सौ कन्याओं के साथ सुभानु का विवाह करवाकर सभी सुख सुविधाओं से युक्त महल रहने के लिए कुमार को दिया था। वह देव के समान सुखोपभोग में निमग्न था।

एक बार उद्यान पालक ने आकर सुभानु को वधाई दी कि श्री संभवनाथ भगवंत अपने धर्म परिवार के साथ विहार करते हुए पधारे हैं। देवों ने समवसरण की रचना की है। सुभानु ने उद्यान पालक को आभूषणादि दान में देकर उसे प्रसन्न किया। और अपनी सौ पत्नियों के साथ प्रभु को वंदनार्थ चला। बीस हजार सिढियाँ चढकर अवग्रह के पालनपूर्वक विधिवत् वंदन किया। प्रभु की विरागमयी वाणी श्रवणकर संसार से विरक्त होकर प्रभु से कहा, 'भगवंत! मुझे सर्व विरति प्रदान कर मेरा उद्धार कीजिए।' प्रभु ने उसी समय बिना किसी को कुछ पूछे देव प्रदत्त वेश देकर लोचकर करेमि भंत्ते उच्चरवाई। करेमिभंते ग्रहण कर सुभानु मुनि ज्योंही बैठने लगे त्यों ही आयु पूर्ण होने से देह पडा रहा और जीव देवलोक में पहुँच गया।

इधर अरिदमन राजा भी प्रभु को वंदन करने के लिए आया और पुत्रका प्राण रहित देह देखकर रोने लगा। धारिणी भी रुदन करने लगी। इतने में ही सुभानु देव आया और अपने माता-पिता को धर्म का फल बताया। वे भी प्रतिबोधित होकर दीक्षित हो गये। इस प्रसंग से अनेक आत्माएँ संसार से विरक्त हो गयीं। आत्म कल्याण का मार्ग ग्रहण किया।

- *मार्ग में पडा हुआ किसी भी प्रकार का पदार्थ उठा लेना,अदत्तादान।*
- *तुम उस पदार्थ के मालिक को निश्चय से जानते हो तो उठाकर उसे दे दो।*
- *कुछ लोग इस आशय से उठाते हैं कि हम इसे मंदिरजी के भण्डार में रख देगें, यह भी अदत्तादान है। मंदिरजी में कोई कमी नहीं है सो आप दूसरों से भरना चारो भण्डार! भूलकर भी यह कदम न उठाये। मार्ग का माल मार्ग में पडा रहने दो, कोई दूसरा ले जाय ले जाने दो, तुम्हें उससे कोई नुकशान नहीं।*

- जयानंद

हिंसा अहिंसा का फल

अवन्ति नगरी में रविगुप्त ब्राह्मण यज्ञ का उपदेशक था। वह जनता से कहता था कि यज्ञ की हिंसा अहिंसा ही है। यज्ञ में पशुओं को होमने से उनकी सद्गति होती है, यज्ञाचार्य और यज्ञकारक को महान फल मिलता है। अज्ञानी लोग उसकी बातों में आकर पशुओं का बलिदान दे देते थे। फल स्वरूप वह मानवभव का अल्पायु पूर्ण कर तृतीय नरक का दीर्घायु भोगने चला गया।

नरकायु पूर्ण कर अनन्तकाल तक तिर्यंचादि गतियों में दुःख भोगकर, कांपिल्य पुर में वासुदेव नाम से ब्राह्मण बना। वहाँ भी अश्वमेघादि यज्ञों के द्वारा पशुओं की हिंसा में निमग्न हुआ। रात्रि भोजन अभक्ष्य भक्षण तो सहज था। उसका भविष्य अच्छा आ रहा था। अतः उसकी मित्रता सुमित्र नामक धर्मनिष्ठ श्रावक से हो गई।

सुमित्र उसे हिंसा अहिंसा की व्याख्या सूक्ष्मातिसूक्ष्म रीति से समझाता था। परंतु उसका प्रत्युत्तर एक ही था कि, 'वेद विहित हिंसा हिंसा नहीं है, अहिंसा ही है।' फिर भी वामदेव के हित के लिए सुमित्र ने मित्रता वैसी ही रखी। और उसे सुधारने का प्रयत्न करता रहता था।

एक बार सुमित्र ने कहा, 'क्षत्रियों का धर्म है कि युद्ध में कोई शत्रु मुँह में तृण लेकर आ जाय, तो उसे अभय देना। तो फिर प्रतिदिन मुँह में तृण रखनेवालों को मारनेवाले धर्मी या अधर्मी?' वामदेव ऐसी बातों का प्रत्युत्तर देने में जब अपने को असमर्थ मानता था तब मौन हो जाता था। परंतु वेद विहित हिंसा को हिंसा मानने के लिए वह तैयार नहीं था।

एक बार एक विवाह प्रसंग पर दोनों बाहर गाँव जा रहे थे। मार्ग में एक ग्राम में रूकना था। ग्राम में पहूँचते पहूँचते सूर्यास्त होने आया। सुमित्र प्रतिदिन चउविहार करता था। अतः उसने चारों आहार का प्रत्याख्यान ले लिया।

सुमित्र ने पूर्व में भी कई बार वामदेव को रात्रि भोजन के कटु फल की बातें समझायी थीं। आज भी उसे मना किया कि, 'देख! हमने आज एक बजे भोजन किया है। प्रातः यहाँ से नास्ता करके आगे जाना है। रात्रि भोजन के पाप से आज तो दूर रह जा।' पर वामदेव जो नाम था। उसने सुमित्र के कहने पर ध्यान न देकर यजमान प्रदत्त भोजन सामग्री लेकर भोजन बनाया और खाया। छत पर साँप बैठा था। उसका गरल भोजन में गिर गया था। उसका ख्याल वामदेव को नहीं आया। भोजन करने के थोडी देर बाद ही वामदेव को विष का प्रकोप हो गया। सुमित्र पूर्ण श्रद्धावान श्रावक था। इधर यजमान आदि आसपास के लोग भी इकट्ठे हो गये और इस छोटे गाँव में विष का प्रतिकार करनेवाला कहाँ से लाये? ऐसी चिंता में सभी थे। उस समय सुमित्र ने श्रद्धापूर्वक नमस्कार महामंत्र से जल को मंत्रित कर वामदेव के ऊपर

छिडका। उसका विष उतर गया। यजमान आदि सभी लोगों ने वामदेव को सारी बातें बतायी। वामदेव सुमित्र के पैरों में गिरकर क्षमायाचना के साथ तेरा कहना न माना यह मेरी सबसे बडी भूल थी। अब तो जीवनभर तू जैसा मार्ग बतायगा उसी मार्ग का अनुसरण करूंगा। ऐसा मेरा दृढ निर्णय है ऐसा सुमित्र से कहा। यजमान आदि लोगों ने भी रात्रिभोजन के कटु फल को प्रत्यक्ष देखकर रात्रिभोजन का त्याग कर दिया। विवाह का कार्य संपन्न कर दोनों अपने नगर में आये।

एक बार केवलज्ञानी भगवंत पधारे। तब उनके पास वामदेव ने अपना पूर्वभव सुना और कांप उठा। यज्ञ में हिंसा का इतना भयंकर परिणाम मैंने भोगा है। वह संसार से विरक्त हो गया। केवलज्ञानी भगवंत ने भाव यज्ञ का स्वरूप समझाया और वामदेव ने माता-पिता को समझाकर सुमित्र के साथ दीक्षा लेकर आत्म कल्याण किया।

- *हंसी मजाक से पदार्थ ले लेना, छिपाना - अदत्तादान।*
- *दूसरों का धन स्वनाम से खर्च करना - अदत्तादान।*
- *अमेरिका में संतति निग्रह की गोलियों का प्रचलन शुरू होने के बाद अधिकांश परिवारों में बच्चे पैदा होने बंद हो गए और देश की जन्म दर ही काफी घट गयी।*
- *केलिफोर्निया की बाल गृह सोसायटी चार्लटन अलमोंड का कहना है कि इस समय हम राष्ट्र व्यापी बाल अभाव से गुजर रहे हैं।*
- *आर्य देश में जन्मा मानव शील का तो पूजारी होता है, वह तो यह चाहता है कब समय मिले और कब ब्रह्मचारी बन जाऊँ।*
- *भोगावली कर्मों की प्रबलता थी चारित्र ले न सका, पर अब दो तीन बच्चे हो गये बस शील व्रत धारण कर लूं। पति की इच्छा में अर्धांगीनी को सहभागी होना चाहिए स्वइच्छा से।*
- *नये नये पदार्थ प्राप्ति की इच्छा बनाये रखना परिग्रह है।*
- *मोह के नशे में मस्त मानव जहाँ से जो मिला उसे ग्रहण करता रहता है। उपयोगी-अनुपयोगी पदार्थों का संग्रह करना ही उसका लक्ष्य रहता है।*

- जयानंद

देखा–सोचा तो पाया

चंपानगरी का निवासी समुद्रदत्त श्री महावीर परमात्मा की देशना श्रवणकर निर्ग्रंथ प्रवचन का परमरागी बन गया था। उसके रोम-रोम में वीरवाणी का घोष गुंजारव करता था। वह देह, देह से संबंधित परिवार लक्ष्मी आदि सभी पदार्थों को अनित्य, अस्थिर और नाशवान मानता था।

एक बार वह व्यापारार्थ पिहुंडपुर गया। वहाँ किसी वणिक ने उस समुद्रदत्त की धर्मश्रद्धा, व्यक्तित्व, कला एवं रूपादि गुणों से आकर्षित होकर अपनी पुत्री का विवाह अत्याग्रह पूर्वक उसके साथ किया। वहाँ कुछ समय रहकर गर्भवती पत्नि के साथ वह समुद्र मार्ग से अपने नगर की ओर आ रहा था। मार्ग में ही प्रसुति हो गई। पुत्र जन्मोत्सव समुद्र में मनाया। और पुत्र का नाम समुद्रपाल दिया। पिता के धर्म के संस्कार पुत्र में बाल्यावस्था से ही दिखाई देने लगे। व्यावहारिक अध्ययन के साथ आत्मिक अध्ययन उसने अधिक किया। पिता पुत्र में धर्म विचारणा विशेष होती थी। पिता ने पुत्र का विवाह एक सुयोग्य धर्मनिष्ठ कन्या से किया। वह अनिच्छापूर्वक संसार में रहा था।

एक बार झरोखे में बैठा हुआ नगर चर्या देख रहा था। उस समय किसी अपराधी को वध्य स्थान पर ले जाया जा रहा था। उसके गले में करेण पुष्प की माला थी, फूटा हुआ ढोल ढोली बजाता हुआ आगे चलता था, रासभ पर उसे बिठाया था। सैनिक बोल रहे थे। इसने चोरी की है। इसे वध के लिये ले जा रहे हैं। और भी जो कोई अपराध करेगा, उसे ऐसी सजा दी जायगी।

समुद्रपाल सोचने लगा, 'यह कर्म की विटंबना है। इस भव के कर्म, इसी भव में उदय में आ जाते हैं। इसने चोरी की, और इसका फल यहाँ ही मिल रहा है। मैं भी इस भव में रंग राग में डूबकर जिनेश्वर प्रभु का अपराध ही कर रहा हूँ। प्रभु की आज्ञा है मानवभव पाकर आत्म हित करना। कर्म राजा ने भी मानवभव आत्मोन्नति के लिए दिया है। अब मैं उसका उल्लंघन कर भौतिक भोगों को भोगने में मस्त हो गया हूँ। मुझे भी दण्डित होना पडेगा। इसके पूर्व ही मैं आत्म उद्धार का मार्ग प्रशस्त कर लूँ। उसने परिवार को समझाकर चारित्र लेकर आत्म साधन किया।

● *शास्त्रीय दृष्टि के कारण की उपस्थिति होने पर, अशुद्ध क्रिया एवं भाव की शुद्धि पूर्वक दिया गया दान भी शुभ पुण्य बन्ध का कारण है।*

– जयानंद

आहार शुद्धि

मथुरा नगरी में जितशत्रु राजा एक बार एक काली नामकी वेश्या के अतीव रूपसौंदर्य से मोहित हो गया। वासना ने हरि, हर, ब्रह्मा पर भी अपनी सत्ता स्थापित की है, तो बिचारे पुद्गलानंदि राजा की क्या क्षमता? राजाने काली को अंतःपुर में रखी और उसके साथ भोग विलास में निमग्न रहने लगा। उससे एक पुत्र हुआ। उसका नाम कालवैशिक दिया। वह युवावस्था में आया था। एक बार रात को उसने सियार का शब्द सुनकर, उसे नौकरों के पास पकडवाकर मंगवाया और उसको मारने लगा। मार पडने पर सियार 'खी..खी...' शब्द करता था। प्रतिदिन की मार से सियार का मरण हुआ। और अकाम निर्जरा से व्यंतर निकाय में देव हुआ।

इधर कालवैशिक को एक मुनि भगवंत के दर्शन हुए और उनका उपदेश सुनकर उसका चित्त संसार से विरक्त हो गया। उसने माता-पिता को समझाकर मुनि भगवंत के पास चारित्रग्रहण किया। शिक्षा ग्रहण की। निरतिचार चारित्र का पालन करते गीतार्थपना प्राप्तकर अकेले विहार करने लगे।

एक बार 'अर्श' रोग हो गया। मुनि उस पीडा को समभाव से सहनकर विचरते रहे। किसी औषधि की चाह न थी। विहार करते संसारी बहन के नगर में आये। उन्हों ने मनोमन निर्णय किया हुआ कि किसी प्रकार का उपचार न करना।

इधर बहन को मुनि के शरीर में रोग मालुम पड गया। उसने सोचा, 'मेरे भाई महाराज निरतिचार चारित्री हैं, वे औषधि नहीं लेंगे। पर मैं आहार में औषधि मिश्रण कर दे दूं तो इनको पत्ता नहीं चलेगा।' आहार में औषधि का मिश्रण कर बहन ने मुनि को वहोराया। मुनि को आहार करते समय ही ध्यान आया। सोचा कि, 'मैंने उपयोग न दिया। जिसका परिणाम आया।' मुनि ने अनशन अंगीकार किया। राजा ने उनकी रक्षा के लिए सैनिक रखे। वहाँ उस सियार के जीव व्यंतर देव ने पूर्व वैर का स्मरण किया। जब सैनिक दूर जाते तब सियारनी बनकर बालकों के साथ उनके शरीर को काटने आ जाती थी। इस प्रकार पंद्रह दिन तक समभाव से व्यंतरकृत उपसर्ग को सहनकर क्षपकश्रेणि पर चढ़कर केवली बनकर मोक्ष सुख को प्राप्त हुए।

● *पुण्य बन्धेच्छा जहाँ तक है वहाँ तक छट्ठा गुणस्थानक प्राप्त नहीं हुआ, संयमावस्था प्राप्त नहीं हुई।* - जयानंद

भाव्य

एक नगर में रिपुमर्दन नामक राजा राज्य करता था। उसके एक पुत्री थी, जिसका नाम राजाने भाविनी दिया था। किशोरावस्था में आने पर भाविनी को राजाने एक कलाचार्य के पास अध्ययन के लिए भेजी। वह तन्मयता पूर्वक स्त्रियों की ६४ कला सिखने लगी।

उसी पंडितजी के पास उसी नगर का रहनेवाला धनदत्त शेठ का पुत्र कमरिख नामका भी अध्ययन करने आता था। वह भाविनी से उम्र में छोटा था। अध्ययन में और बुद्धि में भाविनी से तेज था।

एक बार ज्योतिष का विषय चल रहा था। उस समय भाविनी ने कलाचार्य से पूछा मेरा पति कौन होगा? कलाचार्य ने प्रश्न कुंडली बनाकर कहा, 'मेरे पास अध्ययन करनेवाला धनदत्त सेठ का पुत्र कमरिख तेरा पति होगा। इसमें अंशमात्र भी फर्क मत जान। भविष्य को कोई नहीं टाल सकेगा।' भाविनी को यह जानकर आनंद के स्थान पर दुःख हुआ। मुझसे छोटा और वह भी सेठ पुत्र नहीं, नहीं, ऐसा मैं नहीं होने दूंगी।

उसने अपने पिता को भ्रमित कर कमरिख पर असत्य दोषारोपण कर, उसकी हत्या करवाने के लिए राजी कर लिया। राजा भी पुत्री पर अति प्रेम के कारण उसकी बातों में आ गया। राजा ने चाण्डाल को बुलाकर धनदत्त सेठ के पुत्र कमरिख को जंगल में ले जाकर मार डालने का आदेश दिया। चण्डाल कमरिख को नगर के बाहर ले गया।

कमरिख के प्रबल पुण्योदय ने चण्डाल के हृदय में करूणा उत्पन्न करवायी। उसने सोचा, 'यह भोला बच्चा राजा का क्या अपराध कर सकता है? किसी विरोधी ने षड्यंत्र रचकर धनदत्त एवं कमरिख के विरूद्ध राजा के कान भरे होंगे। इसीसे राजा ने यह आदेश दिया है। मैं निरपराधी को मारने का पाप क्यों करूं?' ऐसा सोचकर चण्डाल ने उसे सारी हकिकत समझाकर कह दिया कि तुम पुनः यहाँ न आने का वादा करो तो मैं तुम्हें छोड दूंगा। कमरिख ने उसका कहना माना और वहाँ से भागा। भागते-भागते जंगल में पहुँचा, वहाँ से चलते-चलते श्रीपुर नगर के बाहर एक वृक्ष के नीचे सो गया।

इधर श्रीपुर के श्रीधर सेठ को उसकी कुलदेवी ने स्वप्न में संदेश दिया कि आज प्रातः तेरी काली गाय जिस वृक्ष के नीचे खडी रह जाय और वहाँ जो युवक सोया हुआ होगा उस युवक के साथ तेरी श्रीमति नामक पुत्री का विवाह कर देना । श्रीधर सेठ कुलदेवी की बात को सुनकर अपने आपको धन्य मानता हुआ जागृत हुआ। सेठने काली गाय को छोड दी वह नगर से बाहर चली। सेठ भी उसके पीछे चले। जहाँ कमरिख सोया था, वहाँ गाय रूक गयी। सेठ ने गाय को आगे ले जाने के लिए अनेक प्रयत्न किये पर वह न चली। तब सेठ ने कुलदेवी कथित यही व्यक्ति है ऐसा निश्चय कर उस युवक को जगाकर अपने घर ले आया और शुभ

मुहूर्त में श्रीमति की शादी उससे कर दी। अब वह वहाँ सुखपूर्वक रहने लगा। कर्मरेख को उसका नाम पूछने पर उसने अपना नाम रत्नचंद्र बताया और वह रत्नचंद्र के नाम से प्रख्यात बना। उसने अपने स्नेही स्वभाव से सबका मन मोह लिया। सभी उससे स्नेह करने लगे। परंतु स्वाभिमानी होने से उसको वहाँ रहना अच्छा नहीं लग रहा था। वह वाहन लेकर व्यापारार्थ समुद्रमार्ग से चला। मार्ग में प्रतिकुल पवन से वाहन टूट गये और रत्नचंद्र समुद्र में गिरा। गिरते ही एक बडे मगरमच्छ ने उसे निगल लिया।

भरूच के मछलीमारों की जाल में वह मगरमच्छ आ गया। उन्हों ने वह मच्छ भरूच के राजा के रसोइये को दे दिया। रसोइये ने मगर मच्छ चीरते ही रत्नचंद्र को देखा। उसका श्वास मंद-मंद चल रहा था। राजा को समाचार दिया। राजा ने आकर शीघ्र औषधोपचार करवाया। रत्नचंद्र स्वस्थ हो गया।

अब राजा को रत्नचंद्र पर अंतरंग प्रीति उत्पन्न हुई। उसने उसे अपने पुत्र रूप में रखा। उसके रूप गुण की प्रशंसा सुनकर कुंडिनपुर के राजा ने अपनी पुत्री रत्नचंद्र को दी।

इधर भाविनी के स्वयंवर मंडप में आने के लिए देश देश में राजाओं को निमंत्रण भेजा गया। भरूच के राजा के पास भी दूत आया। राजाने रत्नचंद्र को मंत्री एवं सेना के साथ भेजा। वह स्वयंवर में आया। सबका राजाने स्वागत किया।

स्वयंवर के दिन सभी आशा लिये स्वयंवर में आये कि राजकुमारी मुझे वरमाला पहनायगी।

राजकुमारी आयी। प्रतिहारिणी सभी राजा, राजकुमार आदि का परिचय सुनाने लगी। भाविनी आगे बढती जाती थी। रत्नचंद्र के पास आते ही भाविनी का चित्त प्रसन्न हो उठा उसने उसके गलेमें वरमाला पहना दी। विवाह सानंद संपन्न हुआ। रत्नचंद्र भरूच आया। श्रीपुर के श्रीधर शेठ की पुत्री श्रीमति को भी वहाँ ले आया। अपनी तीनों पत्नियों के साथ रत्नचंद्र भरूच में सुखपूर्वक रहता था। भाविनी को अपने पति पर अत्यन्त प्रीति थी। वह पति का अधिक ख्याल रखती थी। भोजन स्वयं परोसती थी। एक बार हवा जोरदार चलने लगी। भोजन के समय रेत न गिरे, इसलिए साडी का पल्लू फैलाकर खडी रही। रत्नचंद्र को भाविनी की इस चेष्टा से भाग्य याद आ गया। और पुरानी बात याद आते ही उसे हंसी आ गयी। भाविनी ने पूछा, 'आपको हंसी क्यों आयी?' रत्नचंद्र ने कहा वैसे ही हंसी आ गयी। परंतु भाविनी ने कहा, 'आप मुझसे कुछ छुपाते हैं। मुझे हंसी का कारण बताना पडेगा।' उसके अत्याग्रह से रत्नचंद्र ने सत्य बात बतायी। उस समय भाविनी वहाँ अकेली थी। भाविनी की आंख में बात सुनकर आश्चर्य मिश्रित हर्ष के आंसु आ गये। रत्नचंद्र ने कहा, 'भाविनी! मैं तो तेरा उपकार मानता हूँ। तूने मेरे साथ ऐसा व्यवहार न किया होता तो मैं यह राज्य और ये

दो पत्नियाँ कहाँ से प्राप्त करता?' भाविनी ने पति के चरणों में गिरकर क्षमायाचना की तब रत्नचंद्र ने कहा, 'मुझे तुझपर कभी अप्रीति हुई ही नहीं तो क्षमायाचना और क्षमापना की कोई बात ही नहीं।' भाविनी ने कहा, 'पतिदेव! आज मुझे प्रत्यक्ष अनुभव हुआ कि भाग्य को पलटने की ताकात इंद्र और राजा में भी नहीं है। चाहे पाताल में चले जायँ, गुफा में प्रवेश कर लें, समुद्र की गहराई में चले जायँ, तो भी कर्म को कोई भी नहीं पलट सकता।' इस प्रकार भाविनी अपनी दोनों बहनों के साथ रत्नचंद्र के साथ सुखपूर्वक काल निर्गमन करती थी। अंतमें सद्गुरू भगवंत से धर्मश्रवणकर प्रतिबोधित होकर आत्मकल्याण के मार्ग पर सभी आगे बढे।

इस प्रकार अनेक प्रकार से उपदेश देते हुए एवं विहार करते हुए प्रभु सम्मेतशिखर पर पधारें। वहाँ प्रभु ने अंतिम अनशन किया।

अजितनाथ प्रभु का परिवार :

९५ गणधर, एक लाख मुनि, तीन लाख तीस हजार साध्वियाँ, साढे तीन सौ चौदह पूर्वधर, एक हजार ४०० मनःपर्यवज्ञानी, ९४०० अवधिज्ञानी, २२००० केवलज्ञानी, १२४०० वादी, २०४०० वैक्रियलब्धिवाले, २५८००० श्रावक, ५४५००० श्राविकाएँ इतना परिवार था।

आयुष्य :

कुमारावस्था में अठारह लाख पूर्व, राज्य एक पूर्वांग सहित तिरपन लाख पूर्व, छद्मस्थावस्था १२ वर्ष, केवलज्ञानीपने में एक पूर्वांग और बारह वर्ष कम एक लाख पूर्व में रहकर एक महीने का अनशनकर चैत्र सुदि ५ के दिन सर्वायु ७२ लाख पूर्व का भोगकर एक हजार मुनियों के साथ सम्मेत शिखर पर मोक्ष पधारें।

- *सख्त मजदूरी की सजा प्राप्त व्यक्ति की कैद, कैद है एवं नजर बन्द रखे गये व्यक्ति की भी कैद है पर दोनों में तफावत है। एक नीचतर कार्य से कैद है एवं एक उच्चतम व्यक्ति की कैद है। वैसे लोहे की जंजीर एवं स्वर्ण जंजीर को समझना चाहिए।*
- *आज के युग के अधिकांश विलास प्रिय धनी, मानी एवं सत्ताशाली आत्माओं का पुण्योदय पापानुबन्धि पुण्य के घर का हो ऐसा दृष्टि पथमें दिखायी देता है।* - जयानंद

त्याग करना ही है तो....

क्रोध का, क्षमा का नहीं।
माया का, सरलता का नहीं।
लोभ का, संतोष का नहीं।
आलस्य का, स्फूर्ति का नहीं।
संग्रह का, त्याग का नहीं।
असत्य का, सत्य का नहीं।
स्व प्रशंसा का, पर प्रशंसा का नहीं।
दुर्जनता का, सज्जनता का नहीं।
हिंसा का, अहिंसा का नहीं।
पाप का, पुण्य का नहीं।
ममता का, समता का नहीं।
वैरभाव का, मैत्रीभाव का नहीं।
अपमान का, सम्मान का नहीं।
मर्म वचन का, धर्म वचन का नहीं।
अविनय का, विनय का नहीं।
अविवेक का, विवेक का नहीं।
विवाद का, वाद का नहीं।
परनिंदा का, स्व निंदा का नहीं।
कुविचार का, सद्विचार का नहीं।
बोलने का, मौन का नहीं।
अन्याय का, न्याय का नहीं।
कलह का, संप का नहीं।

मान का, नम्रता का नहीं।
लोभ का, निर्लोभता का नहीं।
काम का, ब्रह्मचर्य का नहीं।
कुगुरु का, सुगुरु का नहीं।
अनीति का, नीति का नहीं।
अकार्य का, सत्कार्य का नहीं।
संसार भाव का, साधु भाव का नहीं।
अभक्ष्य खान-पान का, तप का नहीं।
अधर्म का, धर्म का नहीं।
दानवता का, मानवता का नहीं।
आश्रव का, संवर का नहीं।
राग का, विराग का नहीं।
कटुवाणी का, सद्वाणी का नहीं।
अहित का, हित का नहीं।
लेने का, देने का नहीं।
उन्मार्ग का, सन्मार्ग का नहीं।
अवर्णवाद का, वर्णवाद का नहीं।
बुराई का, भलाई का नहीं।
कुकर्म का, सत्कर्म का नहीं।
द्वेष का, प्रेम का नहीं।
मारने का, बचाने का नहीं।
याचना का, दान का नहीं।

- *दानादि प्रक्रिया के समय सतत् जागृत रहना है कि कहीं पापानुबंधी पुण्य बंध न हो जाय आत्मा की असावधानी से।*
- *आर्य देशोत्पन्न व्यक्ति सज्जन है तो पाप शब्द को श्रवण करते ही स्वाभाविकतया कंप का अनुभव करता है।* - जयानंद

→ शुद्ध स्वर्ण ही अग्नि के जाज्वल्यमान ताप को सहन कर अत्यधिक कांति को प्राप्त कर बाहर आता है। उसी प्रकार सुसाधक परीषयजय के पश्चात् प्रकाश्यमान बनता है।

→ रजोहरण और मुहपत्ति ये दोनों मोक्ष के अंग है, विश्वास का साधन है।

→ जो सत्य है वह एक ही है, सत्य ही सम्यकत्व, व्रत, तप, ज्ञान, क्रिया है।

→ आराधक वही जो सत्य का आचरण करता हो, और सत्य का पक्षधर हो।

→ स्वयं की आराधना का मूल्यांकन अंतर के परिणामों से करो।

→ कितने को नहीं कैसे को महत्व दो।

- जयानंद